लर्निंग कर्व

हिन्दी अंक 3 मई, 2011

Azim Premji Foundation

अज़ीम प्रेमजी फाउण्डेशन की पत्रिका

(केवल निजी प्रसार के लिए)

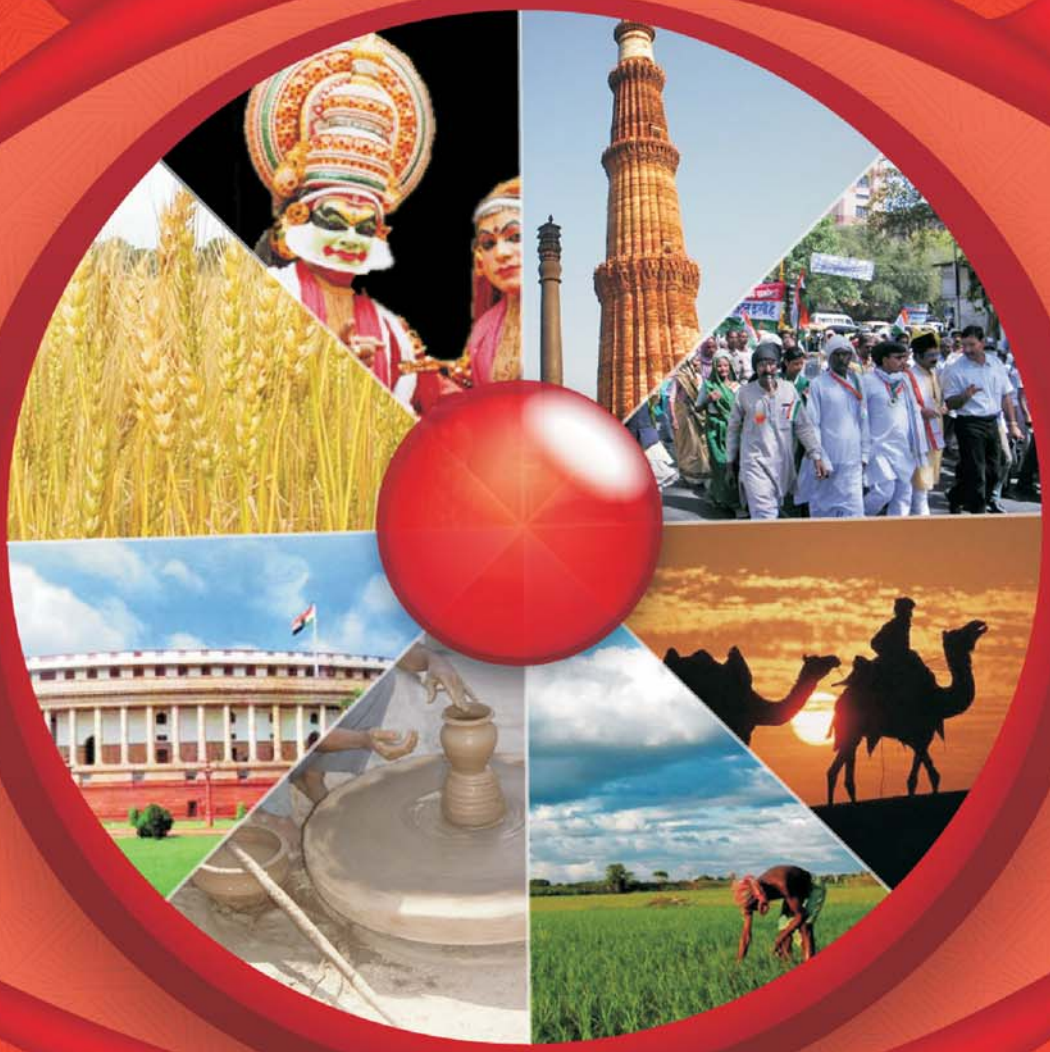

स्कूलों में सामाजिक विज्ञान पर विशेष अंक

इस अंक में

- स्कूली सामाजिक विज्ञान का विवादित क्षेत्र
- आकलन में प्रोजेक्ट, क्षेत्र कार्य और खोज की भूमिका
- इतिहास का और खुद का सामना करना : इतिहास पढ़ना एक नैतिक उद्यम है
- लोकतंत्र के लिए शिक्षा – स्कूलों में सामाजिक विज्ञान शिक्षा की प्रासंगिकता

इनके अलावा : व्यक्तिगत अनुभव, फिल्म समीक्षा, स्रोत किट तथा....और भी बहुत कुछ

लर्निंग कर्व

स्कूल में सामाजिक विज्ञान
हिन्दी अंक 3 मई, 2011

(लर्निंग कर्व – स्पेशल इश्यू ऑन सोशल साइंस इन स्कूल्स् (अँग्रेजी) XV अगस्त,2010 का हिन्दी अनुवाद)

सम्पादकीय टीम
आँचल चोमाल, गौतम पाण्डेय, मंगला नंदा, नीरजा राघवन, निधि तिवारी,
ऋषिकेश बी.एस., एस. गिरिधर

अँग्रेजी से हिन्दी अनुवाद
सत्येन्द्र त्रिपाठी,भरत त्रिपाठी एवं मनीषा त्रिपाठी

हिन्दी अंक सम्पादन
राजेश उत्साही

सहयोग
विपिन चौहान

कार्टून
बलराज केएन

डिजायन
जमशेर पी.एन.,पुष्पिता सेनगुप्ता
Adroit Human Creative Services Pvt. Ltd.
Banglore

मुद्रक
प्रगति प्रिन्टर्स
बंगलौर 560 103

टिप्पणी : इस अंक में प्रकाशित लेख मूलतः लर्निंग कर्व (अँग्रेजी) XV अगस्त, 2010 में प्रकाशित लेखों के अनुवाद हैं। लेखों में व्यक्त विचार तथा मत लेखकों के अपने हैं। अज़ीम प्रेमजी फाउण्डेशन का उनसे सहमत होना आवश्यक नहीं है।

सम्पादक की ओर से

आपके समक्ष लर्निंग कर्व का यह अंक प्रस्तुत करते हुए मुझे बड़ा हर्ष हो रहा है। पिछले अंकों की तुलना में इस अंक के लिए प्रारम्भ से ही सम्पादकीय दल के बीच ज्यादा बहस और चर्चाएँ हुईं। पर मैं समझता हूँ कि इस विषय की प्रकृति तथा इसके चारों ओर छाए हुए उच्च–स्तरीय विवाद की वजह से ऐसी ही अपेक्षा की जा सकती थी।

एक बड़ी चुनौती थी विविधतापूर्ण लेखक समूह को इसमें शामिल करना ताकि इस विषय के विस्तृत दायरे में आने वाले हर तरह के दृष्टिकोण को प्रतिनिधित्व मिल सके। हमारा प्रयास रहा है कि हम अपने पाठकों को एक विषय की तरह सामाजिक विज्ञान की प्रकृति के बारे में ईमानदार व व्यापक दृष्टि दे सकें। हमने समाज के भीतर सामाजिक विज्ञान के उद्देश्य, तथा इस विषय के बारे में राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा (नेशनल करीकुलम फ्रेमवर्क) में व्यक्त विचारों से शुरू करके, इसे पढ़ाते समय सामने आने वाले अनेक नैतिक टकरावों तथा शैक्षणिक दुविधाओं, और इसके साथ ही दुनिया भर में सामाजिक विज्ञान की शिक्षा तक, सभी पर नजर डालते हुए तमाम सम्बन्धित विषयों के बारे में दृष्टिकोणों, समझ, सुझावों व समीक्षा का एक समग्र संग्रह तैयार करने की कोशिश की है।

लर्निंग कर्व के प्रत्येक अंक का कोई एक खास लम्हा होता है जिसका जिक्र मैं इस पेज पर करने की कोशिश करता हूँ। इस अंक के एक मुख्य लेख के लिए हमने प्रो. आन्द्रे बैटील से बात की – हालाँकि हमें भरोसा नहीं था कि वे लर्निंग कर्व के लिए लिखने को तैयार हो जाएँगे। पर जब हम उनसे हिचकिचाते हुए इसका अनुरोध कर ही रहे थे, तभी उन्होंने हमें अपने सरल आश्वासन से निश्चिन्त कर दिया कि उनका लेख हमें जरूर मिलेगा। कुछ सप्ताहों के भीतर ही उनका बंगलौर आना हुआ और मुझे उनसे मिलने का अवसर मिला। मेरा अभिवादन करने के बाद, प्रो. बैटील बगल में रखी मेज की ओर मुड़े और साफ–सुथरे ढंग से टाइप किए गए व नत्थी किए हुए पन्ने उसमें से निकाले और आँखों में एक विनोदपूर्ण चमक के साथ उन्हें मुझे थमा दिए। खुशी के मारे मेरे मुँह से किलकारी निकल पड़ी और घर वापस जाते वक्त रास्ते भर मैं उस लेख को सीने से लगाए रहा। एक बार फिर, अंक में सहयोग देनेवाले प्रतिष्ठित विद्वानों के दल ने चुनी गई विषयवस्तु के तमाम पहलुओं की विवेचना करने में हमारी मदद की है। और, हमेशा की तरह, अपने–अपने व्यस्त कार्यक्रमों के बावजूद उन सभी का बहुत अनुग्रह रहा कि उन्होंने नियत तिथि तक अपने–अपने लेख हमें दे दिए।

हमारे कुछ लेखकों ने तो उससे ज्यादा भी सहायता की है। उन्होंने सम्पादकीय बहसों के दौरान सम्पादकीय दल की मदद की, खुद भी कुछ मुद्दे सुझाए और दूसरे लेखकों से सम्पर्क करके उन्हें भी इस अंक के लिए लिखने हेतु प्रोत्साहित किया। ऐसे मित्र वाकई में अनमोल हैं।

सामाजिक विज्ञान को लेकर मेरी अपनी बड़ी सुखद यादें हैं (उन दिनों इसे सामाजिक अध्ययन कहा जाता था)। ये बिना किसी अर्थ के तारीखें रटते रहने वाली यादें नहीं हैं। बल्कि इसके विपरीत, इन यादों में से एक है केन्द्रीय विद्यालय के हमारे सामाजिक विज्ञान के शिक्षक श्री टी.वी. चारी द्वारा उस दिन हमसे तूतनखामन के बारे में अनायास चर्चा करना, जिस दिन अखबार में अचानक उसका उल्लेख हुआ था। इनमें जुड़ी हैं चारी जी की ही और यादें, जैसे उनके द्वारा कक्षा में होमर जैसे महान लेखकों के बारे में लगातार दो दिनों तक चर्चा करना, या फिर प्रथम व द्वितीय विश्वयुद्धों के बारे में चर्चा करना जबकि कुछ भी हमारे पाठ्यक्रम का हिस्सा नहीं था। जब चारी इन घटनाओं की चर्चा किया करते थे तो उसमें हमेशा ही जाँच–पड़ताल, प्रमाणीकरण, और सभी बातों का सुसंगत मिश्रण रहता था।

जैसा कि मैंने शुरुआत में कहा था, यह अंक सामाजिक विज्ञान के प्रति सम्पादकीय दल के जोश व प्रेम से ओतप्रोत है। पर ज्यादा महत्वपूर्ण बात यह है कि क्या स्कूलों में सामाजिक विज्ञान की शिक्षा के हमारे इस वैचारिक विवरण में हम आपकी उम्मीदों पर खरे उतर पाए हैं या नहीं। आपके निष्पक्ष प्रतिउत्तर से हमें आगे आने वाले अंकों में लगातार सुधार करते जाने में मदद मिलेगी।

एस. गिरिधर
कार्यक्रम तथा एडवोकेसी प्रमुख,
अज़ीम प्रेमजी फाउण्डेशन

लर्निंग कर्व

हिन्दी अंक 3 मई, 2011
स्कूल में सामाजिक विज्ञान

खण्ड – अ : व्यापक मुद्दे

स्कूलों में सामाजिक विज्ञान 5
– आन्द्रे बैटील

स्कूली सामाजिक विज्ञान का विवादित क्षेत्र 9
– पूनम बत्रा

भारत में सामाजिक विज्ञान का 'हीन' दर्जा– कारण व सुधारात्मक उपाय 18
– ऋषिकेश बी.एस.

लोकतंत्र के लिए शिक्षा – स्कूलों में सामाजिक विज्ञान शिक्षा की प्रासंगिकता 23
– अंजलि नरोन्हा

सामाजिक अध्ययन में परेशान करने वाले सवाल 28
– हृदयकांत दीवान

सामाजिक विज्ञान तथा राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 37
– इन्दु प्रसाद

खण्ड – ब : कुछ परिप्रेक्ष्य

सामाजिक विज्ञान अध्ययन – क्या सही है और क्या गलत? 41
– विमला रामचन्द्रन

स्कूल की पाठ्यपुस्तकें 45
– रश्मि पालीवाल एवं सी.एन. सुब्रह्मण्यम

कल के नागरिक निर्मित करना : सारे संसार में सामाजिक विज्ञान शिक्षण का संक्षिप्त सर्वेक्षण 50
– ऐन हॉर्विटज़

इतिहास का और खुद का सामना करना : इतिहास पढ़ना एक नैतिक उद्यम है 55
– मार्टिन स्लीपर और ऐडम स्ट्रॉम

मानचित्र और राजनीति 59
– एम.एच. कुरैशी

दैनिक जीवन में भूगोल 64
– तपस्या साहा

ओह! पंचायत : सामाजिक विज्ञान की पाठ्यपुस्तकें तैयार करने में मिले कुछ बिखरे सबक 69
– अलक्स एम. जॉर्ज

21 वीं सदी के लिए भूगोल की शिक्षा 74
– चन्द्रशेखर बालचन्द्रन

इतिहास की शिक्षा से जुड़े मुद्दे : इंग्लैण्ड और अमेरिका के दृष्टिकोण 79
– लिज़ डॉज़ दुरईसिंह

स्कूली अर्थशास्त्र की दुविधा और चुनौती 83
– अरविन्द सरदाना

खण्ड – स : कक्षा में

एनसीईआरटी की सामाजिक विज्ञान की नई पाठ्यपुस्तकें 88
– सम्पूर्णा बिस्वास

भूगोल को दिल में बसाना 91
– मारिया अथायडे

झलकियाँ – सभ्यताओं के माध्यम से एक कक्षा की यात्रा 94
– सीता नटराजन

क्या तटस्थ = विवादास्पद होता है? 99
– मंगला नंदा

खण्ड – द : आकलन की भूमिका

समाज विज्ञान में स्कूली शिक्षा का मूल्यांकन : हमारे अनुभव, प्रयोग और सबक 104
– रश्मि पालीवाल

स्मृति के आगे : सामाजिक विज्ञान में अर्थपूर्ण आकलन 113
– जयश्री नांबियार

गुणवत्ता बनाम परिमाण 119
– तपस्या साहा

परीक्षाएँ : विश्वसनीयता और पवित्रता बहाल करने की आवश्यकता 123
– आर. एस. कृष्णा

आकलन में प्रोजेक्ट, क्षेत्र कार्य और खोज की भूमिका 128
– श्रीपर्णा

खण्ड – इ : कुछ व्यक्तिगत अनुभव

''अनुपयोगी'' होने का महत्व 133
– धनवन्ती नायक

सामाजिक विज्ञान– जीवन के लिए एक स्प्रिंगबोर्ड 137
– ऋचा भावनम

सामाजिक विज्ञानों ने क्यों मुझे कभी आकर्षित नही किया! 140
– नीरजा राघवन

सामाजिक विज्ञान के चश्मे से जो मुझे मिला 143
– निधि तिवारी

इतिहास ने हमारी दुनिया को शक्ल दी है ! 146
– गुरमीत कौर और मरिअम साहिब

सामाजिक विज्ञान आखिर कितने वैज्ञानिक हैं? 148
– मानस शर्मा

खण्ड–फः फिल्म समीक्षा और स्रोत किट

तारीखों और लड़ाइयों से परे! 151
– उमाशंकर पेरिओडी

स्रोत किट 154

खण्ड - अ

व्यापक मुद्दे

01 स्कूलों में सामाजिक विज्ञान

आन्द्रे बैटील

आज सामाजिक विज्ञान विषय देश भर के स्कूलों में किसी न किसी रूप में पढ़ाए जा रहे हैं। पहले आम तौर पर ऐसी स्थिति नहीं थी। आजादी के पहले, समाजशास्त्र, राजनीति विज्ञान और यहाँ तक कि अर्थशास्त्र की शिक्षा भी मुख्य रूप से विश्वविद्यालयों व महाविद्यालयों तक सीमित थी। आजादी के बाद सामाजिक विज्ञान के विषयों की शिक्षा में निरन्तर विस्तार हुआ तथा जल्दी ही इन्हें स्कूलों में पढ़ाए जाने की माँग बढ़ने लगी।

सामाजिक विज्ञान का वर्णन कभी–कभी नीति विज्ञान के रूप में किया जाता है, हालाँकि नीति–निर्धारण में समाजशास्त्र और राजनैतिक विज्ञान जैसे विषयों का योगदान परोक्ष व सीमित ही रहता है। वैसे भी, स्कूली विद्यार्थियों को नीति–निर्माता या फिर नीति–निर्माण में परामर्शदाता बनाने का लक्ष्य रखना अपने आप में बहुत ही अव्यावहारिक बात होगी। पर अर्थव्यवस्था, राजनीति और समाज किस तरह काम करते हैं, इसके बारे में सामान्य जानकारी होने से विद्यार्थियों को उनकी आगे की जिन्दगी में यह समझने में मदद मिलेगी कि सार्वजनिक जीवन में नीतियों की क्या भूमिका होती है। यह उन्हें इस बारे में एक शिक्षित दृष्टिकोण बनाने का आधार प्रदान कर सकता है कि कुछ खास नीतियाँ ही क्यों अपनाई जाती हैं और अन्य क्यों नहीं। साथ ही अपनाई जाने वाली नीतियों में से कुछ ही क्यों सफल होती हैं और बाकी क्यों नहीं।

मेरा दृष्टिकोण यह है कि सामाजिक विज्ञान का ज्यादा महत्वपूर्ण योगदान नीति–निर्धारण के लिए प्रशिक्षित करने में नहीं है बल्कि शिक्षित व समझदार नागरिक तैयार करने में है। लोकतंत्र के अच्छे संचालन के लिए शिक्षित नागरिक वर्ग का होना अपरिहार्य है। कोई व्यक्ति अच्छे नागरिक होने के गुण अनायास हवा में से नहीं पकड़ता, उन्हें हासिल करने और बढ़ावा देने के लिए एक खास प्रकार की शिक्षा की जरूरत होती है। एक अच्छा नागरिक होने के लिए सिर्फ भौतिक व जैविक क्रियाकलापों का जानकार होना ही काफी नहीं होता, अच्छे नागरिक को उस सामाजिक संसार के बारे में भी समझ होना जरूरी है जिसका वह हिस्सा है।

लेकिन समाजशास्त्र में न केवल विषय की सीमाओं पर विद्वानों के विचारों में भिन्नता है, बल्कि ऐसा एकदम उसकी बुनियादों में भी है। और यही वह वजह है जिसके कारण स्कूली शिक्षकों के लिए यह विषय पढ़ाना खास तौर पर मुश्किल हो जाता है।

सामाजिक विज्ञान की शिक्षा दिए जाने के महत्व को इंगित करने के बाद मुझे स्कूली स्तर पर सामाजिक विज्ञान को पढ़ाने में आने वाली कठिनाई पर भी थोड़ी बात करना होगी। स्कूली स्तर पर समाजशास्त्र या राजनीति विज्ञान पढ़ाना, गणित या भौतिकी पढ़ाने से कहीं ज्यादा कठिन होता है। मैं यह बात जितनी जोर से हो सके कहना चाहूँगा और फिर संक्षेप में यह समझाने की कोशिश करूँगा कि क्यों मैं इसे सही मानता हूँ। आगे की चर्चा में, मैं मुख्यतः समाजशास्त्र और राजनीति विज्ञान पर ध्यान केन्द्रित करूँगा, पर मैं जो कहूँगा वह एक व्यापक ढंग से सामाजिक विज्ञान के अन्तर्गत आने वाले ज्यादातर विषयों पर भी लागू होता है।

समाजशास्त्र और राजनीति विज्ञान में अगर अधिकांश नहीं, तो भी अनेक ऐसी महत्वपूर्ण बातें हैं जिनके बारे में कोई तय सम्मति नहीं है। इस वजह से उन शिक्षकों के सामने खड़ी होने वाली शैक्षणिक समस्या, जिन्हें चौदह, पन्द्रह या सोलह वर्ष की उम्र वाले बच्चों को ये विषय पढ़ाना पढ़ते हैं, भौतिकी या रसायनशास्त्र पढ़ाने वाले शिक्षकों को आने वाली समस्याओं की तुलना में काफी अलग हो जाती है। और इस तथ्य पर, स्कूलों के लिए नीति–निर्धारण प्रक्रिया के शीर्ष पर मौजूद लोगों द्वारा पर्याप्त रूप से ध्यान नहीं दिया जाता।

इस समस्या की प्रकृति को मैं जरा और खुलकर समझाऊँ। विज्ञान के विषयों से सम्बद्ध मेरे साथी, खासतौर पर भौतिकशास्त्री, मुझसे कहते हैं कि मैं यह कहने में बहुत ज्यादा अतिशयोक्ति करता हूँ कि उनके अध्ययन और शोध के क्षेत्रों में काफी हद तक सम्मति है। वे ध्यान दिलाते हैं कि भौतिकी की वर्तमान सीमाओं पर आम सम्मति न के बराबर है। और वाकई में ऐसा है भी, तथा ज्ञान के किसी भी क्षेत्र की सीमाओं पर ऐसा होना अनिवार्य है। लेकिन समाजशास्त्र में न केवल विषय की सीमाओं पर विद्वानों के विचारों में भिन्नता है, बल्कि ऐसा एकदम उसकी बुनियादों में भी है। और यही वह वजह है जिसके कारण स्कूली शिक्षकों के लिए यह विषय पढ़ाना खास तौर पर मुश्किल हो जाता है।

मेरा सौभाग्य था कि मैं स्नातकोत्तर अध्ययन और शोध के एक प्रमुख केन्द्र में समाजशास्त्र का शिक्षक रहा हूँ। नए विद्यार्थियों के सहज हो चुकने के बाद, मैं बिना किसी शंका के उनसे कह पाता था कि हमारे विषय में उत्तर से ज्यादा महत्वपूर्ण प्रश्न होता है। उच्चतर कक्षाओं के विद्यार्थियों के लिए मैंने इस तरह की परीक्षाएँ कराने का

रिवाज विकसित कर लिया था जहाँ मैं प्रत्येक विद्यार्थी से स्वयं का प्रश्न बनाने व उसका उत्तर लिखने को कहता था, और उन्हें यह बता देता था कि उनका मूल्यांकन प्रश्न तथा उत्तर, दोनों के आधार पर किया जाएगा। पर विद्यार्थियों ने जल्दी ही मेरे इरादों को भांप लिया, और वे विश्वविद्यालय की परीक्षाओं के पिछले प्रश्नपत्रों से प्रश्न, और उन प्रश्नों के उत्तर पहले से तैयार करके आने लगे। भारतीय विद्यार्थी किसी भी परीक्षा व्यवस्था के जाल और फन्दों से पार पाने में उस्ताद होते हैं।

स्नातकोत्तर विद्यार्थियों को पढ़ाने में मुझे लगा कि कक्षा को यह बताना मेरी जिम्मेदारी है कि अक्सर किसी खास प्रश्न के लिए कोई एक सही उत्तर नहीं होता। मैं पक्के तौर पर यह नहीं कह सकता कि उस स्तर पर भी मैं अपने सभी विद्यार्थियों को इसका विश्वास दिला पाता था या नहीं। परन्तु, पन्द्रह या सोलह की उम्र में विद्यार्थी यह जानना चाहता है कि किसी सवाल का सही उत्तर क्या है ताकि वह परीक्षाओं में अच्छा कर सके और जीवन में आगे बढ़ सके। भौतिकी का शिक्षक या रसायनशास्त्र का शिक्षक अपनी निष्ठा से समझौता किए बगैर समाजशास्त्र या राजनीति विज्ञान के शिक्षक की तुलना में कहीं ज्यादा आसानी से अपने विद्यार्थी को सन्तुष्ट कर सकता है।

विद्यार्थी और शिक्षक, दोनों के ही सामने आने वाली परीक्षा प्रणाली की बाध्यताएँ दूर करने की मन में इच्छा भर होने से उन्हें समाप्त नहीं किया जा सकता। ये बाध्यताएँ समाजशास्त्र जैसे विषय के शिक्षण में गम्भीर विकृतियाँ पैदा कर सकती हैं। विद्यार्थी और शिक्षक, दोनों ही खुद को इस परीक्षा प्रणाली का शिकार मानते हैं। वस्तुतः, उनका बहुत थोड़ा ही नियंत्रण इस तंत्र पर है जिसे समय–समय पर सुधारने की कवायदें ऐसे तरीकों से की जाती हैं जो उनमें से अधिकांश को मनमाने, सनक भरे और अबूझ लगते हैं।

परीक्षाओं को इतने बड़े स्तर, जिससे लगता है कि हम बच नहीं सकते, पर आयोजित करने की मजबूरियाँ न केवल परीक्षा प्रश्नों व उनके अपेक्षित उत्तरों के मानकीकरण, बल्कि, शिक्षण और पाठ्यपुस्तकों, जो शिक्षण का आधार होती हैं, के लेखन के मानकीकरण के लिये भी अनवरत दबाव पैदा करती हैं। कुछ विषयों के लिए मानकीकरण अन्य विषयों की तुलना में ज्यादा सफल साबित होता है। सामाजिक विज्ञानों के शिक्षक व परीक्षक प्राप्तांकों में निरन्तर बढ़ोत्तरी होते जाने के चलन में, जो कि परीक्षा प्रणाली का एक आम लक्षण बन चुका है, पीछे नहीं छूटना चाहते। और इस वजह से सामाजिक विज्ञान में भी परीक्षाओं व शिक्षण का तरीका अपरिहार्य रूप से उस नमूने का अनुसरण करने लगता है जिसे सबसे पहले प्राकृतिक विज्ञानों में लागू किया गया था, और जो वहाँ ठीक–ठाक काम करता हुआ प्रतीत होता है। इससे वे विरोधाभास और अनिश्चितताएँ दूर हो जाती हैं जो सामाजिक, राजनैतिक और आर्थिक जीवन के केन्द्र में मौजूद रहती हैं।

स्कूली बच्चों को दी जाने वाली सामाजिक विज्ञान की शिक्षा एक अन्य कारण से जटिल बन जाती है जिसे इन विषयों में मौजूद मूल्यों की समस्या कहा जा सकता है। मूल्यों पर आधारित निर्णयों को वास्तविकता पर आधारित निर्णयों से अलग करना–या कैसा होना चाहिए–वाले सवालों को–कैसा है–वाले सवालों से अलग करना – प्राकृतिक विज्ञानों के समक्ष उतनी बड़ी चुनौती खड़ी नहीं करता जितनी कि सामाजिक विज्ञान के समक्ष करता है।

सामाजिक विज्ञान में जटिल, अव्यवस्थित और तरल तथ्यों का अध्ययन शामिल रहता है। किसी भी विज्ञान के लिए जरूरी होता है कि तथ्य जैसे हैं, उन्हें सम्मानपूर्वक वैसे ही स्वीकार करके उनके साथ काम किया जाए, चाहे वे तथ्य प्रकृति से सम्बन्धित हों या समाज से। प्राकृतिक विज्ञानों में तथ्यों के प्रेक्षण, व्याख्या और विश्लेषण को व्यावहारिक बुद्धि और जन भावनाओं के दबावों से अलग रखना अपेक्षाकृत आसान होता है। पर जब हम समाज, राजनीति और अर्थव्यवस्था पर काम करते हैं तो मामला इतना सरल नहीं रह जाता। हमारी व्यक्तिगत पसन्द, हमारे दृष्टिकोणों और हमारे द्वारा किए जाने वाले तथ्यों के उन निरूपणों में प्रवेश कर जाती हैं जिनके साथ हमारा काम जुड़ा होता है। सामाजिक विज्ञान ने तथ्यों के साथ वस्तुनिष्ठ और व्यवस्थित ढंग से निपटने के अपने खुद के तरीके विकसित कर लिए हैं। ये तरीके प्राकृतिक विज्ञानों में इस्तेमाल किए जाने वाले तरीकों से भिन्न हैं। पर इसका यह मतलब नहीं है, कि प्रासंगिक तथ्यों के प्रेक्षण, व्याख्या और विश्लेषण के बजाय अपनी खुद की व्यावहारिक बुद्धि या खुद की व्यक्तिगत पसन्द को इस्तेमाल करने के मामले में समाजविज्ञानी, प्राकृतिकविज्ञानी की तुलना में किसी भी तरह से ज्यादा स्वतंत्र है, चाहे बात शिक्षण की हो या शोध की।

शिक्षित भारतीयों में उपदेश देने की एक प्रबल आन्तरिक प्रेरणा काम करती है और अपने अनुभव से मैं यह कह सकता हूँ कि यह प्रेरणा खासतौर पर शिक्षकों में ज्यादा गहरी होती है। परन्तु उपदेश देना, किसी भी तरह से विज्ञान, चाहे प्राकृतिक विज्ञान हो या सामाजिक, की पद्धतियों के अनुसार व्याख्या और विश्लेषण करने के ढंग की जगह नहीं ले सकता। यहाँ पर, विज्ञान के इन दो प्रकारों के बीच अन्तर है। भौतिकी का शिक्षक इलैक्ट्रॉन और प्रोटॉन पढ़ाते समय या रसायनशास्त्र का शिक्षक अम्लों और क्षारों के बारे में पढ़ाते समय शायद ही कभी उपदेश देने की अपनी प्रेरणा में बह सकता हो। जबकि दूसरी तरफ, सामाजिक विज्ञानों के शिक्षकों को अक्सर यह लगता है कि परिवार, नौकरशाही या खुले बाजार के बारे में पढ़ाते समय उन्हें उपदेश देने की स्वतंत्रता होती है। परिणामस्वरूप, अक्सर उनमें अपनी पसन्दों और पूर्वाग्रहों को एक न्यायसंगत

समाज के मूल्यों के रूप में पेश करने की प्रवृत्ति होती है। इसके चलते कुछ विद्यार्थियों को चीजें अस्पष्ट ही रह जाती हैं जबकि कुछ दुराग्रही हो जाते हैं।

कुछ लोग मानते हैं कि सामाजिक विज्ञान के शिक्षकों के ऊपर अपने शिष्यों के भीतर सही मूल्यों के बीज बोने और उनका पोषण करने की विशेष जिम्मेदारी है। हालाँकि, यह स्पष्ट नहीं है कि उन्हें यह करना कैसे है, क्या उन्हें इसे सामाजिक तथ्यों की व्याख्या और विश्लेषण से अलग रखकर करना चाहिए या फिर उसे इसी प्रक्रिया का एक अभिन्न हिस्सा मानना चाहिए। एक खास तरह के नैतिक मूल्यों को समाज, राजनीति, अर्थव्यवस्था की व्याख्या और विश्लेषण में शामिल कर लेना बेहद मुश्किल कार्य है जिसकी छिपी हुई कठिनाइयों को हल्के ढंग से नहीं लेना चाहिए। मैंने पहले सामाजिक विज्ञान में पद्धतियों और सिद्धान्तों से सम्बन्धित मसलों में मतभेद होने का जिक्र किया था। किन बातों को सर्वश्रेष्ठ मूल्य माना जाना चाहिए, इस सवाल पर यह मतभेद चरम पर पहुँच सकता है।

> *सामाजिक विज्ञान में भी परीक्षाओं व शिक्षण का तरीका अपरिहार्य रूप से उस नमूने का अनुसरण करने लगता है जिसे सबसे पहले प्राकृतिक विज्ञानों में लागू किया गया था, और जो वहाँ ठीक–ठाक काम करता हुआ प्रतीत होता है। इससे वे विरोधाभास और अनिश्चितताएँ दूर हो जाती हैं जो सामाजिक, राजनैतिक और आर्थिक जीवन के केन्द्र में मौजूद रहती हैं।*

निसन्देह, भारत के संविधान में कुछ निश्चित बुनियादी मूल्यों को शामिल किया गया है। शिक्षकों द्वारा इन मूल्यों की प्रकृति और उनके महत्व को सभी विद्यार्थियों को समझाया जाना चाहिए और उन्हें प्रेरित किया जाना चाहिए कि वे इन मूल्यों को अपने जीवन में चरितार्थ करें। पर संविधान में इन बुनियादी मूल्यों को बेहद वृहद और व्यापक शब्दावली में निर्धारित किया गया है। जब हम ब्यौरों तथा वर्णनों में पहुँचते हैं, असली मतभेद तब उभरकर सामने आना शुरू होते हैं। जैसा कि कहा जाता है, शैतान बारीकियों के विस्तार में ही छिपा रहता है।

क्या हमें देश भर में सभी स्कूली विद्यार्थियों की शिक्षा के लिए संविधान के ढाँचे के अन्तर्गत मूल्यों के एक अकेले वर्ग को विस्तार से समझाने हेतु परिश्रम करना चाहिए; मैं इस बारे में बिलकुल निश्चिन्त नहीं हूँ कि हम उदारवादी लोकतंत्र के बुनियादी आदर्श – अर्थात मूल्यों की विविधता, जिसमें अच्छे समाज की विविध अवधारणाएँ शामिल हैं, के लिए सहिष्णु वातावरण सुनिश्चित करना – का उल्लंघन किए बगैर इस दिशा में कितनी दूर जा सकते हैं या हमें कितनी दूर जाना चाहिए। यदि हमें भारतीय परम्परा की किसी बात पर वाकई में गौरवान्वित महसूस करना चाहिए और उसे संजोकर रखना चाहिए तो वह देश भर के लोगों में व्याप्त जीवन की विविध शैलियों के प्रति उसकी सहिष्णुता है। सामाजिक विज्ञानों के माध्यम से मूल्य–आधारित शिक्षा–को बढ़ावा देने के हमारे अतिरेक भरे जोश के द्वारा इस भावना का अवमूल्यन नहीं होना चाहिए।

जब हम पूरे भारतीय समाज की बात करते हैं तो सामाजिक प्रथाओं और सामाजिक मूल्यों की विविधता के मुद्दे पर जोर दिया जाना जरूरी है। भारत एक विराट समाज है जहाँ भाषाओं, धर्मों, जनजातियों, जातियों, सम्प्रदायों, संघों और दलों की बहुतायत है। इस विराट और जटिल समाज के किसी न किसी वर्ग की भावनाओं को ठेस पहुँचाए बगैर, एक ही प्रकार के मूल्यों को बढ़ावा देना या अच्छे समाज के बारे में केवल एक ही अवधारणा की वकालत करना, ऐसा कठिन काम है जिसे शायद ही कोई प्रभावशाली व व्यवहारकुशल ढंग से निभा पाए।

अन्त में मैं उसी अवलोकन पर वापस आता हूँ जिससे मैंने शुरुआत की थी; अच्छा नागरिक बनाने की शिक्षा में सामाजिक विज्ञान के शिक्षण का योगदान। अच्छे नागरिक तैयार करने हेतु स्कूली छात्रों को शिक्षित करने के लिए सबसे पहले तो यह जरूरी है कि उन्हें सामाजिक व प्राकृतिक दुनिया के बारे में स्पष्टता से, व्यवस्थित ढंग से और वस्तुनिष्ठ तरीके से सोचने के लिए प्रोत्साहित किया जाए। इसके आगे, सामाजिक विज्ञान में, यह जरूरी है कि उन्हें विभिन्न तरह की आर्थिक, राजनैतिक और सामाजिक व्यवस्थाओं के बारे में इस ढंग से थोड़ी जानकारी और समझ दी जाए कि, उत्साही शिक्षकों और पाठ्यपुस्तकीय लेखकों की पसन्दों और पूर्वाग्रहों के सामने, तथ्यों की व्याख्या और विश्लेषण गौण न हो जाएँ।

अन्त में, यदि हम मानते हैं कि विविधता हमारी सबसे बड़ी धरोहर है, तो हमें अपने विद्यार्थियों को इस विविधता में गहरी रुचि लेने और उसकी कीमत समझने के लिए प्रोत्साहित करना चाहिए। यहाँ, नागरिकता की शिक्षा में हमारे छात्रों को अपना जीवन जीने के तरीकों की जाँच–परख करने का रुख विकसित करने और जीवन जीने के दूसरे तरीकों के प्रति सहिष्णु रवैया अपनाने के लिए प्रोत्साहित करना ही सामाजिक विज्ञानों का सबसे महत्वपूर्ण योगदान होगा।

आन्द्रे बैटील *दिल्ली विश्वविद्यालय में अवकाशप्राप्त मानद प्राध्यापक होने के साथ ही राष्ट्रीय शोध प्राध्यापक भी हैं। उन्होंने कई विश्वविद्यालयों में व्याख्यान दिए हैं और उनकी किताबें व शोधपत्र भारत में और बाहर भी प्रकाशित हुए हैं। वे ब्रिटिश अकादमी के कॉरेस्पॉडिंग फैलो हैं और रॉयल ऐन्थ्रोपोलॉजिकल इंस्टीट्यूट के ऑनरेरी फैलो हैं। 2005 में उन्हें भारत के राष्ट्रपति द्वारा पद्मभूषण से सम्मानित किया गया।*

प्रो. बैटील कई संस्थाओं में अतिथि अकादमिक पदों पर भी रहे हैं। वे मैनचैस्टर विश्वविद्यालय में साइमन फैलो, केम्ब्रिज विश्वविद्यालय में कॉमनवैल्थ विज़िटिंग प्रोफेसर, लंदन स्कूल ऑफ इकोनॉमिक्स में विज़िटिंग प्रोफेसर, बर्कले स्थित कैलिफोर्निया विश्वविद्यालय में डिस्टिंग्विश्ड विज़िटंग लैक्चरर, बर्लिन स्थित इंस्टीट्यूट ऑफ एडवांस्ड स्टडी में फैलो और ऐडिनबर्ग स्थित इंस्टीट्यूट फॉर एडवांस्ड स्टडी इन द ह्यूमैनिटीज़ में विज़िटिंग फैलो रहे हैं। उनसे इस andrebeteille@yahoo.co.in *ईमेल पते पर सम्पर्क किया जा सकता है।*

02 स्कूली सामाजिक विज्ञान का विवादित क्षेत्र

पूनम बत्रा

सामाजिक विज्ञान या सामाजिक अध्ययन?

यह एक सुपरिचित तथ्य है कि एक अध्ययन क्षेत्र की तरह सामाजिक विज्ञान का गठन अपेक्षाकृत हाल में, उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्ध से, शुरू हुआ। स्कूली विषय की तरह सामाजिक विज्ञान की विषयवस्तु, शिक्षण पद्धतियों और सैद्धान्तिक आधारों का विकास तो और भी बाद में हुआ है। वास्तव में तो, प्राथमिक तथा माध्यमिक स्कूल शिक्षा तंत्रों में सामाजिक विज्ञान को केन्द्रीय स्थान न मिल पाना गम्भीर चिन्ता का विषय रहा है। व्यवस्थित रूप से सामाजिक विज्ञान के विषय विश्वविद्यालय के स्तर पर पढ़ाए जाते हैं। प्राथमिक और माध्यमिक स्तरों पर जिस रूप में इन्हें पढ़ाया जाता है उसे आमतौर पर सामाजिक अध्ययन कहा जाता है। सामान्यतया इतिहास, भूगोल और नागरिक शास्त्र मिडिल स्कूलों में पढ़ाए जाते हैं। हाईस्कूलों के विद्यार्थी (मानविकी या कला शाखाओं के अन्तर्गत) राजनीति विज्ञान, अर्थशास्त्र, समाजशास्त्र या मनोविज्ञान का अध्ययन करते हैं। शायद यही कारण है कि सामाजिक विज्ञान एक सुगठित ज्ञानक्षेत्र की तरह स्कूली पाठ्यक्रम का अंग नहीं बना है। कुछ विद्वानों का तर्क है कि 'सामाजिक विज्ञान की सार्वभौमिक प्रकृति के खिलाफ वैश्विक ताकतों तथा साम्प्रदायिक ताकतों के साथ–साथ क्षेत्रवादी हमलों के परिणामस्वरूप सामाजिक विज्ञानों की प्रकृति सिकुड़कर केवल सामाजिक अध्ययन बनकर रह गई है' (चालम, 2002 :922)। परन्तु एक स्कूली विषय की तरह सामाजिक अध्ययन के शीर्षक पर विशेष अर्थ में दिए जाने वाले जोर को उसके सामाजिक–ऐतिहासिक सन्दर्भ में समझा जाना जरूरी है।

स्कूलों में सामाजिक विज्ञान के नाम पर क्या पढ़ाया जाना चाहिए, इसके सबसे प्रारम्भिक निरूपणों में से एक ऐडगर वैस्ली (1937) के द्वारा दी गई परिभाषा पर आधारित है, जिनकी दृष्टि में 'शैक्षणिक उद्देश्यों के लिए सरल बनाए गए सामाजिक विज्ञान ही सामाजिक अध्ययन हैं।' सामाजिक अध्ययन के आधारों पर विचार करते हुए लॉटन (1981: 36) ने सामाजिक अध्ययन की पाठ्यचर्या की परिभाषा इस प्रकार की थी ''एक ऐसी पाठ्यचर्या जो सामाजिक विज्ञानों तथा अन्य विषयों से चुने गए उपयुक्त ज्ञान और अनुभव के माध्यम से युवाओं को उनके समाज से जोड़कर उन्हें पूर्ण वयस्क मनुष्यों के रूप में विकसित होने में सहायक होती है।'' वे फिर कहते हैं कि यद्यपि व्यक्ति और समाज की आवश्यकताओं की धारणाओं के आधार पर समय तथा सन्दर्भ बदलने के साथ सामाजिक अध्ययन की पाठ्यचर्या के बदलने की सम्भावना रहती है, तथापि इसके तीन लक्ष्यों व्यक्ति की आवश्यकताओं; अकादमिक विषयवस्तु तथा नागरिक शिक्षा, के बीच समन्वय स्थापित किया जाना जरूरी है। अन्य विद्वानों ने सामाजिक अध्ययन की पढ़ाई की आवश्यकता इस कारण से प्रतिपादित की क्योंकि समाज को ऐसे वयस्कों की जरूरत होती है जिन्हें नागरिक की तरह अपने अधिकारों और जिम्मेदारियों का ज्ञान होता है, और सामाजिक अध्ययन इन लक्ष्यों की पूर्ति बेहतर ढंग से कर सकता है। हालाँकि, जैसा रॉस्की का कथन है, ''नागरिकता की शिक्षा पर सामाजिक अध्ययन का कोई एकाधिकार नहीं है। अन्य विषय जैसे कि साहित्य, कला, संगीत, विज्ञान और यहाँ तक कि खेल भी नागरिकता की शिक्षा में योगदान देते हैं''।

बीसवीं सदी के अन्तिम दो दशकों के दौरान शिक्षा में मानववादी मनोविज्ञान के बढ़ते हुए प्रभाव के चलते स्कूली शिक्षा की बच्चों पर केन्द्रित पद्धतियों के विद्यमान प्रतिमानों के साथ नागरिकता की शिक्षा का समन्वय करने के लिए सामाजिक अध्ययन को उपयुक्त क्षेत्र माना जाने लगा। इस ढाँचे में, 'सामाजिक अध्ययन जिस तरह व्यक्ति को अपनी (और दूसरों की) मानवीयता से जुड़ने के लिए आग्रहपूर्वक आमंत्रित करता है वह इसका सबसे प्रभावशाली पहलू बन गया' (विशॉन आदि, 1998)।

> *अधिकांश भारतीय स्कूलों में सामाजिक विज्ञान (जिसे सामाजिक अध्ययन कहा जाता है) को परिभाषित करने वाले कारक हैं: पाठ्यपुस्तक में क्या दिया जाता है और विषय सामग्री को किस तरह प्रस्तुत और व्यवस्थित किया जाता है।*

हाल में इवान्स (2004 :47) ने कुछ विवादों, जिन्हें वे 'सामाजिक अध्ययन की लड़ाइयाँ' कहते हैं, पर विचार करते हुए सामाजिक अध्ययन में पाँच स्पष्ट खेमों को चिन्हित किया है, जिनमें से प्रत्येक का अपना–अपना दर्शन, धारणाएँ और शैक्षणिक पद्धतियाँ हैं। इनमें शामिल हैं: पारम्परिक इतिहासकार जो इतिहास को सामाजिक अध्ययन की धुरी माने जाने का समर्थन करते हैं; वे जो सामाजिक अध्ययन के सामाजिक विज्ञान होने की वकालत करते हैं; सामाजिक दक्षता के हिमायती शिक्षाविद् जो एक सुगमतापूर्वक नियंत्रित, दक्ष समाज रचने की आशा करते हैं; डिअन प्रयोगवादी जो वैचारिक सोच विकसित करने पर ध्यान केन्द्रित करते हैं, तथा सामाजिक रचनात्मकतावादी जो सामाजिक विज्ञान में सामाजिक

अध्ययन को एक अग्रणी रूपान्तरकारी भूमिका में ढालते हैं। इवान्स की दृष्टि में 'विशेष आग्रह वाले समूहों के बीच जो कुछ भी पारस्परिक संघर्ष की तरह शुरू हुआ वह धीरे–धीरे उस प्रगतिशील सामाजिक अध्ययन के खिलाफ युद्ध के रूप में विकसित हो गया जिसने पाठ्यचर्या की वर्तमान और भविष्य की दिशा को अत्यधिक रूप से प्रभावित किया है।' विभिन्न दृष्टिकोणों में समझौता होने के फलस्वरूप एक उदार, सर्वग्राही खेमे का प्रादुर्भाव हुआ, जिसने वैस्ली के विचार को प्रतिध्वनित करते हुए एक व्यापक दृष्टिकोण की वकालत की जो 'सामाजिक अध्ययन' का आशय शैक्षणिक उद्देश्यों की दृष्टि से सरलीकृत, समेकित और रूपान्तरित इतिहास तथा सामाजिक विज्ञानों को मानता है। धीरे–धीरे अनेक देशों में 'प्रगतिशील शिक्षा' के विचार के अन्तर्गत सामाजिक अध्ययन का समेकित दृष्टिकोण, जिसमें इतिहास का भी विलय हो गया, आधिकारिक पाठ्यचर्या बन गई (लेमिंग, 2003)।

स्कूलों में सामाजिक विज्ञान क्या है और क्या होना चाहिए, इसे लेकर बहस जारी है और आगे भी बहसें होती रहेंगी। पर अधिकांश भारतीय स्कूलों में सामाजिक विज्ञान (जिसे सामाजिक अध्ययन कहा जाता है) को परिभाषित करने वाले कारक हैं: पाठ्यपुस्तक में क्या दिया जाता है और विषय सामग्री को किस तरह प्रस्तुत और व्यवस्थित किया जाता है।

भारतीय स्कूलों में सामाजिक विज्ञान शिक्षण का विकास

अन्य नए उभरते हुए राष्ट्रों की तरह उपनिवेशवाद की समाप्ति के बाद भारत में भी सामाजिक विज्ञान का शिक्षण राष्ट्र निर्माण और आधुनिकीकरण के लिए आवश्यक समझी गई जरूरतों से बहुत प्रभावित हुआ। भारत में सामाजिक विज्ञान के उद्भव और उद्देश्य की शुरुआत 'नागरिक की सामान्य शिक्षा में सामाजिक विज्ञान के शिक्षण का स्थान' (यूनेस्को, 1954 : 60) पर हुए सार्थक विचार–विमर्श से मानी जा सकती है। सामाजिक विज्ञान शिक्षा के इस सूत्रबद्ध लक्ष्य पर लगातार दिए गए जोर का प्रतिबिम्ब उन दृष्टिकोणों में झलकता है जो स्वतंत्र भारत के प्रारम्भिक कुछ दशकों में उभरे, और जो साथ ही साथ उस बहस से भी प्रभावित थे जो सामाजिक विज्ञान शिक्षा के महत्व को लेकर नए राष्ट्रों में चल रही थी। इस प्रकार यह माना गया कि नागरिकता के लिए शिक्षा को एक नया अर्थ प्राप्त हुआ और स्कूल को ऐसी शैक्षणिक शक्ति के नाभिकेन्द्र की तरह देखा गया। बाद में इस प्रश्न पर कई दृष्टिकोण उभरे जिनमें राष्ट्र निर्माण पर असंदिग्ध रूप से दिया गया जोर भी शामिल था जिसे स्वतंत्रता के पश्चात बने पहले भारतीय राष्ट्रीय शिक्षा आयोग की रिपोर्ट (भारत सरकार, 1966) में स्पष्ट रूप से व्यक्त किया गया।[1]

स्वातंत्रोत्तर भारत के प्रारम्भिक वर्षों में राष्ट्रीय शैक्षणिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद (नेशनल काउंसिल फॉर ऐजुकेशन रिसर्च एण्ड ट्रेनिंग – एनसीईआरटी) और उसके क्षेत्रीय रूपों के माध्यम से नेहरूवादी ढाँचे का वर्चस्व रहा। अपने शुरुआती वर्षों में एनसीईआरटी ने 'भारत में सामाजिक विज्ञान की स्थिति' पर एक अध्ययन किया।[2] इस अध्ययन से उस समय भारतीय स्कूलों में प्रचलित सामाजिक विज्ञान पाठ्यक्रमों के विभिन्न पहलुओं और कमियों के बारे में अन्तर्दृष्टि प्राप्त हुई। इसके परिणामस्वरूप, कक्षाओं को पढ़ाने वाले शिक्षकों, विषय के विद्वानों और शिक्षक–प्रशिक्षकों के सहयोग से जून 1963 से जून 1964 के बीच चार अखिल भारतीय कार्यशालाएँ आयोजित की गईं। कक्षा 1 से लेकर कक्षा 11 तक के लिए पाठ्यक्रम विवरण विकसित किए गए। इसके आधार पर कक्षा 3 से कक्षा 5 तक के लिए 'राज्य', 'देश', और 'विश्व' की जानकारी देने वाली पाठ्यपुस्तकें तैयार की गईं। कक्षा 6 से 8 तक के लिए इतिहास, नागरिक शास्त्र तथा भूगोल की अलग–अलग पाठ्यपुस्तकें तैयार की गईं (गोयल एवं शर्मा, 1987 :176)।

नागरिकता की शिक्षा का जो विचारसूत्र स्कूलों में सामाजिक विज्ञान को शामिल किए जाने के प्रारम्भिक दौर का आधार था, वह 1975 से लगातार सभी राष्ट्रीय पाठ्यचर्या दस्तावेजों में भी देखा जा सकता है। परन्तु इन दस्तावेजों का गहराई से किया गया अध्ययन पाठ्यचर्या के इस लक्ष्य में किए गए बारीक भेदों और उसकी आमूल रूप से परिवर्तनकारी व्याख्याओं को उजागर करता है। जहाँ प्रथम पाठ्यचर्या की रूपरेखा (करीकुलम फ्रेमवर्क, 1975) का लक्ष्य सामाजिक विज्ञानों के शिक्षण के द्वारा बड़े हो रहे कल के नागरिकों को समुदाय, राज्य, देश तथा सारे संसार की गतिविधियों में भाग लेने में समर्थ बनाना था, वहीं प्राथमिक एवं माध्यमिक शिक्षा के लिए राष्ट्रीय पाठ्यचर्या (नेशनल करीकुलम फॉर ऐलिमैंट्री एण्ड सैकेण्ड्री ऐजुकेशन, एनसीईआरटी, 1988 :5) ने 'अपने अधिकारों तथा कर्तव्यों के प्रति जागरूक और हमारे संविधान में स्थापित सिद्धान्तों के प्रति समर्पित नागरिक समुदाय' बनाने के लिए सामाजिक विज्ञानों के शिक्षण का निर्णायक महत्व होने पर जोर दिया। इसके एक दशक से भी अधिक समय बाद स्कूली शिक्षा के लिए राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा (नेशनल करीकुलम फ्रेमवर्क फॉर स्कूल ऐजुकेशन – एनसीईआरटी, 2000), जो एक नए राजनैतिक शासन के अन्तर्गत बनाई गई थी, ने नागरिकता की शिक्षा को नए सिरे से परिभाषित किया जिसमें 'बुनियादी कर्तव्यों के बोध (और) ...भारतीय होने में गर्व की भावना' विकसित करने के उद्देश्य से 'राष्ट्रीय पहचान को पोषित करने वाली विषयवस्तु' पर स्पष्ट रूप से जोर दिया गया। यह बाद वाला दृष्टिकोण 1975 की पाठ्यचर्या की रूपरेखा का एकदम विरोधाभासी था जिसमें ''संकीर्ण, क्षेत्रीय, उग्र राष्ट्रवादी और

दकियानूसी प्रवृत्तियों को रोकने के लिए...सामाजिक विज्ञानों के शिक्षण से मानवीयता, धर्म निरपेक्षता और लोकतंत्र के मूल्यों को बढ़ावा देने, और एक न्यायोचित वैश्विक व्यवस्था, अधिकाधिक आर्थिक और सामाजिक कल्याण, कम से कम हिंसा और अधिक से अधिक पर्यावरणीय स्थिरता के प्रमुख मूल्यों को हासिल करने के लिए आवश्यक ज्ञान और दृष्टिकोणों को विकसित करने'' का स्पष्ट रूप से उल्लेख किया गया था (एनसीईआरटी, 1975 :19)।

> *सामाजिक विज्ञान शिक्षा के इस सूत्रबद्ध लक्ष्य पर लगातार दिए गए जोर का प्रतिबिम्ब उन दृष्टिकोणों में झलकता है जो स्वतंत्र भारत के प्रारम्भिक कुछ दशकों में उभरे, और जो साथ ही साथ उस बहस से भी प्रभावित थे जो सामाजिक विज्ञान शिक्षा के महत्व को लेकर नए राष्ट्रों में चल रही थी। इस प्रकार यह माना गया कि नागरिकता के लिए शिक्षा को एक नया अर्थ प्राप्त हुआ और स्कूल को ऐसी शैक्षणिक शक्ति के नाभिकेन्द्र की तरह देखा गया।*

ऐसा ही तीखा विरोधाभास एनसीएफएसई, 2000 में व्यक्त किए गए विचारों और 1988 की पाठ्यचर्या दस्तावेज में भी दिखाई देता है, जिसमें सामाजिक विज्ञान के शिक्षण द्वारा नागरिकों में सामाजिक कौशलों और नागरिक योग्यताओं का विकास करके उन्हें 'सामाजिक और आर्थिक पुनर्निमार्ण के कार्य में भागीदार बनाने' की बात कही गई थी। उसने सामाजिक विज्ञानों को जिस समग्र लक्ष्य के अन्तर्गत स्थान दिया था, वह था: 'शिक्षा को मानव संसाधन विकास का एक ऐसा शक्तिशाली उपकरण बनाना जो वांछित सामाजिक रूपान्तरण में सहायक हो' (एनसीईआरटी, 1988 : 3)।

राष्ट्रीय पाठ्यक्रम रूपरेखा का सबसे हाल में किया गया पुनरावलोकन (एनसीएफ रिव्यू, एनसीईआरटी, 2005), जहाँ एक ओर संविधान में स्थापित मूल्यों के प्रति प्रतिबद्धता को बनाए रखने की आवश्यकता को फिर से दोहराता है, वहीं वह सामाजिक विज्ञानों के शिक्षण के लक्ष्य में मूलभूत परिवर्तन की भी वकालत करता है। पहले तो यह एक 'न्यायसंगत और शान्तिपूर्ण समाज' विकसित करने में सामाजिक विज्ञान के दृष्टिकोण तथा ज्ञान के निर्णायक महत्व को समझाता है, और इस प्रकार शिक्षा में इसकी व्यापक अनिवार्यता को स्वीकार करता है, तथा इस अर्थ में यह 'सामाजिक विज्ञान को शिक्षा के समग्र लक्ष्य के अन्तर्गत (पुनः) स्थापित करता है' जिसकी ओर 1988 की पाठ्यचर्या रूपरेखा में संकेत किया गया था। दूसरे, जो अधिक महत्वपूर्ण है, यह सामाजिक जाँच–पड़ताल को एक ऐसे वैज्ञानिक अभिक्रम की तरह स्थापित करता है जिसे पितृसत्तात्मक ढाँचे को चुनौती देना चाहिए और विद्यार्थियों में 'ऐसी आलोचनात्मक नैतिक और मानसिक ऊर्जा (उत्पन्न करना चाहिए) जो उन्हें सामाजिक ताकतों के प्रति जागरूक बनाए जिनसे इन संवैधानिक मूल्यों को खतरा हो... (और) उनमें से संवेदनशील, जिज्ञासु प्रश्नकर्ता और रूपान्तरकारी नागरिक विकसित करे...' (एनसीईआरटी, 2005 :48) ।

> *भौतिक और प्राकृतिक विज्ञानों (जिनका नवउदारवाद के ढाँचे में प्रबन्धन के अध्ययन के साथ तालमेल बैठता है) के वर्चस्व ने ऐसी आम धारणा निर्मित कर दी है कि सामाजिक विज्ञान अनावश्यक है। इसलिए, एक ऐसे दौर में जब शिक्षा के उपकरणीय लक्ष्यों के द्वारा व्यक्ति को सामाजिकता से पृथक किए जाने का खतरा है, आज स्कूली शिक्षा में सामाजिक विज्ञानों के महत्व को पुनर्स्थापित करना एक बड़ी चुनौती है।*

परन्तु कक्षाओं में अभी भी यह आम धारणा प्रचलित है कि सामाजिक अध्ययन केवल जानकारी प्रदान करता है, और लिखित पाठ्य सामग्री पर अत्यधिक केन्द्रित रहता है जिसे परीक्षाओं के लिए रटकर याद करना आवश्यक होता है। हालाँकि यह दृष्टिकोण उस तरीके के कारण उपजता और बना रहता है जिस तरह सामाजिक विज्ञान के विषय स्कूलों में पढ़ाए जाते हैं, पर यह पाठ्यचर्या विकसित करने वाले अनेक लोगों की सोच पर भी हावी रहता है। मसलन, एनसीएफई, 2000 की यह मान्यता, कि इतिहास की सामग्री में 'काफी कटौती' किए जाने की जरूरत है, इस तर्क से सहमत है कि सामाजिक विज्ञान 'अतीत के बारे में अनावश्यक जानकारी' प्रदान करता है और इसलिए इसे विषयवस्तु की दृष्टि से नागरिक शास्त्र और भूगोल की पाठ्यपुस्तकों में समाहित कर दिया जाना चाहिए। इतिहास के दबाए जाने की विद्वानों ने 'सामाजिक विस्मृति' के एक रूप की तरह चर्चा की है (जैकोबी, 1975), और बीसवीं सदी के तीसरे चतुर्थांश में अमेरिका में होने वाली पाठ्यचर्या सम्बन्धी बहसों में किए गए 'इतिहास की उपेक्षा करने के आह्वान' को 'खुद चिन्तन पर ही आक्रमण' (जिरो, 1981) कहा गया है। इतिहास लेखन में 'सत्य' के दावों पर प्रश्न उठाते हुए मेनन (2010) का तर्क है कि 'समाज को ऐतिहासिक रूप से निर्मित' माने जाने की और 'इतिहास को राजनैतिक हस्तक्षेप के रूप में देखने की' पड़ताल करने की जरूरत है।

सामाजिक विज्ञानों के खिलाफ दूसरा तर्क है कि वे उन 'कौशलों' से रहित होते हैं जो वास्तविक संसार में कार्य करने के लिए आवश्यक हैं। भौतिक और प्राकृतिक विज्ञानों (जिनका नवउदारवाद के ढाँचे में प्रबन्धन के अध्ययन के साथ तालमेल बैठता है) के वर्चस्व के साथ मिलकर इस तर्क ने ऐसी आम धारणा निर्मित कर दी है कि सामाजिक विज्ञान अनावश्यक है। इसलिए, एक ऐसे दौर में जब शिक्षा के उपकरणीय लक्ष्यों के द्वारा व्यक्ति को सामाजिकता से पृथक किए जाने का खतरा है, आज स्कूली शिक्षा में सामाजिक विज्ञानों के महत्व को पुनर्स्थापित करना एक बड़ी चुनौती है।

जैसा कि जिरो (1981) का तर्क है कि, स्कूली पाठ्यचर्या में सामाजिक विज्ञानों के शामिल किए जाने के पक्ष में एक महत्वपूर्ण तर्काधार सामाजिक रूप से गढ़ी गई उन मान्यताओं की जाँच–पड़ताल करने की आवश्यकता है जो पाठ्यचर्या और कक्षा के सामाजिक सम्बन्धों के सरोकारों का आधार होती हैं। सामाजिक विज्ञानों के शिक्षण पर केन्द्रित आधार पत्र (एनसीईआरटी, 2006) स्कूल शिक्षा में सामाजिक विज्ञान की भूमिका में ज्ञानतात्विक बदलाव की सशक्त वकालत करता है। उसका तर्क है कि सामाजिक विज्ञानों की ऐसे सामाजिक, सांस्कृतिक और विश्लेषणात्मक कौशल विकसित करने में महत्वपूर्ण भूमिका है जो बढ़ती हुई पारस्परिक निर्भरता वाले आज के संसार से तालमेल बैठाने के लिए, और इसके क्रियाकलापों को संचालित करने वाली राजनैतिक तथा आर्थिक वास्तविकताओं से निपटने के लिए आवश्यक हैं।

स्कूलों में सामाजिक विज्ञानों के शिक्षण में प्रमुख वाद–विवाद

समेकित सामाजिक विज्ञान बनाम अलग विषयों पर जोर

अनेक विद्वानों ने तर्क दिया है कि इतिहास, भूगोल, अर्थशास्त्र और अन्य सामाजिक विज्ञान विषयों को उनके अन्तर्निहित मूल्य के लिए पढ़ाया जाना चाहिए। इस दृष्टिकोण में प्रमुख स्थान विषय की प्रकृति और उसकी कार्यप्रणाली का होता है और माना जाता है कि वे ही विद्यार्थियों की उस समाज को समझने में मदद करते हैं जिसमें वे रहते हैं।

सामाजिक विज्ञानों के शिक्षण में समेकित दृष्टिकोण के पक्ष में दिए जाने वाले तर्क बच्चों की संज्ञानात्मक प्रक्रियाओं के साथ सामन्जस्य पैदा करने की आवश्यकता से निकलते हैं, क्योंकि यह जरूरी नहीं है कि बच्चे संसार को अकादमिक विषयों के विभाजनों के माध्यम से देखें।[3] अकादमिक विषयों को ऐसी ऐतिहासिक–सांस्कृतिक रचनाओं की तरह देखा जाता है जिनमें से प्रत्येक की अपनी व्याख्या और दृष्टि होती है। तर्क दिया जाता है कि यह दृष्टि बच्चे के संसार को समग्रता में देखने के 'स्वाभाविक' तरीके पर जबरदस्ती लादी गई हो सकती है। समेकित दृष्टिकोण के पक्ष में दूसरा तर्क यह है कि पारम्परिक अकादमिक विषयों पर सख्ती से अलग–अलग ध्यान केन्द्रित करने पर, उन बहुविषयी ज्ञान क्षेत्रों की उपेक्षा होने का खतरा रहता है जो 'अपेक्षाकृत नए' सामाजिक विज्ञानों से उपजे हैं, जैसे सामाजिक मानव विज्ञान, पर्यावरण शिक्षा, और जनसंख्या अध्ययन, जो प्राकृतिक और सामाजिक विज्ञानों से सामग्री लेते हैं।

सामाजिक विज्ञान की समेकित पाठ्यचर्या विद्यार्थियों को समाज के विभिन्न पहलुओं की पारस्परिक निर्भरता और उनके बीच के आन्तरिक सम्बन्धों को समझने में सहायक प्रतीत होती है। सामाजिक विज्ञानों की अवधारणाओं और व्यापक सिद्धान्तों के माध्यम से विशेष प्रश्नों और समस्याओं पर विचार करके और आवश्यकतानुसार विभिन्न विषयों से जानकारियाँ लेकर एकीकरण को हासिल किया जाता है। सामाजिक अध्ययन का यह दृष्टिकोण सबसे पहले अमेरिका में सामाजिक अध्ययन समिति की रिपोर्ट (डन, 1916) में प्रस्तावित किया गया था। इसके बाद इसे 1930 के दशक में हैरॉल्ड रग की पाठ्यपुस्तक शृंखला 'मैन एण्ड हिज़ चेंजिंग सोसाइटी '(मनुष्य और उसका बदलता समाज) से बल मिला। यह तर्क दिया गया कि,'रग का लक्ष्य सामाजिक अध्ययन को उसके विषयवार खण्डों से छुटकारा दिलाना था। उसके दृष्टिकोण से, इसके बजाय पाठ्यचर्या को छात्र का ध्यान तात्कालिक समस्याओं पर केन्द्रित करना चाहिए...जैसे कि निर्बाध पूंजीवाद की अतियाँ, आय और सम्पत्ति का अनुचित वितरण, बेरोजगारी, वर्गसंघर्ष, आप्रवासन, द्रुत सांस्तिक परिवर्तन और साम्राज्यवाद, ये रग की पाठ्यपुस्तक में शामिल प्रसंग थे...और इसका लक्ष्य तत्कालीन समाज और परम्परा के चुने हुए पहलुओं की समालोचना होना चाहिए (लैमिंग, 2003 : 126)।

उस समय के प्रगतिशील शैक्षणिक विचारों, जिनका जोर एक 'अधिक सामूहिक समाज व्यवस्था' निर्मित करने पर था, से जुड़े होने के कारण इस दृष्टिकोण को सामाजिक अध्ययन शिक्षण की पद्धतियों पर लिखी गई पाठ्यपुस्तकों से और भी समर्थन मिला (हंट एण्ड मैटकाफ, 1955/1968)। समेकित पद्धति ने विषयवस्तु का खास सवालों और समस्याओं से तालमेल बैठाने का प्रयास किया। 'जनमुद्दों' को केन्द्र में रखने वाला दृष्टिकोण अमेरिका में 1960 के दशक में हार्वर्ड सोशल स्टडीज प्रॉजेक्ट से निकला (लैमिंग, 2003 :128, में उल्लिखित ऑलिवर एण्ड शेवर, 1966)। इनमें ऐसे अनेक मुद्दे शामिल हो सकते हैं जो आज संसार के सामने हैं, जैसे बढ़ती हुई गरीबी, पर्यावरण प्रदूषण तथा धार्मिक हिंसा। किसी विशेष समस्या या विषय पर ध्यान केन्द्रित करते हुए, विद्यार्थी विभिन्न विषयों के दृष्टिकोणों और विचारों का उपयोग करते हैं। ऐसा तर्क

दिया जाता है कि समस्या के तह में जाने की यह पद्धति विद्यार्थियों को समूचे समाज के बारे में दृष्टि प्रदान करने के लिए उपयोगी है, क्योंकि हर समस्या में जीवन के विविध पहलुओं को किसी खास ढंग से समझना पड़ता है।

> *सामाजिक विज्ञानों के शिक्षण में समेकित दृष्टिकोण के पक्ष में दिए जाने वाले तर्क बच्चों की संज्ञानात्मक प्रक्रियाओं के साथ सामन्जस्य पैदा करने की आवश्यकता से निकलते हैं, क्योंकि यह जरूरी नहीं है कि बच्चे संसार को अकादमिक विषयों के विभाजनों के माध्यम से देखें।*

उसी समय ऑस्ट्रेलिया में मोनाश विश्वविद्यालय ने 1967 में अपनी पाठ्यचर्या विकास परियोजना में एकीकरण को एक भिन्न मोड़ दिया। इस परियोजना में कुछ चुने हुए प्रसंगों को लेकर सामाजिक अध्ययन का एक ऐसी पाठ्यचर्या विकसित की गई जो सामाजिक अध्ययन के 'अधिक नए' विषयों को स्कूली शिक्षा में समाहित करती थी। यह पाठ्यचर्या 'समाज में मनुष्य' को केन्द्रीय सूत्र मानकर रचा गया था। इस दृष्टिकोण ने हर विषय की खास पद्धति को समेकित पाठ्यचर्या में समाहित करने का प्रयास किया। इसमें विभिन्न विषयसूत्रों की पड़ताल करने के दौरान विद्यार्थी 'नौसिखिए सामाजिक वैज्ञानिकों' की तरह काम करते हैं। यह इन मान्यताओं पर आधारित था कि सामाजिक विज्ञान की तकनीकें आँकड़ों के विश्लेषण और उनकी व्याख्या करने के लिए आवश्यक क्षमताओं के विकास में सहायक होती हैं, और यह कि, करने के द्वारा सीखना एक महत्वपूर्ण शैक्षणिक सिद्धान्त था (हंट, 1971)। समेकित पाठ्यचर्या की इस प्रमुख आलोचना को देखते हुए कि यह विद्यार्थियों का सामाजिक विज्ञान के अलग–अलग विषयों की पद्धतियों से परिचय नहीं कराती, मोनाश विश्वविद्यालय के प्रयास विशेष रूप से महत्वपूर्ण हो जाते हैं।

पर समेकित सामाजिक विज्ञान पाठ्यचर्या के विचार को भारत में हुई पाठ्यचर्या बहस में कोई विशेष महत्व नहीं मिला है। प्रारम्भिक उत्तर–औपनिवेशिक दौर में वकील (1954) द्वारा सामाजिक विज्ञानों में परस्पर सक्रिय सहयोग का सुझाव दिया गया था। यह तर्क दिया गया था कि सहयोग की इस आवश्यकता को ''किसी विशेष सामाजिक विज्ञान को उपलब्ध ज्ञान की सामग्री के विस्तार के दृष्टिकोण से नहीं देखा जाना चाहिए क्योंकि कई मामलों में अध्ययन के ऐसे पहलुओं जो किसी विशेष सामाजिक विज्ञान में शामिल नहीं होते, का अधिक गहरा विकास दृष्टिकोण और कार्यपद्धति में परिवर्तन पर निर्भर करता है... ।'' तर्क को स्पष्ट करते हुए आगे कहा गया है कि ''यदि व्यक्ति केवल अपने अध्ययन विषय में ही रत रहता है तो ज्ञान के कुछ ऐसे छिपे हुए क्षेत्र हो सकते हैं जो उसे उपलब्ध न हों'' (वकील, 1954 :75)।

'समेकित पद्धति' पर हुई गिनी–चुनी चर्चाओं में से एक का जिक्र ''दस–वर्षीय स्कूल'' के पाठ्यचर्या दस्तावेज (1975) में मिलता है जिसमें इसे प्राथमिक, मिडिल और निचले माध्यमिक स्तर पर सामाजिक विज्ञानों को पढ़ाने के सम्भावित तरीकों में से एक बताया गया है।[4] यह दस्तावेज इस मुद्दे के इर्द–गिर्द होने वाली बहसों की प्रकृति की गहरी समझ दर्शाते हुए आगे कहता है कि इसके लिए विषय–प्रसंगों को चुने जाने के दौरान 'विषय के सामान्य ढाँचे को बनाए रखने और ऐसे तथ्यों, जो किसी विकासशील किशोर के लिए उपयोगी हों, को शामिल करने की सावधानी बरती जा सकती है' (एनसीईआरटी, 1975 : 21)। परन्तु इस दृष्टिकोण को कभी अपनाया नहीं गया और पाठ्यपुस्तकें इतिहास, नागरिक शास्त्र और भूगोल के साथ ऐसे स्वतंत्र विषयों की तरह पेश आती रहीं जिनमें कोई अन्तर्सम्बन्ध नहीं होता। इसके अलावा तीनों विषयों में प्रस्तुत किए गए प्रतिमान भी एक दूसरे से बिलकुल अलग बने रहे। यह बात विशेषकर भूगोल पर लागू होती है जिसकी विषयवस्तु (इतिहास और नागरिक शास्त्र के विपरीत) राष्ट्रवाद पर सत्ताधारी विमर्श से प्रभावित नहीं होती।

> *एनसीएफ, 2005 की दृष्टि में विषयों में पारस्परिक सम्बन्ध जोड़ने वाली सोच विषयसामग्री के प्रस्तुतिकरण में झलकना चाहिए, और इसे एक नए विषय – 'सामाजिक और राजनैतिक जीवन', जो अर्थशास्त्र, समाजशास्त्र, और राजनीति विज्ञान के अध्ययनक्षेत्रों से सामग्री लेता है और पारम्परिक रूप से नागरिक शास्त्र कहलाने वाले विषय की जगह लेता है – में विशेष विषयसूत्रों को प्रस्तुत करने की कोशिश भी की गई है।*

एनसीएफ, 2005 भी मिडिल और हाईस्कूल स्तरों पर विद्यार्थियों को सामाजिक विज्ञानों से जोड़ने में विभिन्न अध्ययन क्षेत्रों की सीमा रेखाएँ बनाए रखने की बात दोहराता है। एनसीएफ, 2005 की दृष्टि में विषयों में पारस्परिक सम्बन्ध जोड़ने वाली सोच विषयसामग्री के

प्रस्तुतिकरण में झलकना चाहिए, और इसे एक नए विषय – 'सामाजिक और राजनैतिक जीवन', जो अर्थशास्त्र, समाजशास्त्र, और राजनीति विज्ञान के अध्ययनक्षेत्रों से सामग्री लेता है और पारम्परिक रूप से नागरिक शास्त्र कहलाने वाले विषय की जगह लेता है – में विशेष विषयसूत्रों को प्रस्तुत करने की कोशिश भी की गई है। प्राथमिक स्तर पर एक विषय पर्यावरण अध्ययन भी विभिन्न विज्ञानों और सामाजिक विज्ञानों से जानकारी लेने वाले प्रसंगों को जोड़कर पेश करने का प्रयास करता है।

शिक्षा और राष्ट्रवाद के लक्ष्य

शिक्षा के सामाजिक सन्दर्भ और शिक्षा के लक्ष्यों से जुड़े प्रश्नों को एक राष्ट्रीय नागरिक समुदाय के विकास के अन्तर्गत सीमित कर दिया गया है। दार्शनिक विमर्शों में अपने को शिक्षा के बारे में वस्तुपरक सर्वव्यापक सत्यों की तलाश तक सीमित रखने की प्रवृत्ति रही है। हॉब्ज़बॉम (1952 : 9) ने तर्क सहित बताया कि किस तरह सारे यूरोप में आधुनिक राष्ट्रराज्यों के आविर्भाव के उपरान्त नौकरशाही व्यवस्था ने शिक्षा पर नियंत्रण करके 'राष्ट्र की छवि और विरासत' का प्रचार किया। उत्तर–औपनिवेशिक भारत में भी शिक्षा, खासकर सामाजिक विज्ञान पाठ्यचर्या, के माध्यम से राष्ट्रीय अस्मिता के निर्माण को बहुत महत्व दिया गया। कोठारी आयोग की रिपोर्ट में आधुनिकता और राष्ट्रवाद को समानार्थी माना गया। राष्ट्रीय विकास के प्रतिमान के अन्तर्गत ही शिक्षा के उद्देश्य परिभाषित किए गए और वे स्कूली शिक्षा के दैनिक आचरण की परिपाटियों में प्रतिबिम्बित हुए। माध्यमिक शिक्षा आयोग (भारत सरकार, 1953), जिसने 1950 के दशक के प्रारम्भ में बच्चे की मनोवैज्ञानिक आवश्यकताओं पर और स्कूल के विषयों को बच्चे के एकदम आसपास के वातावरण से जोड़ने पर जोर दिया था, से यह एक स्पष्ट दिशा परिवर्तन था। कृष्णकुमार अपने कोठारी आयोग के विश्लेषण (2001:51) में लिखते हैं, '...एक ऐसे युवा राष्ट्रराज्य, जिसने चार वर्षों के अन्तराल में दो युद्ध लड़े थे और जो राजनैतिक अस्थिरता के दौर से गुजर रहा था, में बच्चे के स्थानीय परिस्थितियों के सन्दर्भ में ज्ञान का पुनर्निमाण करने की स्वतंत्रता के आदर्श के प्रति पहले जैसा धैर्य नहीं था।'[16]

राष्ट्र–निर्माण के वर्षों के दौरान गढ़े गए 'अनेकता में एकता' के ऐतिहासिक आख्यान ने देश की बहुआयामी विरासत को सराहा, और इस तरह यह जनमानस में बैठ गया। धार्मिक समुदायों के सांस्कृतिक संश्लेषण और सद्भावपूर्ण सहअस्तित्व के इतिहास का निर्माण करने का कार्य राज्य ने स्वयं अपने ऊपर ले लिया था। जहाँ 'धर्मनिरपेक्ष राष्ट्रवाद' की अक्सर कांग्रेस की भीतर विभिन्न राजनैतिक ताकतों ने परीक्षा ली, वहीं इसे हिन्दू दक्षिणपंथ की गम्भीर चुनौती, विशेषकर एनडीए शासन के दौरान इतिहास की पाठ्यपुस्तकों के पुनर्लेखन के चलते, झेलना पड़ी। स्कूलों में पढ़ाया जाने वाला इतिहास का पाठ्यक्रम उग्र विवाद का क्षेत्र बन गया। अक्टूबर, 2002 (एनसीएफएसई, 2000 के उपरान्त) में जारी की गई इतिहास की पाठ्यपुस्तकों ने 'हिन्दू राष्ट्रवाद' का आख्यान प्रस्तुत किया, जिसने भारत के 'हिन्दू' अतीत को महिमामण्डित किया, साथ ही बौद्ध और जैन धर्मों को हिन्दू धर्म के आवरण में समाहित करने और मध्यकालीन इस्लामी शासन को नृशंस बताने का प्रयत्न किया (मार्लेना, 2003)। इतिहास के पाठों पर हुए विवाद ने पाठ्यक्रम सामग्री के चुनाव और प्रस्तुति के मुद्दों तथा स्कूली पाठ्यक्रम की संरचना में विचारधारा और राज्य के अन्तर्सम्बन्धों की जाँच–पड़ताल करने की आवश्यकता को सीधे जनता की निगाह में ला दिया।[5]

शिक्षा के लक्ष्यों और राष्ट्रवाद के नाजुक रिश्ते के महीन भेद तब सामने आए जब संयुक्त प्रगतिशील गठबंधन (यूपीए) की सरकार ने 2005 में एनसीएफ की समीक्षा करवाई। फलस्वरूप हमने पहली बार देखा कि किसी राष्ट्रीय पाठ्यचर्या दस्तावेज (एनसीएफ 2005) ने भगवाकरण की प्रक्रिया को निरस्त करने की समीक्षा से आगे बढ़कर स्कूली पाठ्यचर्या को शिक्षक की जायज जिम्मेदारी की तरह ऐसे ढाँचे में स्थापित किया जो समाज और शिक्षा को गहराई से जोड़ता है।

मूल्य तथा पाठ्यचर्या

भारत में 'मूल्यों' पर होने वाला विमर्श पाठ्यचर्या दस्तावेजों में महत्वपूर्ण रहा है। स्वतंत्रता–पूर्व काल में नागरिक शास्त्र के शिक्षण को दी गई प्रमुखता को जारी रखते हुए, 50 के दशक के शुरुआती वर्षों में माध्यमिक शिक्षा आयोग के समय से नागरिक शास्त्र की भूमिका नागरिकों को अपने 'चरित्र की गुणवत्ता' को बेहतर बनाने और 'सही आदर्शों, आदतों और दृष्टिकोण' को आत्मसात करने के लिए प्रशिक्षित करने की रही (जैन, 2004 : 178)। परन्तु दस–वर्षीय स्कूली पाठ्यचर्या रूपरेखा (1975) ने एक अलग दृष्टिकोण अपनाया और 'चरित्र निर्माण तथा मानवीय मूल्यों' के प्रति आग्रहपूर्वक अपनी प्रतिबद्धता जताई।

सामाजिक विज्ञान को एक ऐसे विषय की तरह देखा गया जो 'बच्चों को मानवीय सम्बन्धों,सामाजिक मूल्यों और दृष्टिकोणों के बारे में अन्तर्दृष्टि विकसित करने में सहायता करेगा' (एनसीईआरटी, 1975 : 21)। खासकर नागरिक शास्त्र के दो उद्देश्य माने गए : 'एक सक्रिय और बुद्धिमान नागरिकता' विकसित करना, और साथ ही 'सामाजिक और राजनैतिक संस्थाओं के ढाँचों और कार्यपद्धति की बुद्धिमत्तापूर्ण समझ विकसित करना' (एनसीईआरटी, 1975 : 23)।

इन उद्देश्यों से, बाद के पाठ्यचर्या दस्तावेजों में विद्यार्थियों के मन में निर्दिष्ट मूल्यों को स्थापित करने के बारे में दिए गए स्पष्ट वक्तव्यों का तीखा विरोधाभास दिखाई देता है। राष्ट्रीय पाठ्यचर्या रूपरेखा, 2000 सामाजिक विज्ञान शिक्षा की भूमिका को स्पष्ट शब्दों में व्यक्त करती है : 'सामाजिक विज्ञान के शिक्षण के माध्यम से अनेक मूल्यों को मन में बैठाया जाना है'। 'भारतीयता' की जिस भावना के बारे में 1988 के दस्तावेज में चर्चा की गई थी, उसकी एनसीएफएसई, 2000 में हिन्दुत्व के एजेण्डे को प्रक्षेपित करने के लिए काफी संकीर्ण ढंग से व्याख्या की गई है और उसे विकृत किया गया है।

> *स्कूलों में सामाजिक विज्ञान शिक्षण की गम्भीर भूमिका का महत्व वैश्विक दुनिया के तात्कालिक सन्दर्भ में और भी बढ़ जाता है जहाँ निजी और राष्ट्रीय पहचानों का अत्यधिक राजनीतिकरण किया जाता है। यह दृष्टिकोण उस नीति–विमर्श के बीच अलग–थलग पड़ जाता है जिसमें एक मानकीकृत पाठ्यचर्या और मूल्यांकन की लादी गई व्यवस्था के द्वारा सामाजिक विज्ञानों के अस्तित्व को ही खतरा पैदा हो गया है।*

राष्ट्रवाद और मूल्यों की शिक्षा का विमर्श सामाजिक विज्ञान पाठ्यक्रम के निर्माण में निकट रूप से गुंथा हुआ है। सामाजिक विज्ञान शिक्षण के केन्द्रीय उद्देश्य की तरह, इसके अध्ययनक्षेत्रों की प्रकृति या समाज की समझ को न मानकर, उन मूल्यों को माना जाता है जो राष्ट्रीय पहचान की मजबूत भावना से युक्त एक निष्ठावान नागरिक समुदाय निर्मित करने के लिए आवश्यक हैं। हाल के शोधों ने स्कूली पाठ्यपुस्तकों में राष्ट्रवाद, पहचान और लिंग के बीच के अन्तर्सम्बधों की परतें खोलने का प्रयास किया है (निरन्तर, 2009)। पाठ्यचर्या के नवीनीकरण की यह कवायद संवैधानिक मूल्यों के विशद ढाँचे के अन्तर्गत 'वैज्ञानिक अभिक्रम की तरह सामाजिक जाँच–पड़ताल' को स्थापित करने में और एक 'न्यायपूर्ण और शान्तिपूर्ण समाज' विकसित करने में सामाजिक विज्ञान विषयों के केन्द्रीय महत्व पर नए सिरे से ध्यान केन्द्रित करती है (एनसीएफ, 2005)।

निष्कर्ष

इस लघु निबन्ध में कुछ ऐसी प्रमुख चिन्ताओं और बहसों की एक झलक प्रदान करने का प्रयास किया गया है जिनसे सामाजिक विज्ञान शिक्षक और पाठ्यचर्या का विकास करने वाले का वास्ता पड़ता है। यह इन बहसों में से किसी का भी समाधान करने का प्रयत्न नहीं करता, बल्कि विमर्श को और गहरा बनाने के निवेदन के साथ सिर्फ उन्हें चिन्हित करना चाहता है। स्कूलों में सामाजिक विज्ञान शिक्षण की गम्भीर भूमिका का महत्व वैश्विक दुनिया के वर्तमान सन्दर्भ में और भी बढ़ जाता है जहाँ निजी और राष्ट्रीय पहचानों का अत्यधिक राजनीतिकरण किया जाता है। यह दृष्टिकोण उस नीति–विमर्श के बीच अलग–थलग पड़ जाता है जिसमें एक मानकीकृत पाठ्यचर्या और मूल्यांकन की लादी गई व्यवस्था के द्वारा सामाजिक विज्ञानों के अस्तित्व को ही खतरा पैदा हो गया है। ऐसे मोड़ पर ही मिडिल, माध्यमिक और उच्चतर–माध्यमिक स्तरों के लिए लिखी गई एनसीईआरटी की पाठ्यपुस्तकों के कुछ बेहतरीन उदाहरण हमारे सामने आए हैं। यह कहना अनुचित नहीं होगा कि वह ढाँचा, जो खासतौर से माध्यमिक स्कूली पाठ्यपुस्तकों – जिनमें नागरिक शास्त्र के स्थान पर आने वाली 'सामाजिक और राजनैतिक जीवन' पर पाठ्यपुस्तकें शामिल हैं – की रचना में इस्तेमाल किया गया है, एकलव्य की पाठ्यचर्या की संरचना और पाठ्यपुस्तक लेखन के तीस वर्षों के अनुभव से अनेक विचार और प्रेरणा लेता है।

पारम्परिक सामाजिक विज्ञान शिक्षण, बच्चे के वास्तविक जीवन के अनुभवों का कोई सन्दर्भ दिए बगैर, समाजों और कालों के बारे में सीखने पर जोर देता है। एकलव्य और एनसीईआरटी की पाठ्यपुस्तकें इस तरह से अनोखी हैं कि वे सीखने वालों से अपने स्वयं के सामाजिक अनुभवों पर निरन्तर विचार करवाकर उनके सामाजिक संसार को अध्ययन का लक्ष्य और उसकी प्रक्रिया, दोनों बना देती हैं। ये पाठ्यपुस्तकें अनेक प्रकार से उस विभाजन को समाप्त करती हैं जो अक्सर बच्चे और पाठ्यक्रम के बीच खड़ा किया जाता है। वे विषयवस्तु को विकासात्मक दृष्टि से उपयुक्त तरीकों से व्यवस्थित करने, और पाठक को संवादात्मक प्रक्रिया में भागीदार बनाकर उसका अर्थ निर्मित करने के बहुआयामी गतिशील मुद्दों का एक साथ सामना करती हैं। 'सामाजिक विज्ञान के तथ्यों' को सामाजिक जाँच–पड़ताल की प्रक्रियाओं में बदलना नई पाठ्यपुस्तकों का एक प्रमुख मतबूत पहलू रहा है। यह किसी क्रियाकलाप के बारे में विभिन्न दृष्टिकोणों को प्रस्तुत करने, मानकीय स्थिति की वास्तविक अनुभवों से तुलना करने और ज्ञान का निर्माण करने की पद्धतियों के उपयोग का प्रदर्शन करने के द्वारा किया गया है। शिक्षक की स्वायत्ता का उल्लंघन किए बगैर ये पाठ्यपुस्तकें उपयोगी शैक्षणिक अवसरों और विचारों को उपलब्ध कराती हैं। वे सीखने वालों के लिए ऐसे मुद्दों और विचारों से सक्रिय रूप से परिचित होने की सम्भावनाएँ खोलती हैं, जिनसे हो सकता है उनके जीवन का अभी बहुत दूर का नाता हो, पर जो वृहद् सामाजिक यथार्थ के भीतर धीरे–धीरे अर्थपूर्ण होते जाते हैं।

टिप्पणियाँ

1. इसे कोठारी आयोग की रिपोर्ट के नाम से भी जाना जाता है।
2. गोयल एवं शर्मा (1987) में उल्लिखित।
3. प्लाउडन रिपोर्ट ने गौर किया कि 'बच्चों का सीखना विषयों की श्रेणियों में सही–सही नहीं बैठता'; डीईएसए 1967 : 203 पैनेलॉपी हार्नेट (2004) में उल्लिखित।
4. दस–वर्षीय स्कूल के लिए पाठ्यक्रम : एक रूपरेखा (द करीकुलम फॉर द टैन–ईअर स्कूल : ए फ्रेमवर्क – एनसीईआरटी, 1975) की सिफारिश थी कि–सामाजिक विज्ञानों को कक्षा 1 तथा 2 में पर्यावरण के अध्ययन के हिस्से की तरह, और अगली कक्षाओं में सामाजिक अध्ययन के स्वतंत्र विषय की तरह पढ़ाया जाए। जहाँ पर्यावरण अध्ययन में कक्षा 1 तथा 2 में प्राकृतिक तथा सामाजिक, दोनों पर्यावरण शामिल रहेंगे, प्राथमिक स्तर पर सामाजिक विज्ञान की बजाय 'सामाजिक अध्ययन' नाम उपयोग करना अधिक उपयुक्त होगा क्योंकि यह एक विस्तृत और मिलाजुला अध्ययनक्षेत्र निरूपित करता है। (पृष्ठ 20)।
5. साम्प्रदायिकीकरण के मुद्दे पर एनसीएसईए 2000 की समालोचना के लिए सहमत के प्रकाशन ये देखें : अगेन्स्ट कम्यूनलाईज़ेशन ऑफ एजुकेशन (2002), सैफरन एजेण्डा इन एजुकेशन : ऐन एक्सपोज़ (2001) तथा द असॉल्ट ऑन हिस्ट्री (2000); राजस्थान की पाठ्यपुस्तकों की समीक्षा के लिए देखें दिगन्तर (2007)।

References

1. Chalam, K. S. (2002). 'Rethinking Social Sciences'. In Economic and Political Weekly Commentary. 915 March, 2002: 921922
2. Digantar. (2007). Various articles in Shiksha Vimarsh: Shaishik Chintan Avam Samvad Ki Patrika. JanuaryFebruary. Jaipur: Digantar
3. Dunn, A. W. (1916). The Social Studies in Secondary Education. Report of the Committee on Social Studies. Commission on the Reorganization of Secondary Education. Washington. DC: National Education Association
4. Evans, R. W. (2004). The Social Science Wars: What Should We Teach the Children? New York: Teachers College Press
5. Hobsbawm, E. (1992). Nations and Nationalism Since 1780: Program, Myth, Reality. Cambridge: Cambridge University Press
6. Giroux, H. (1981). Ideology, Culture and the Process of Schooling. London: The Falmer Press
7. Goel, B. S. & Sharma, J. D. (1987). A Study of the Evolution of The Textbook. New Delhi: NCERT
8. Government of India. (1953). Secondary Education Commission Report. (1952-53). New Delhi: Ministry of Education
9. Government of India. (1966). Education and National Development. Report of the Education Commission. (196466). New Delhi: Ministry of Education
10. Hunt, F. J. (Ed.). (1971). Social Science and the School Curriculum: A Report on the Monash Project. Sydney, Australia: Angus and Robertson
11. Hunt, M. P. & Metcalf, L. E. (1955 & 1968). Teaching High School Social Studies: Problems in Refl ective Thinking and Social Understanding. New York: Harper and Row
12. Jacoby, R. (1975). Social Amnesia. New York: Beacon Press
13. Jain, M. (2004). 'Civics, Citizens and Human Rights Civics Discourse in India'. In Contemporary Education Dialogue. 1(2): 165198
14. Kumar, K. (2001). Prejudice and Pride: School Histories of the Freedom Struggle in India and Pakistan. New Delhi: Penguin Books India (p) Ltd
15. Lawton, D. (1981). 'Foundations for the Social Studies' , In Mehlinger, H. D. (Ed.). UNESCO Handbook for the Teaching of Social Studies. pp. 3658. London: Croom Helm
16. Leming, J. (2003). 'Ignorant Activists: Social Change, "Higher Order Thinking," and the Failure of Social Studies', in Leming, J., Ellington, L. and Porter, K. (Eds.). Where Did Social Studies Go Wrong? pp. 124142. Washington, DC: Thomas B. Fordham Foundation
17. Marlena, A. (2003). 'The Politics of Portrayal: A Study of the Changing Depictions of Religious Communities and Practices in Indian History Textbooks'. MA Dissertation: Oxford
18. Menon, N. (2010). History, Truth and Nation: Contemporary Debates on Education in India in Vinayak, A. & Bhargava, R. (Eds.). Understanding Contemporary India: Critical Perspectives. New Delhi: Orient Blackswan
19. National Council for Educational Research and Training (NCERT). (1975). The Curriculum for Ten Year School: A Framework. New Delhi: NCERT
20. National Council for Educational Research and Training (NCERT). (1988). National Curriculum for Elementary and Secondary Education: A Framework (NCESE). New Delhi: NCERT
21. National Council for Educational Research and Training (NCERT). (2000). National Curriculum Framework for School Education. New Delhi: NCERT

22. National Council for Educational Research and Training (NCERT). (2005). National Curriculum Framework, 2005. New Delhi
23. National Council for Educational Research and Training (NCERT). (2006). Position Paper: Teaching of Social Sciences. New Delhi: NCERT
24. Nirantar. (2009) Textbook Regimes: A Feminist Critique of Nation and Identity. New Delhi: Nirantar
25. United Nations Scientifi c, Educational and Cultural Organization (UNESCO). (1954). Round Table Conference on the Teaching of the Social Sciences in South Asia: Papers and Proceedings of the Meeting' February 1519. New Delhi: UNESCO
26. Vakil, C.N. (1954). The Unity of the Social Sciences in Round Table Conference on the Teaching of the Social Sciences in South Asia: Papers and Proceedings of the Meeting. 1519 February 1954, New Delhi: UNESCO, pp 7281
27. Wesley, E. B. (1937). Teaching the Social Studies. New York: Heath and Company
28. Wishon, P. M. et.al. (1998). Curriculum for the Primary Years: An Integrative Approach. UK: Prentice Hall
29. Wronski, S. P. (1981). 'Social Studies Around the World'. In Mehlinger, H. D. (Ed.). (1981) UNESCO Handbook for the Learning of Social Studies. London,UNESCO, Paris: Croom Helm

---

पूनम बत्रा *दिल्ली के मौलाना आजाद सेन्टर फॉर एलमेन्टरी एण्ड सोशल एजुकेशन (एमएसीईएसई), सेन्ट्रल इंस्टीट्यूट ऑफ ऐजुकेशन (सीआईई) में एलमेन्टरी एजुकेशन की प्राध्यापक हैं। उनकी विशेष रुचि के कार्यक्षेत्र हैं : शिक्षा में सार्वजनिक नीति, प्राथमिक शिक्षा पाठ्यक्रम तथा शिक्षण, शिक्षक–शिक्षा, शिक्षा का विकासात्मक व सामाजिक मनोविज्ञान, तथा लिंग–आधारित अध्ययन। उन्होंने सेज द्वारा 2010 में प्रकाशित एक ग्रन्थ सोशल साइंस लर्निंग इन स्कूल्स : पर्सपैक्टिव एण्ड चैलेंजेज़ का सम्पादन किया है। वर्तमान में वे जवाहरलाल नेहरू फैलो के रूप में शिक्षक–शिक्षा एवं सामाजिक परिवर्तन विषय पर शोध कर रही हैं। उनसे इस batrapoonam@yahoo.com ईमेल पते पर सम्पर्क किया जा सकता है।*

03 भारत में सामाजिक विज्ञान का 'हीन' दर्जा – कारण व सुधारात्मक उपाय

ऋषिकेश बी.एस.

अगर यह कहा जाए कि नई–नई जगहें देखने–घूमने जाना, राजनीति पर बहस, प्रसिद्ध व साधारण लोगों से जुड़ी हुई कहानियाँ, आम भारतीयों के लिए (और शायद दुनिया के बाकी लोगों के लिए भी) फुरसत में चर्चा के लिए सबसे प्रिय विषय हैं, तो क्या इस पर कोई विवाद होगा? मुझे नहीं लगता। किसी भी पर्यटन यात्रा आयोजक से पूछें तो वह कहेगा उसका बिजनेस फल–फूल रहा है, किसी भी चर्चा मंच पर गौर करें, अनौपचारिक सभा हो या औपचारिक, आप पाएँगे कि राजनीति सबसे ज्यादा चर्चित विषय है। हमारे अखबारों के दैनिक परिशिष्टों व आम पत्रिकाओं की एक झलक देखने भर से लोगों से सम्बन्धित कहानियों की बिकाऊ लोकप्रियता की पुष्टि हो जाती है।

सामाजिक विज्ञान के विषय की ऊपरी पर्तें हटाकर कर देखें तो पाएँगे कि उसकी बुनियादी प्रकृति का सरोकार लोगों, जगहों और संस्थाओं के किस्से कहानियों से ही है। उन्हें ही हम अपने चारों तरफ कहानियों में बदलता देखते हैं, चाहे वह टी.वी. पर हो या फिल्मी पर्दे पर या फिर अखबारों में। परन्तु, यदि सामान्य लोगों के बीच यह सर्वे किया जाए कि अपने स्कूली दिनों में उन्हें सामाजिक विज्ञान में कितनी दिलचस्पी थी, तो यह बात सामने आएगी कि उन्हें सामाजिक विज्ञान के विषय पढ़ते समय ऊब होती थी इसलिए उनका दिमाग इन विषयों में बिलकुल भी नहीं चलता था, या फिर उनकी अरुचि इसलिए थी क्योंकि उन्हें इनमें कुछ भी ऐसा दिखाई नहीं देता था जो जीवन की वास्तविकताओं से दो–चार होने में आगे उनकी मदद करता। और यह तब जबकि ये सभी विषय जीवन के बारे में ही हैं।

> *स्कूलों में, सामाजिक विज्ञान के विषयों की समझ को बेहतर बनाने के लिये कई तरीके हैं। लेकिन, भारत के अधिकांश स्कूलों में बच्चों को तोतारटन्त बनाने पर ही जोर दिया जाता है।*

स्कूल में सामाजिक विज्ञान के अन्तर्गत जो विषय होते हैं वे अतीत से हमारा सम्बन्ध जोड़ते हैं, ताकि हम यह समझें और उसकी कद्र करें कि हम जहाँ अभी हैं वहाँ तक कैसे आए हैं। ये विषय, हम पर शासन करने वाली संस्थाओं के अध्ययन के माध्यम से हमें वर्तमान से भी जोड़ते हैं, तथा हम जिस वृहद् पारिस्थितिक तंत्र का हिस्सा हैं उसकी समझ हमारे भीतर विकसित करके अतीत और वर्तमान को

परिचित सन्दर्भों में हमारे सामने लाते हैं। सामाजिक विज्ञान एक बेहतर दुनिया बनाने का सपना देखने में हमारी मदद करता है। मानवीय विकास से जुड़े हुए व्यावहारिक प्रश्न जैसे कि 'नगरों को कैसे बेहतर बनाएँ, लोगों के जीवनस्तर में सुधार कैसे किया जाए, अपराध–दर को कैसे कम किया जाए, भेदभाव को कैसे दूर किया जाए, बेहतर शासन किस तरह प्रदान किया जा सकता है, उत्पादकता और कैसे सुधर सकती है', आदि इन्हीं सब बातों से सामाजिक विज्ञान बनता है।

यदि यह सच है, तो जब इन मुद्दों को इकट्ठा करके विषयों के रूप में सामने रखा जाता है तो वे अरुचिकर और बेकार कैसे लगने लगते हैं? क्या इसका सम्बन्ध इन विषयों का अध्ययन करने के लिए तैयार की जाने वाली सामग्री से है, या फिर उस ढंग से, जिसका इस्तेमाल सामाजिक विज्ञान के शिक्षक कक्षा में बच्चों को पढ़ाते वक्त करते हैं? उत्तर ऊपर की दो बातों में छिपा है। लेकिन, दूसरा कारण ज्यादा महत्वपूर्ण है क्योंकि कोई विषय नीरस तभी बनता है जब उसे नीरस बनाने में शिक्षण का योगदान रहा हो! बहुत कुशलता से तैयार की गई किताब का इस्तेमाल भी कोई शिक्षक इस ढंग से कर सकता है कि जोशीले छात्र–छात्राओं की कक्षा उबासियाँ लेने पर मजबूर हो जाए। अच्छी सामग्री हो तो विद्यार्थी बिना शिक्षक के भी उससे लाभ ले सकता है। लेकिन कोई शिक्षक पक्के तौर पर अच्छी भली स्थिति खराब कर सकता है और हम स्कूलों में यही देख रहे हैं।

स्कूलों में, सामाजिक विज्ञान के विषयों की समझ को बेहतर बनाने के कई तरीके हैं। लेकिन, भारत के अधिकांश स्कूलों में बच्चों को तोतारटन्त बनाने पर ही जोर दिया जाता है। शिक्षक व्याख्यान देता रहता है और विद्यार्थी मशीनी ढंग से अपनी कॉपियों में नोटस बनाते रहते हैं और फिर उन्हें रटकर परीक्षाओं में वैसे का वैसा उगल आते हैं और पास हो जाते हैं। उनका उत्तर, शिक्षक द्वारा कही गई बात के जितना ज्यादा करीब होता है, उतने ही ऊँचे उनके प्राप्तांक होते हैं। उन्होंने 'सफलता के झण्डे गाड़ दिए' ऐसा ही कहा जाता रहेगा जब तक कि ये झण्डे शिक्षक द्वारा बताए गए विवरणों से हूबहू मिलते रहें! हालाँकि परिवर्तन की कमान शिक्षकों के हाथों में प्रतीत होती है, लेकिन असली दोष खुद हमारे समाज में है, जिसने सामाजिक विज्ञान को दोयम दर्जा दिया हुआ है।

यदि कोई विद्यार्थी सामाजिक विज्ञान से जुड़ा कोई विषय, खासतौर

पर मानविकी से जुड़ा विषय (इतिहास, साहित्य, और दर्शनशास्त्र जैसे विषय जो मानव संस्कृति और विचारों के अध्ययन पर आधारित हैं) चुनता है, तो वह प्राकृतिक विज्ञानों को चुनने वाले विद्यार्थी की तुलना में कम बुद्धिमान/होशियार माना जाने लगता है। कमतर होने का यह ठप्पा सबसे पहले तो परिवार के स्तर पर ही लग जाता है और इसका महत्वपूर्ण कारण है आधुनिक भारतीय समाज द्वारा इंजीनियरों तथा डॉक्टरों को दिया गया ऊँचा दर्जा। यहाँ एक बात और, जिन विद्यार्थियों ने प्राकृतिक विज्ञान के किसी विषय को चुना है, पर जो इंजीनियरी या चिकित्सा जगत में कैरियर बनाने के इच्छुक नहीं हैं, उन्हें भी सम्भवतः उसी चश्मे से देखा जाएगा जिससे सामाजिक विज्ञान पढ़ने वालों को देखा जाता है। जो यह दर्शाता है कि अध्ययन की इन दोनों शाखाओं के प्रति समाज का दृष्टिकोण कितना एकतरफा है। अतः समाज की यह पूर्वधारणा है कि वे ही बच्चे सामाजिक विज्ञानों का चुनाव करते हैं जो बाद की, ऊँचे दर्जे की पढ़ाई के लिए प्राकृतिक विज्ञानों को पढ़ने में असमर्थ हैं। एनसीएफ 2005 भी समाज में व्याप्त इस दृष्टिकोण की पुष्टि करता है। उसमें कहा गया है कि 'स्कूली शिक्षा के शुरुआती दौर से ही विद्यार्थियों को अक्सर यह सुझाया जाता है कि प्राकृतिक विज्ञान, सामाजिक विज्ञानों की तुलना में श्रेष्ठतर हैं, और वे 'बुद्धिमान' विद्यार्थियों का अधिकार क्षेत्र हैं।' एनसीएफ आगे कहता है कि इसके परिणामस्वरूप, सामाजिक विज्ञानों की कक्षा में पढ़ाई की प्रक्रिया पर हीन भावना से भरा माहौल हावी रहता है जिसमें शिक्षक व विद्यार्थी, दोनों की ही विषयवस्तु को समझने में कोई दिलचस्पी नहीं रह जाती।

भारत में, सामाजिक विज्ञान को लड़कों की अपेक्षा लड़कियों के पढ़ने की चीज ज्यादा माना जाता है। यह एक तरह से 'पितृसतात्मक और लैंगिक भेदभाव रखने वाले' समाज का इस विषय को महत्वहीन और उपेक्षापूर्ण दर्जा देने का तरीका है। यह न केवल इस बात का प्रमाण है कि समाज, सामाजिक विज्ञान को किस नजर से देखता है, बल्कि इसका प्रमाण भी है समाज स्त्रियों को किस नजर से देखता है। महत्व, माँग और इसलिए शुल्क, इन तीन बातों के सन्दर्भ में सामाजिक विज्ञान के विषयों को गैर मूल्यवान माना जाता है, और पुरुष–प्रधान समाजों में यह माना जाता है कि लड़कियों को किसी भी मूल्यवान सार्थक विषय का अध्ययन करने की जरूरत नहीं है – इस तरह की मान्यता के फलस्वरूप ही समाज 'उत्पीड़ित' को 'अयोग्य' के रूप में देखने लगता है।

मौजूदा स्थिति को देखते हुए, प्रश्न उठता है कि सुधार की प्रक्रिया क्या हो। सुधार जरूरी है क्योंकि मनुष्य का आगे का विकास तभी सम्भव है जब हम अपने समाज को समझें। सभी स्तरों पर समाज का अध्ययन ही सामाजिक विज्ञान है। यह एक बहु–अध्ययनक्षेत्रीय विषय है जो सम्भवतः बाकी सभी विषयों से और मानवीय अनुभवों से कुछ न कुछ लेता है। इसका क्षेत्र और महत्व लगातार बढ़ता जा रहा है, साथ ही मनुष्य की प्रगति को और आगे बढ़ाने में भी यह अनमोल बनता जा रहा है। सुधार की प्रक्रिया के सम्बन्ध में एक तर्क यह है कि जब तक स्कूलों में सामाजिक विज्ञान को पढ़ाने का ढंग नहीं बदलता (जिससे विद्यार्थी को जीवन की व्यावहारिकताओं में सामाजिक विज्ञान की उपयोगिता समझने का मौका मिले) तब तक हम इस विषय के प्रति समाज का दृष्टिकोण कतई नहीं बदल पाएँगे। दृष्टिकोण बदलने का भार खुद सामाजिक विज्ञान पर ही है – क्या ऐसा होने की कोई उम्मीद है? थोड़ा–सा इतिहास हमें इसकी बेहतर जानकारी दे सकता है।

भारत में, सामाजिक विज्ञान को लड़कों की अपेक्षा लड़कियों के पढ़ने की चीज ज्यादा माना जाता है, और यह एक 'पितृसत्तात्मक और लैंगिक भेदभाव रखने वाले' समाज का इस विषय को महत्वहीन और उपेक्षापूर्ण दर्जा देने का तरीका है।

सामाजिक विज्ञान ने उन्नीसवीं सदी में आकार लेना शुरू किया और बीसवीं सदी में आकर अर्थशास्त्र, समाजशास्त्र, राजनीति विज्ञान, इतिहास, भूगोल, मनोविज्ञान और मानवशास्त्र ने अपनी जगह बनाई। इस तरह इसका इतिहास एक सदी से भी कम पुराना है। इसलिए, इसका दूसरे विषयों की तुलना में काफी नया होना, वृहद् समाज में इसकी मौजूदा छवि का एक प्रमुख कारण हो सकता है। इस बात पर गौर करना दिलचस्प होगा कि सामाजिक (अध्ययन) विज्ञान आधुनिक भारत के आधिकारिक पाठ्यक्रम का हिस्सा गाँधीजी के बुनियादी शिक्षा कार्यक्रम के साथ ही बना। बाद में माध्यमिक शिक्षा आयोग ने इस विषय को अखिल भारतीय स्तर पर आधिकारिक मान्यता प्रदान की। 1953 की मुदलियार आयोग रिपोर्ट ने वैश्विक नागरिकता की तात्कालिक रूप से प्रासंगिक अवधारणा की ओर आवश्यक ध्यान देने की बात कही थी, लेकिन 50 साल बाद भी, सामाजिक (अध्ययन) विज्ञान का अध्ययन आज भी तारीखों, तथ्यों तथा प्रसिद्ध लोगों, स्थानों और संस्थानों के नामों तक ही सीमित है। अपनी स्थापना के तुरन्त बाद ही, एनसीईआरटी, सामाजिक (अध्ययन) विज्ञान पढ़ाने के उद्देश्यों के साथ सामने आई। लेकिन उसने भी आम और अब उबाऊ बन चुकी बातों, जैसे कि 'बेहतर नागरिक बनाने', 'दिमागों को सोचने के लिए प्रशिक्षण देना' और 'खुद को खुलकर अभिव्यक्त करने की योग्यताएँ विकसित करना', आदि उद्देश्यों का प्रमुखता के साथ उल्लेख

किया। हमारे चारों तरफ ऐसे उदाहरण हैं जो दर्शाते हैं कि वृहद् समाज को तो छोड़ दें, हमारे स्कूल भी इन उद्देश्यों को हासिल कर पाने के करीब नहीं पहुँचे हैं। 1964 में, कोठारी आयोग ने कहा था कि पर्यावरण का ज्ञान और मानवीय सम्बन्धों की समझ हासिल करने के अलावा, सामाजिक (अध्ययन) विज्ञान पढ़ाने का एक और उद्देश्य है। वह है दुनिया के घटनाक्रमों में भागीदारी के लिए जरूरी कुछ खास मूल्यों और प्रवृत्तियों को सीखने में विद्यार्थियों की मदद करना। 2005 में, सामाजिक विज्ञान पर अपने आधार पत्र (पोजीशन पेपर) में, एनसीएफ ने कहा कि यह जरूरी है कि 'सामाजिक विज्ञान के महत्व को, केवल तेजी से फैल रहे सेवा क्षेत्र में नौकरी पाने के लिए नहीं, बल्कि इसकी बढ़ती प्रासंगिकता को चिन्हांकित करके, एक विश्लेषणात्मक व सृजनशील दिमाग की बुनियाद रखने में इसकी अपरिहार्यता की तरफ इशारा करते हुए पुनर्स्थापित किया जाए।'

आधुनिक भारत में सामाजिक विज्ञान को शिक्षा के सन्दर्भ में मुख्यधारा में लाए जाने के बाद सभी समितियों ने 'उचित' बातें कही हैं, फिर भी इस विषय को वृहद् समाज की नजरों में अभी तक वह दर्जा नहीं मिल सका है जो उसे मिलना चाहिए। समाज के बड़े हिस्से के लिए सामाजिक विज्ञान एक अनुपयोगी विषय है। इसलिए, लोगों को इस बात का एहसास कराने की जरूरत है कि सामाजिक विज्ञान के विषय वैश्वीकृत दुनिया से तालमेल बैठाने, और 'राजनैतिक व आर्थिक वास्तविकताओं का सामना करने' के लिए आवश्यक कई योग्यताओं को हासिल करने हेतु अत्यावश्यक हैं।

अतन्तः सुधार की प्रक्रिया सामाजिक विज्ञान में ही निहित है और जिम्मेदारी भी उसी पर है। सुधार प्राथमिक स्कूली स्तर पर होना आवश्यक है। प्रचलित दृष्टिकोण है कि 'सामाजिक विज्ञान तो सिर्फ परीक्षाओं हेतु रटने के लिए सामग्री उपलब्ध कराता है, और स्कूलों में उपयोग की जाने वाली इसकी अध्ययन सामग्री की विषयवस्तु का जीवन की वास्तविकताओं से दूर का नाता होता है।' इसे बदलने की जरूरत है। आवश्यक बदलाव के लिए, सामाजिक विज्ञान पाठ्यचर्या, उपलब्ध सामग्री जैसे कि प्रस्तावित पाठ्यपुस्तकें और सामाजिक विज्ञान के विषयों के शिक्षक, ये तीन अति महत्वपूर्ण कारक हैं। एनसीएफ 2005 ने पाठ्यचर्या के लिए उपयुक्त रूपरेखा की पहचान करने की तरफ एक बड़ा कदम उठाया है। सीबीएसई की नई सामग्री (इसमें पाठ्यपुस्तकें शामिल हैं) निश्चित ही एक बड़ा सुधार है और इनका प्रभावशाली ढंग से उपयोग करके काफी कुछ हासिल किया जा सकता है। तीसरे महत्वपूर्ण कारक यानी कि शिक्षक पर भी ध्यान देना होगा।

इस तीसरे कारक को वांछनीय ढंग से सक्रिय करना, सामाजिक विज्ञान के दर्जे को ऊपर उठाने के लिए जरूरी सुधारों की कुंजी है। बच्चे खुद से सामाजिक विज्ञान के विषयों की पड़ताल कर पाएँ, इसे सुलभ बनाने में शिक्षकों द्वारा मदद किए जाने की स्थिति तैयार करना, और उनका ध्यान सतही 'तथ्यों' की बजाय अवधारणात्मक समझ पर केन्द्रित करवाना, ये चुनौतियाँ भी मौजूदा परीक्षा प्रणाली के साथ गुंथी हुई हैं। परीक्षा प्रणाली उन शिक्षकों के लिए एक बहाना नहीं होना चाहिए जो ऐसा प्रतिरूप अपनाने से मना करते हैं जिसमें वे विद्यार्थियों के साथ मिलकर ज्ञान उत्पन्न करेंगे, क्योंकि जिन्होंने ऐसी सहयोगात्मक पद्धति अपनाई है, उन्होंने पाया है कि एक बार अवधारणा की समझ हासिल हो जाने के बाद परीक्षा के ढाँचे से कोई फर्क नहीं पड़ता।

ऐसी पारस्परिक रूप से सक्रिय भागीदारी वाली व्यवस्था में ज्ञान व योग्यताएँ हासिल करने में विद्यार्थियों की मदद करके सामाजिक विज्ञान में नए प्राण फूँकने के लिए यह समझ बहुत जरूरी है। गणित तथा भौतिकी जैसे विषयों में उनकी कुछ अन्तर्निहित विशिष्टताओं के कारण पढ़ाने के उपदेशात्मक ढंग से बचे रहने की सम्भावना रहती है। लेकिन सामाजिक विज्ञान में छात्र की दिलचस्पी पढ़ाने के ऐसे ढंग द्वारा पक्के तौर पर नष्ट कर दी जाती है जिसमें भागीदारी–आधारित पद्धति के माध्यम से आलोचनात्मक दृष्टिकोणों को बढ़ावा नहीं दिया जाता। सामाजिक विज्ञान का एक महत्वपूर्ण पक्ष है थोड़े अलग–अलग कोणों वाले उत्तरों, या कभी–कभी पूर्णतः विपरीत उत्तरों की सम्भावना। इसलिए, प्राकृतिक विज्ञानों के शिक्षक से ज्यादा सामाजिक विज्ञान के शिक्षक के लिए पीठासीन होकर प्रवचन देने की पारम्परिक आदत से हटना जरूरी है। शिक्षण के ढंग में ऐसी तब्दीली करने से, जहाँ कि महज जानकारी प्रदान कर देने के बजाय बहसों और चर्चाओं को प्रमुखता दी जाए, विद्यार्थियों और शिक्षक, दोनों को वास्तविक जीवन की परिस्थितियों को जीवन्त ढंग से समझने में मदद मिलेगी। जैसा कि एनसीएफ 2005 में कहा गया है, 'यह जरूरी है कि सीखने की प्रक्रिया बच्चों व शिक्षकों, दोनों में सृजनात्मकता तथा एक दूसरे से सवाल–जवाब करने की भावना को बढ़ावा दे।' 'जाँच–पड़ताल' का विचार सामाजिक विज्ञान के विषय में जान फूँकने के लिए बहुत बुनियादी महत्व का है और जब ऐसा होगा तभी इस विषय की उपयोगिता उभर कर आएगी। अतः शिक्षण के लिए एक खुला रवैया रखना बहुत जरूरी है। शिक्षकों को बच्चों के बीच मतभेदों को उभरने की गुंजाइश देना चाहिए ताकि वे अलग–अलग दृष्टिकोणों को देख पाएँ और उन भिन्न–भिन्न मतों की सराहना कर पाएँ जो हमेशा विद्यार्थियों के अलग–अलग स्थानीय सन्दर्भों पर आधारित होते हैं।

अतः यह सामाजिक विज्ञान के शिक्षक के हाथों में है कि इस विषय के दर्जे को उस ऊँचाई तक उठाया जाए जहाँ वह विद्यार्थियों की सीखने की यात्रा में उनके विकास में योगदान देता हुआ दिखाई दे।

यह जरूरी है कि सामाजिक विज्ञान का अध्यापक शिक्षण के विभिन्न दार्शनिक दृष्टिकोणों का अध्ययन और विश्लेषण करे, इसके बाद उनसे आवश्यक संश्लेषित दृष्टि विकसित करे। अपेक्षित कई चीजों में से एक यह है कि सामाजिक विज्ञान के शिक्षक को एक दार्शनिक की भूमिका निभाना चाहिए। उसे अलग–अलग दार्शनिक विचारधाराओं की जानकारी होनी चाहिए। ऐसा हो इसके लिए, शिक्षकों के प्रशिक्षण में बुनियादी बदलाव लाने की जरूरत है। यह उनके लिए खासतौर पर तैयार किए जाने वाले शिक्षण कोर्सों के माध्यम से किया जा सकता है। उदाहरण के लिए, शैक्षणिक दर्शन को अपने उद्देश्यों में उपयोगवादी होना चाहिए और ऐसा होने के लिए यह महत्वपूर्ण हो जाता है कि उस दर्शन के सिद्धान्तों को अमल में लाने पर ध्यान केन्द्रित किया जाए।

> *इसलिए, प्राकृतिक विज्ञानों के शिक्षक से ज्यादा सामाजिक विज्ञान के शिक्षक के लिए पीठासीन होकर प्रवचन देने की पारम्परिक आदत से हटना जरूरी है; शिक्षण के ढंग में ऐसी तब्दीली करने से, जहाँ कि महज जानकारी प्रदान कर देने के बजाय बहसों और चर्चाओं को प्रमुखता दी जाए, विद्यार्थियों और शिक्षक, दोनों को वास्तविक जीवन की परिस्थितियों को जीवन्त ढंग से समझने में मदद मिलेगी।*

सामाजिक विज्ञान शिक्षक के लिए यह जरूरी है कि पढ़ाने के लिए वह कई सारी पद्धतियाँ एक साथ अपनाए। जैसे कि प्रोजेक्ट विधि जिसमें सीखने के लिए गतिविधि–केन्द्रित पद्धति अपनाई जाती है, सवाल हल करने वाली पद्धति जिसमें हल ढूँढ़ने के लिए विभिन्न शैक्षणिक शाखाओं की विषयवस्तु का इस्तेमाल किया जाता है, इत्यादि। इससे विद्यार्थियों में ऐसी योग्यताओं का विकास होगा जिनका दैनिक वास्तविकताओं के साथ सामंजस्य हो। ऐलेन जैनिक 'फ्यूचर फॉर द ह्यूमैनिटीज़', शीर्षक वाले एक शोधपत्र में एक उदाहरण प्रस्तुत करते हैं कि एक प्रतिभावान चालीस वर्षीय वास्तुविद या इंजीनियर के लिए, किसी प्रबन्धन वाले ओहदे पर दी गई पदोन्नति बहुत तकलीफ देने वाली बात हो सकती है, यदि उसके पास प्रबन्धक होने (जो मुख्यतः संघर्षों से निपटने का ही काम है) की कोई तैयारी नहीं हो। संघर्ष का समाधान करना एक ऐसी योग्यता है जिसे व्यक्ति सामाजिक विज्ञान के माध्यम से आत्मसात करता है। लेखक महोदय बिलकुल सही तर्क देते हैं कि इस मामले में ज्यादा तकनीकी ज्ञान निरर्थक होगा क्योंकि उस वास्तुविद/इंजीनियर की तकनीकी कुशाग्रता के ही कारण उसकी यह 'दुर्भाग्यपूर्ण' पदोन्नति हुई थी और केवल सामाजिक विज्ञान से प्राप्त कुशलताएँ ही उसे सकारात्मक सहयोग दे पाएँगी। वे यह कहते हुए सामाजिक विज्ञान के विषयों को पढ़ने की बात का समर्थन करते हैं कि मानविकी के विषय (जो कि सामाजिक विज्ञान का केवल एक हिस्सा हैं) उस सन्दर्भ को समझने में बहुत महत्वपूर्ण होते हैं जिसके अन्तर्गत ज्ञान का समाज में प्रयोग होता है, और इस प्रकार जिन्दगी भर सीखते रहने के किसी भी गम्भीर रवैये के लिए भी मददगार होंगे। वे जीवन भर सीखने का अर्थ, अपने आप में निष्ठापूर्वक लगातार संशोधन और समायोजन करते रहने को मानते हैं जो तकनीकी ज्ञान भर से सुगम नहीं बन सकता। यह शोधपत्र आगे बताता है कि 2008 के आर्थिक संकट ने किस तरह हमें यह दिखाया कि हमें 'अपने और विश्व के बारे में हमारे द्वारा बना ली गई निर्विवादित मान्यताओं में सुधार करते हुए जबर्दस्त बदलाव करने की जरूरत है। ऐसी दुष्कर परिस्थितियों में सफल परिवर्तन कर पाने का एक हिस्सा यह समझना होगा कि किस तरह हमारे मन, हमारी जिन्दगियाँ और हमारे उद्योग हमेशा ही ऐसी परिस्थितियों में उलझे रहते हैं जो हमारे द्वारा बनाई गई नहीं होतीं, और जो कि अचानक नाटकीय ढंग से अप्रत्याशित तरीकों से बदल सकती हैं।' और इस तरह वे तर्क देते हैं कि मानविकी के विषय मानवीय जीवन और गतिविधि के बारे में ऐसे दृष्टिकोण हासिल करने के लिए बहुत जरूरी हैं जो महत्वपूर्ण स्थितियों में काम आते हैं तथा समाज (खासतौर पर राजनेता व नीतिनिर्धारक) इनकी बेफिक्री से उपेक्षा नहीं कर सकता, जैसा कि हमने हाल के समय में, खासतौर पर भारतीय सन्दर्भ में देखा है।

सामाजिक विज्ञान के लिए खुद को ऐसे अध्ययन क्षेत्र के रूप में स्थापित करना भी बहुत जरूरी है जो सफल कैरियरों के निर्माण में योगदान करता है। हालाँकि देश के कुछ शहरी केन्द्रों में दृष्टिकोण बदल रहा है, पर अभी भी प्रचलित दृष्टिकोण यही है कि सामाजिक विज्ञान के विद्यार्थियों के लिए नौकरियों के बहुत अधिक वांछनीय विकल्प उपलब्ध नहीं होते। इसलिए, वृहद् समाज के सामने आज के समय में सामाजिक विज्ञान की प्रासंगिकता को स्थापित करना बेहद जरूरी है।

आखिर में, हम विश्वासपूर्वक कह सकते हैं कि यह स्पष्ट होता जा रहा है कि सामाजिक विज्ञान की प्रासंगिकता उत्तरोत्तर बढ़ रही है। वह ज्ञान–आधारित अर्थनीति व समाज की रचना से तथा हाल ही में उभरी साक्ष्य–आधारित राजनीति के साथ आन्तरिक रूप से जुड़ा है। सरकारों को यह अहसास हो रहा है कि किस तरह सामाजिक विज्ञान समाज के प्रबन्धन में मदद कर सकता है। उनके सामने आ रही कुछ खास किस्म की समस्याओं से निपटने के लिए वे सामाजिक विज्ञान पर निर्भर होती जा रही हैं। उदाहरण के लिए, आधुनिक सरकारें शोध परियोजनाएँ चलाती हैं और इन अध्ययनों

से प्राप्त जानकारियाँ सामाजिक भेदभाव, बेरोजगारी, शहरी हिंसा, इत्यादि विभिन्न मुद्दों से निपटने के लिए बनाए जाने वाले सरकारी कार्यक्रमों के निर्धारण को प्रभावित करती हैं।

> *एक प्रोजेक्ट–आधारित पद्धति जो सीखने के लिए गतिविधियों पर केन्द्रित दृष्टिकोण पर जोर देती है, शिक्षा के दर्शन की तरह 'मानववादी विचारधारा' जिसकी वकालत कार्ल रॉजर्स (1902–1985) ने की थी और जिसमें विद्यार्थी ही उन प्रश्नों की पहचान करते हैं जिनका उत्तर दिया जाना है, ताकि सीखने में जो वांछनीय है वह उनके भीतर से ही निकलकर आता है, और समस्याओं को सुलझाने की ऐसी विधि अपनाना जिसमें विभिन्न अध्ययनक्षेत्रों से सामग्री ली जाती है, इन सभी का समाधान खोजने के लिए इस्तेमाल किया जाता है।*

'इनटू द फ्यूचर विथ सोशल साइंसेज़' शीर्षक के एक दशक पुराने शोधपत्र में डायरेक्ट्रेट फॉर इकोनॉमिक को–ऑपेरेशन एण्ड डेवेलपमैंट के ज्यां–ऐरिक ऑबर्ट ने अनुमान लगाया था कि 'सम्भवतः सूचना युग में और ज्ञान–आधारित विश्व की अभौतिक अर्थनीति में समाज को खुद को और बेहतर ढंग से जानने की गहरी जरूरत महसूस होगी, भले ही वह सिर्फ खुद को बचाए रखने के लिए हो। तब सामाजिक विज्ञानों की माँग बहुत बढ़ जाएगी।' आज भारतीय सन्दर्भ में भी हम यह साफ तौर पर कह सकते हैं, कि इस समय प्रवृत्ति सामाजिक विज्ञान का दर्जा उस जगह से कहीं ज्यादा ऊँचाई पर ले जाने की ओर है, जहाँ वह अभी तक रहा है। इन बदलावों को शहरी केन्द्रों में तो अब देखा भी जा सकता है और सामाजिक विज्ञान की प्रासंगिकता को लेकर प्रचलित दृष्टिकोण भी बदल रहे हैं। इससे साफ तौर पर आकांक्षी विद्यार्थियों के बीच इस विषय की माँग बढ़ी है। लेकिन, फिलहाल भारत में बहुत कम जगहें ऐसी हैं जहाँ सामाजिक विज्ञान को उस तरह पढ़ाया जाता है जिस तरह उसकी अपेक्षा होती है। पर आशा यही है कि यह तस्वीर भी जल्दी ही बदलेगी। चेतावनी यही है कि हमें जरूरी सुधारों की ओर से नजर नहीं फेरना चाहिए।

References

1. Philosophy Perspectives in Teaching social studies. Dr. Marlow Ediger, Professor of Education, Truman State University Campus. Journal of Instructional Psychology.
2. Ediger, M. & Rao, D.B. (2000) Teaching social studies Successfully. New Delhi, India: Discovery Publishing House.
3. Teaching of social studies in India By P. K. Khasnavis.
4. Position paper, National Focus Group on Teaching of Social sciences, National Curriculum Framework 2005.

ऋषिकेश *फिलहाल अज़ीम प्रेमजी फाउण्डेशन की रिसर्च एण्ड डॉक्यूमैंटेशन टीम का हिस्सा हैं। सामाजिक विज्ञान के प्रति उनकी जोशीली दिलचस्पी के चलते उन्होंने जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय से इतिहास में एम.ए. किया। उन्होंने शैक्षणिक शोधकर्ता बनने से पहले स्कूलों में इतिहास की कार्यशालाएँ संचालित कीं और वे इस विषय में अपनी दिलचस्पी को फाउण्डेशन की विभिन्न अकादमिक व शिक्षण–सम्बन्धी गतिविधियों के माध्यम से बनाए रखते हैं। उनसे इस ईमेल rishikesh@azimpremjifoundation.org पते पर सम्पर्क किया जा सकता है।*

04 लोकतंत्र के लिए शिक्षा – स्कूलों में सामाजिक विज्ञान शिक्षा की प्रासंगिकता

अंजलि नरोन्हा

सामाजिक विज्ञान दुनिया भर के स्कूलों में किसी न किसी रूप में पढ़ाया जाता है। कभी इसे पर्यावरण अध्ययन कहा जाता है, जैसा कि भारत के मौजूदा प्राथमिक स्कूलों में, कभी–कभी यह – इतिहास, भूगोल, नागरिकशास्त्र – के रूप में माध्यमिक स्कूल तक और फिर इतिहास, भूगोल, अर्थशास्त्र, राजनीति विज्ञान और समाजशास्त्र के रूप में हाईस्कूल में पढ़ाया जाता है। आजकल कई देशों में यह 'नागरिक शिक्षा' या फिर 'सामाजिक और राजनैतिक जीवन' नाम से जाना जाता है, जैसा कि भारत में भी है। कुछ देशों में, और कुछ परिस्थितियों में सामाजिक अध्ययन नाम का विषय भी पढ़ाया जाता रहा है और कुछ वैचारिक दृष्टियाँ ऐसी हैं जो इतिहास व भूगोल को सामाजिक विज्ञानों से अलग रखते हुए उन्हें पृथक विषय मानती हैं, जबकि अर्थशास्त्र, राजनीति विज्ञान और समाजशास्त्र को वे सामाजिक विज्ञानों का हिस्सा मानती हैं। इस लेख के उद्देश्य को मद्देनजर रखते हुए मैं इस मुद्दे को आगे नहीं बढ़ाऊँगी।

सामाजिक विज्ञान से मेरा अर्थ है वे सभी विषय जो समाज और सामाजिक जीवन के कुछ या सभी पहलुओं को किसी न किसी चश्मे से देखते हुए किए जाने वाले उनके विश्लेषण से ताल्लुक रखते हों। इस प्रकार, इतिहास सामाजिक विज्ञान का हिस्सा है क्योंकि उसमें समाज के विभिन्न पहलुओं में निरन्तरता और बदलावों का, तथा समय के साथ–साथ उनके बनते–बदलते अन्तर्सम्बन्धों का विश्लेषण होता है; भूगोल में देश–दुनिया के विभिन्न क्षेत्रों का विश्लेषण होता है; अर्थशास्त्र में आर्थिक पक्षों का विश्लेषण करने के लिए सिद्धान्तों व पद्धतियों को विकसित व लागू किया जाता है; समाजशास्त्र में यही सब सामाजिक पहलुओं के लिए होता है और राजनीति विज्ञान, जिसमें यही राजनैतिक पहलुओं के लिए होता है। प्राथमिक स्कूली स्तर तक, अर्थशास्त्र, समाजशास्त्र और राजनीति विज्ञान पृथक विषयों की तरह से नहीं पढ़ाए जाते पर किसी न किसी तरह से ये नागरिकशास्त्र, नागरिकता शिक्षा या सामाजिक व राजनैतिक जीवन जैसे विषयों के साथ ही समेकित कर दिए जाते हैं।

हम सामाजिक विज्ञानों को किस तरह समझते हैं, इसका विचार किए बगैर अक्सर पालकों के मन में और आमतौर पर समाज के भीतर भी यह सवाल उठता है कि क्या आज की तकनीकतंत्रीय दुनिया में लोगों की जिन्दगी में सामाजिक विज्ञान की कोई प्रासंगिकता है भी या नहीं। लोग पूछते हैं कि उच्चतर माध्यमिक या फिर कॉलेज स्तर पर सामाजिक विज्ञान का कोई विषय चुनने की स्थिति में हमारा बच्चा आगे क्या करेगा ? उसके सामने नौकरी की क्या सम्भावनाएँ होंगी? स्कूल या कॉलेज में शिक्षक बनने की, शोधकर्ता या अध्येता बनने की, या फिर प्रतियोगी परीक्षाओं के माध्यम से किसी सरकारी सेवाक्षेत्र में जाने की ? या फिर वह किसी प्रबन्धन क्षेत्र में जाए, खासतौर पर मानव संसाधन प्रबन्ध के क्षेत्र में। ये सारे विकल्प तो इंजीनियरिंग के स्नातकों और मेडीकल के छात्र–छात्राओं के लिए भी खुले होते हैं तो फिर सामाजिक विज्ञान के विषयों को क्यों चुनें जब तथाकथित तकनीकी क्षेत्रों के विकल्प खुले हुए हैं ?

यह दृष्टिकोण ऊपर से शुरू होकर रिसते हुए नीचे की कक्षाओं में भी पहुँच जाता है जहाँ विद्यार्थियों (और पालकों) का रवैया सामाजिक विज्ञानों में पास भर हो जाने का होता है। बिरले ही यह बात पूछी जाती है कि किस तरह सामाजिक विज्ञान विद्यार्थी को बेहतर व्यक्ति बनाने में योगदान दे सकता है, या उनमें इतनी सामर्थ्य पैदा कर सकता है कि वे समाज की बेहतरी में योगदान दे सकें, या कि सामाजिक विज्ञानों के स्कूली अध्ययन व अध्यापन द्वारा किसी लोकतंत्र को बनाए रखने व उसे और विकसित करने में किस तरह से मदद मिल सकती है। कॉलेज स्तर पर सामाजिक विज्ञान में विशेषज्ञता हासिल करने को, स्कूली स्तर पर मिलने वाली सामाजिक विज्ञान की अनिवार्य शिक्षा से अलग करके देखे जाने की जरूरत है।

> *केवल एक खास तरह के सचेतन प्रयास (जिसमें शिक्षा भी शामिल है) के द्वारा ही लोकतंत्र को सिद्धान्त से हकीकत बनाने के लिए जरूरी आचरण, योग्यता और मूल्य विकसित किए जा सकते हैं और बच्चों के मानस में बैठाए जा सकते हैं।*

यह सब कह चुकने के बाद, मैं अब इस लेख में, स्कूली सामाजिक विज्ञान शिक्षा की विषयवस्तु तथा उसे पढ़ाने की पद्धति की आज के दौर में प्रासंगिकता पर ध्यान केन्द्रित करूँगी जिसमें नागरिक शास्त्र/नागरिकता शिक्षा/सामाजिक व राजनैतिक जीवन जैसे विषयों का खास हवाला होगा। मेरा मुख्य ध्यान लोकतंत्र के निर्माण

में, उसे बनाए रखने में और विकसित करने में सामाजिक विज्ञान की शिक्षा की प्रासंगिकता पर रहेगा। ऐसा करते वक्त, मैं सामाजिक विज्ञान शिक्षा को समाज की वर्तमान शक्ति संरचना तथा उसके ऊँच–नीच वाले, सामन्ती और विशिष्टता वाले रवैयों से भरे आचरण की नैतिक धारणाओं, जिन्हें खुद शिक्षकों व पालकों ने ही वैधता प्रदान की है, से मिलने वाली चुनौतियों को चिन्हित करूँगी।

लोकतंत्र के लिए शिक्षा के रूप में सामाजिक विज्ञान शिक्षा

लोकतांत्रिक समाज इस अर्थ में काफी हद तक 'विकसित' समाज होते हैं कि वे व्यक्ति विशेष से व्यवहार रूप में कुछ निश्चित तौर–तरीकों, नैतिकता, क्षमताओं और योग्यता की माँग करते हैं जिसके लिए मनुष्यों में मौजूद ऐसी नैसर्गिक प्रवृत्तियों के बहुत अधिक उदात्तीकरण की जरूरत होती है जो कि ऊपर लिखी बातों के प्रतिकूल हों; ताकि लोकतंत्र का सिद्धान्त वास्तव में लोकतंत्र की हकीकत बन जाए। केवल एक खास तरह के सचेतन प्रयास (जिसमें शिक्षा भी शामिल है) के द्वारा ही लोकतंत्र को सिद्धान्त से हकीकत बनाने के लिए जरूरी आचरण, योग्यता और मूल्य विकसित किए जा सकते हैं और बच्चों के मानस में बैठाए जा सकते हैं।

यदि इतिहास पर गौर किया जाए तो आधुनिक लोकतंत्र, असमान शक्ति–समीकरणों और कुछ लोगों के हाथों में सत्ता के केन्द्रीकरण के खिलाफ संघर्ष के रूप में उभरा था जिसने समकालीन ऊँच–नीच वाले सामन्ती और अधिकारवादी ढाँचों को चुनौती दी। अब इसे अक्सर उन्हीं लोगों के बीच प्रचलित, उनके द्वारा अवचेतन रूप से आत्मसात कर लिए गए वर्ग–आधारित मूल्यों, नीतियों और आचरणों से चुनौती झेलना पड़ती है जिन्होंने खुद ही सबसे पहले लोकतांत्रीकरण की माँग में भागीदारी की थी। ऐसा इसलिए होता है क्योंकि खुद हमारा सामाजीकरण एक ऐसी वृहद् ऐतिहासिक प्रक्रिया का हिस्सा है, जो असमानताओं व वर्गीकरणों को योग्यता में अन्तरों या 'ईश्वर प्रदत्त' भाग्य का नाम देकर वैधता प्रदान कर देती है। और सम्भवतः इसका मूल प्रत्येक व्यक्ति की खुद की सराहना की तथा दूसरों की जिन्दगी पर नियंत्रण की जन्मजात चाहत में भी छुपा हुआ है। इसलिए, व्यवहार में जितना संघर्ष सामाजिक क्षेत्रों व प्रक्रियाओं में लोकतंत्र की स्थापना करने का है उतना ही संघर्ष इसे व्यक्तियों के भीतर स्थापित करने का भी है। इस संघर्ष को ही कक्षाओं के भीतर और शैक्षणिक अनुभवों में जगह दिए जाने की जरूरत है। यह कैसे होगा, इसकी चर्चा करने से पहले आइए हम इस टेढ़े–मेढ़े मार्ग से लौटकर यह देखें कि वे कौन से सिद्धान्त हैं जिन पर लोकतंत्र आधारित होता है।

समानता : यह लोकतंत्र का केन्द्रीय और सबसे प्रमुख विचार है। लोकतंत्र में सभी व्यक्तियों को एक समान मानकर व्यवहार किया जाता है – एक व्यक्ति, एक मत का सिद्धान्त समानता के इसी सिद्धान्त पर आधारित है। हालाँकि, हम सभी जानते हैं कि व्यावहारिक रूप से अधिकतर लोकतांत्रिक समाजों में इस राजनैतिक समानता को आर्थिक व सामाजिक समानता का साथ नहीं मिलता है। वस्तुतः, आर्थिक व सामाजिक असमानता के कारण संविधान के द्वारा सिद्धान्त रूप में प्रदत्त 'राजनैतिक समानता' प्रतिकूल ढंग से प्रभावित होती देखी जाती है। सामाजिक विज्ञान की ऐसी शिक्षा जो सभी क्षेत्रों में समानता लाने का प्रयास करे, और जिससे समाज में ऐसे आचरणों का विकास हो जो अलगाव या भेदभाव पैदा करने वाली नीतियों को चुनौती दे सकें। उदाहरण के लिए, मूल्य चुकाने की सामर्थ्य पर निर्भर भेदभावपूर्ण स्वास्थ्य व शैक्षणिक सुविधाएँ, या ऐसे सम्भ्रान्त सार्वजनिक स्थानों जैसे हवाईअड्डों और होटलों से ऑटो रिक्शा जैसे यातायात साधनों का दूर रखा जाना, या उन लोगों के विरुद्ध कार्यवाही की माँग करना जो विभिन्न जातियों तथा वर्गों के आपस में मिलने–मिलाने, शादी–विवाह करने आदि को हिंसा द्वारा रोकते हैं, इत्यादि। इस तरह के आचरणों का विकास एक महत्वपूर्ण नागरिक समुदाय के लिए आवश्यक है। सभी के प्रति एक–सा आदर भाव लोकतंत्र के विचार का अभिन्न हिस्सा है।

न्याय : समानता के सिद्धान्त से ही सभी के लिए समान न्याय का सिद्धान्त निकलता है, भले ही समाज में व्यक्तियों के 'दर्जे' अलग–अलग हों। यह नहीं चलेगा कि कुछ लोग काफी कुछ ऐसा करके बच निकलें जिसे 'आधिकारिक' रूप से गलत माना जाता है।

स्वतंत्रता : लोकतंत्र का एक अन्य बुनियादी सिद्धान्त है सभी व्यक्तियों की स्वतंत्रता। इसीलिए कोई भी लोकतांत्रिक संविधान जैसे कि भारतीय संविधान अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता, देश में कहीं भी आने–जाने की स्वतंत्रता, भिन्न–भिन्न धर्मों को मानने की स्वतंत्रता आदि को सुनिश्चित करता है। एक अन्तर्निहित मान्यता है कि प्रत्येक व्यक्ति उसकी खुद की 'स्वतंत्र इच्छा' का उत्पाद होता है। हालाँकि, जैसा कि हम सब जानते हैं समाज में शान्तिपूर्ण ढंग से रहने के लिए, हमें अपनी–अपनी व्यक्तिगत स्वतंत्रताओं को इस ढंग से सीमित करना पड़ता है कि वे दूसरों की स्वतंत्रताओं का अतिक्रमण न करें। लेकिन फिर भी यह किसी एक व्यक्ति और दूसरे व्यक्ति के बीच की बात नहीं है कि किस सीमा तक किसी स्वतंत्रता को कम किया जाए – बल्कि यह सबको मिलने वाली अलग–अलग स्वतंत्रताओं के बारे में एक सामूहिक धारणा की बात है।

भागीदारी : लोकतंत्र के बारे में सबसे ज्यादा उद्धृत उद्धरण

अब्राहम लिंकन के गैटिसबर्ग उद्‌बोधन से लिया गया है जो लोकतंत्र को 'जनता की, जनता के द्वारा, जनता के लिए सरकार' के रूप में परिभाषित करता है। इसलिए, लोकतंत्र में नागरिकों की भागीदारी के द्वारा ही नीतियों व कानूनों का निर्माण, उनकी समीक्षा तथा संशोधन किया जाता है। यदि नागरिकों का रवैया बेहतर और ज्यादा प्रासंगिक नीतियों की रचना की प्रक्रिया में खुद शामिल होने और भागीदारी करने का 'सिरदर्द उठाने का नहीं है', तो खतरा यह रहता है कि ऐसी नीतियों व कार्यक्रमों का फल केवल उन चन्द लोगों को मिलेगा जो इसमें भागीदारी करते हैं।

> *इसलिए, व्यवहार में जितना संघर्ष सामाजिक क्षेत्रों व प्रक्रियाओं में लोकतंत्र की स्थापना करने का है उतना ही संघर्ष इसे व्यक्तियों के भीतर स्थापित करने का भी है। इस संघर्ष को ही कक्षाओं के भीतर और शैक्षणिक अनुभवों में जगह दिए जाने की जरूरत है।*

लोगों का प्रतिनिधित्व तथा उनके प्रति उत्तरदायित्व : आधुनिक लोकतंत्र प्रत्यक्ष लोकतंत्र न होकर प्रतिनिधित्व पर आधारित होते हैं, क्योंकि प्रत्यक्ष लोकतंत्रों के हिसाब से राष्ट्र बहुत बड़े होते हैं। इस तरह यह जरूरी है कि लोग प्रतिनिधिक नेतृत्व का 'सही' अर्थ समझें, जो कि लोगों के मत द्वारा चुने गए प्रतिनिधि का 'शासन' नहीं होता बल्कि उन लोगों के प्रति उसका उत्तरदायित्व व जवाबदेही होती है जिन्होंने उसे नेता चुना। इसका अर्थ हुआ कि नेतृत्व बेलगाम नहीं होता तथा जो चाहे वह नहीं कर सकता। उसे संविधान द्वारा, नीतियों द्वारा और नागरिकों की सक्रिय तथा समालोचनात्मक भागीदारी द्वारा सीमित किया जाता है।

यदि ये सब एक स्वस्थ और सुदृढ़ लोकतंत्र के आधार हैं तो फिर जरूरी है कि नागरिक :

- सभी लोगों को समान नजर से देखें,
- ऐसे मामलों को उठाने की क्षमता रखें जहाँ लोगों से असमान व्यवहार किया जा रहा हो,
- गलत बातें सुधारने के तरीके ढूँढ़ने की कोशिश करने का रवैया रखें, न कि ऐसी बातों के प्रति उदासीन या दुनियादारी वाला मतलबी रवैया रखने का,
- नीतियों, नियमों व कानूनों का समीक्षात्मक ढंग से विश्लेषण कर सकें क्योंकि इनसे लोग प्रभावित होते हैं,
- विवादों को एक साथ मिलकर सुलझाने के तरीके ढूँढ़ सकें, परस्पर सहयोग हेतु जरूरी योग्यताएँ विकसित करने के, तथा साथ मिलकर काम करने के ढंग तलाश सकें, और
- संवाद – यानी दूसरे लोगों के दृष्टिकोणों को सुनना–समझना व सर्वसम्मति बनाना आदि – की क्षमताएँ विकसित कर सकें।

सामाजिक विज्ञान पाठ्यक्रम और उसकी कक्षा के लिए इस सबका क्या आशय हुआ?

इसके निहितार्थ पाठ्यक्रम और कक्षा शिक्षण, दोनों के लिए हैं। सामाजिक विज्ञान शिक्षा के माध्यम से ऊपर उल्लिखित गुण विकसित करने के लिए बच्चों को ऐसे समतावादी सामूहिक तरीकों की मदद से विवादास्पद मुद्दों के समीक्षात्मक विश्लेषण करने का अनुभव मिलना चाहिए जिनसे वे विविधता तथा दूसरों की स्वतंत्रता का सम्मान करना सीखें। साथ ही उन्हें सहयोगात्मक तरीके से काम करने के मौके भी मिलना चाहिए। ऐसे अनुभव के माध्यम से ही वे समानता, सभी के लिए सम्मान तथा लोकतांत्रिक न्याय के आदर्श विकसित कर पाएँगे और अपने भीतर यह दृढ़ विश्वास पैदा कर पाएँगे कि लोकतांत्रिक कार्यवाही के द्वारा स्थितियों को बदलकर बेहतर बनाया जा सकता है।

ऐसी प्रक्रियाओं को समकालीन सामाजिक, राजनैतिक और आर्थिक जीवन के विभिन्न पहलुओं के साथ ठोस ढंग से काम करके विकसित किया जा सकता है, और ऐसे समीक्षात्मक चश्मे की मदद से इतिहास व भूगोल की समझ पैदा की जा सकती है। यह ठोस काम अध्ययन, चिन्तन, चर्चाओं और अनुभव के द्वारा किया जा सकता है।

भारतीय स्कूलों में पारम्परिक सामाजिक विज्ञान शिक्षा का आधार है बच्चों को ढेर सारी जानकारी प्रदान करना जिसे बच्चों को मूल्यांकन के समय वैसा ही बताना पड़ता है। भारतीय शिक्षा व्यवस्थाएँ विवादों से भी बचना चाहती हैं। जबकि हमारे सामने स्थिति ऐसी है जहाँ यह सुनिश्चित करने के लिए कि सामाजिक विज्ञान लोकतंत्र के उद्देश्यों को पूरा करता है, कक्षाओं में विवादास्पद विषयों को लाना ही होगा। और फिर उनका विभिन्न दृष्टिकोणों के साथ समीक्षात्मक ढंग से विश्लेषण करना होगा ताकि उन्हें सही ढंग से समझा जा सके और उनके बेहतर समाधान ढूँढ़े जा सकें। इसे प्रो. कृष्णकुमार ने अपनी किताब 'लर्निंग फ्रॉम कॉन्फ्लिक्ट' में विस्तार से समझाया है। चुनाव वास्तव में किस तरह होते हैं, निर्धारित प्रक्रियाओं द्वारा नागरिक जरूरी मुद्दों – जैसे बड़े बाँधों के पर्यावरणीय व सामाजिक प्रभाव, वाहनों के यातायात में अनियंत्रित इजाफा, या कि राष्ट्रकुल खेलों के आयोजन जैसी भी कोई बात – के बारे में क्या करते हैं या क्या कर सकते हैं, इस तरह

के ढेर सारे उदाहरण देने पर बच्चों का विभिन्न, और अक्सर विरोधाभासी, दृष्टिकोणों से पाला पड़ता है जिससे उन्हें किसी भी मुद्दे के बारे में और गहराई में जाकर सामूहिक रूप से पड़ताल करने की प्रेरणा मिलती है।

लोकतंत्र के लिए शिक्षा की जरूरत यह भी है कि निर्णय लेने की प्रक्रिया में भागीदारी सुनिश्चित की जाए तथा निर्णयों व प्रस्तावों से भागीदारों, यानि कि विद्यार्थियों, में सफलता का भाव पैदा हो। विद्यार्थियों में सफलता के ऐसे भाव के न होने पर वे, जो भविष्य के नागरिक हैं, लोकतंत्र के प्रति प्रतिबद्धता की बजाय दोषदर्शी रवैया अख्तियार कर लेंगे, जिससे कि लोकतंत्र के लिए सामाजिक विज्ञान शिक्षा का मूल उद्देश्य ही विफल हो जाएगा।

लोकतंत्र को विकसित करने के लिए अच्छी सामाजिक विज्ञान शिक्षा जरूरी है। और इसके लिए आवश्यक है कि शिक्षातंत्र, शिक्षक व पालकों की लोकतांत्रिक प्रक्रियाओं और उसके अन्तर्निहित सिद्धान्तों में गहरी आस्था हो। यह विश्वास–कि सिर्फ लोकतांत्रिक प्रक्रियाओं द्वारा ही झगड़ों तथा मुश्किल परिस्थितियों को मानवीय व अहिंसक ढंग से सुलझाया जा सकता है – लोकतंत्र की सफलता के लिए बेहद जरूरी है। इसके अलावा, एक सच्ची लोकतांत्रिक व्यवस्था के भीतर ही, निरन्तर और ऊँचे स्तरों पर पहुँचते जाने का अन्तर्निहित सामर्थ्य होता है। इसलिए यह आवश्यक है कि सामाजिक विज्ञान पाठ्यक्रम ऐसी सामग्री और तरीके विकसित करे जो लोकतांत्रिक ढंग से कार्य करने के लिए लोकतांत्रिक मूल्यों और आचरणों को सफलतापूर्वक विकसित कर सकें। पाठ्यक्रम द्वारा बच्चों के बीच सार्वजनिक मुद्दों पर सहयोगात्मक ढंग से, सहकार्यता पर आधारित, समतावादी सामूहिक कार्य कर पाने के लिए जरूरी क्षमताओं का विकास किया जाना चाहिए।

> *लोकतंत्र को विकसित करने के लिए अच्छी सामाजिक विज्ञान शिक्षा जरूरी है। और इसके लिए आवश्यक है कि शिक्षातंत्र, शिक्षक व पालकों की लोकतांत्रिक प्रक्रियाओं और उसके अन्तर्निहित सिद्धान्तों में गहरी आस्था हो।*

हमारे पास न सिर्फ कुछ खास स्कूलों के बल्कि कुछ वृहद् पाठ्यचर्याओं के भी ऐसे उदाहरण मौजूद हैं जो इस तरह से कार्य करते हैं। एनसीईआरटी का मिडिल व हाईस्कूल स्तर की हालिया पाठ्यक्रम व किताबें ऐसा ही एक उदाहरण हैं। मिडिल स्कूल की इतिहास, तथा सामाजिक व राजनैतिक जीवन विषयों की किताबें तथा हाईस्कूल स्तर की इतिहास, राजनीति विज्ञान और समाजशास्त्र की किताबों में कुछ ऐसी केस स्टडीज़ (मामलों के अध्ययन) का प्रयोग किया गया है जो विवादों को उपजाती हैं; उनमें दृष्टिकोणों की भिन्नता है और वे उन सामूहिक कार्यवाहियों का भी जिक्र करती हैं जो कुछ हद तक सफल रही हैं। देशभर में कई स्कूल हैं, जिनमें से कुछ के अनुभव इस अंक में बताए गए हैं, जैसे शिशु वन (मुम्बई), नम्मा शाले (बंगलौर), पूर्णोदय (बंगलौर), विक्रमशिला (कोलकाता), शिक्षा मित्र (कोलकाता), सेन्टर फॉर लर्निंग (हैदराबाद व बंगलौर), आधारशिला (सेंधवा) और कई अन्य, जो खुद अपना पाठ्यक्रम और पाठ्यसामग्री तैयार करते हैं, पाठ्यचर्या के अंग के रूप में इस तरह के मुद्दों की कक्षा में चर्चा आयोजित करते हैं और अपने बच्चों को बीटी बैंगन, जलवायु परिवर्तन या आम आदमी पर राष्ट्रकुल खेलों के प्रभाव जैसे मुद्दों को उठाने वाले मंचों पर भाग लेने के लिए भी ले जाते हैं। एकलव्य की सामाजिक विज्ञान की पाठ्यपुस्तकों को भी समालोचनात्मक व विचारशील लोकतंत्र के लिए सामाजिक विज्ञान पाठ्यक्रम विकसित करने की संसाधन सामग्री के रूप में देखा जा सकता है।

न तो एनसीईआरटी की नई किताबों की पद्धति और न ही ऊपर उल्लिखित स्कूलों या शैक्षणिक समूहों का तरीका किसी भी ढंग से पक्षपाती है। वे उसी हद तक राजनैतिक हैं जहाँ तक कि लोकतंत्र एक राजनैतिक आदर्श है जो कि हमारे राष्ट्र के संविधान का आधार है। इस देश के नागरिक होने के नाते, क्या यह हमारा दायित्व नहीं है कि हम संविधान के सही पालन को, और इस तरह से लोकतंत्र के सही पालन को सुनिश्चित करें? तो फिर लोगों द्वारा उठाए गए ऊपर उल्लिखित कदमों को पक्षपाती क्यों माना जाए जबकि ऐसे कदमों या कार्यों को, जो वाकई में लोकतांत्रिक सिद्धान्तों के प्रति अनैतिक हैं, वैध और मुख्यधारा का माना जाता है?

> *शिक्षक, पालक, सामुदायिक नेता, सभी ऐसी सामाजिक विज्ञान शिक्षा को तरजीह देना चाहेंगे जो सत्ता के प्रति मजबूत समालोचनात्मक रवैया रखने के बजाय उसका अभिवादन करती हो, और विवादों को बच्चों के दिमागों से दूर ही रखती हो।*

समालोचनात्मक नागरिकता के लिए दी जाने वाली सामाजिक विज्ञान शिक्षा की चुनौतियाँ

दृष्टिकोणों के विरोधाभास इस तथ्य में मौजूद होते हैं कि समाज के बदलने के ढंग उतने औपचारिक व सीधे–सादे नहीं होते जितने कि

कागज पर बदल दी जाने वाली नीतियाँ होती हैं। हकीकत यह है कि सामाजिक व सांस्कृतिक रूप से भारत बहुत हद तक ऊँच–नीच के क्रम पर आधारित, (आर्थिक नहीं बल्कि सांस्कृतिक ढंग से) सामन्ती और जाति–आधारित देश है। प्रत्येक मनुष्य की कई पहचान होती हैं – परिवार की, धर्म की, अपने सामाजिक समूह की, राष्ट्र की, व्यवसाय की। हालाँकि भारत 60 वर्ष पूर्व एक लोकतंत्र बन गया था, लेकिन वह अभी भी कार्यकारी व सांस्कृतिक रूप से काफी हद तक एक जाति–आधारित, सामन्ती समाज है। संस्थागत प्रक्रियाएँ जो लोकतंत्र को, खासतौर पर शिक्षा प्रणाली को मजबूत बना सकती थीं, वस्तुतः इस सांस्कृतिक बोझ के नीचे झुक गईं। शिक्षक, पालक, सामुदायिक नेता, सभी ऐसी सामाजिक विज्ञान शिक्षा को तरजीह देना चाहेंगे जो सत्ता के प्रति मजबूत समालोचनात्मक रवैया रखने के बजाय उसका अभिवादन करती हो, और विवादों को बच्चों के दिमागों से दूर ही रखती हो। इसलिए वे लोग, जिनका खुद अपने आचरण में लोकतांत्रिक होना जरूरी है, तथा जिनसे यह अपेक्षा होती है कि वे बच्चों के भीतर भी ऐसे मूल्यों व गुणों को पैदा कर उन्हें बढ़ावा देंगे, दरअसल खुद ही लोकतांत्रिक आचरण विकसित व प्रोत्साहित करने के लिए किए जाने वाले प्रयासों को कमजोर करने में सक्रिय रूप से भागीदार होते हैं। इसके विपरीत, यदि कुछ थोड़े शिक्षक समालोचनात्मक और विचारशील सोच को कक्षा के अन्दर अपनाते हैं, तो दूसरे शिक्षक, पालकगण और समुदाय के सदस्य उन्हें प्रोत्हासित करने व सहयोग देने की बजाय उनकी आलोचना करते हैं और उन्हें अलग–थलग कर दिया जाता है। इसलिए, सामाजिक विज्ञान शिक्षक अक्सर किसी जाति–आधारित, ग्रामीण स्कूल की कक्षा में स्कूली निर्णय प्रक्रिया के लिए प्रतिनिधित्व पर आधारित बच्चों की किसी व्यवस्था को लागू करने से डरते हैं क्योंकि अगर वंचित वर्गों से कोई लड़की या लड़का 'चुन' लिया जाए तो विवाद खड़ा हो जाता है।

सम्भ्रान्त स्कूलों की कक्षाएँ, जहाँ प्रगतिशील कार्यपद्धतियों का उपयोग हो रहा होता है, सामाजिक रूप से विविधता वाली मिश्रित कक्षाओं की बजाय एकरूपी सम्भ्रान्त कक्षाएँ बन जाती हैं। ऐसी कक्षाओं की वर्ग/जाति सम्बन्धी एकरूपी प्रति के कारण प्रतिनिधित्व की इसी तरह की गतिविधि कम विवादास्पद रहती है क्योंकि वह यथास्थिति को उसी ढंग से चुनौती नहीं देती जैसी चुनौती उसे ग्रामीण परिवेश में मिलती है।

इससे फिर अलग–अलग प्रकार के स्कूलों के लिए अलग–अलग ढंग की सामाजिक विज्ञान शिक्षा की सम्भावना का जन्म होता है, और यह भेद ही समानता के उस सिद्धान्त के लिए अनैतिक हो जाता है जो कि किसी भी लोकतांत्रिक समाज का आधार होता है।

निष्कर्ष

जो बात मैं कहना चाह रही हूँ वह यही है कि स्कूलों में वृहद् स्तर पर लोकतंत्रात्मक सामाजिक विज्ञान पाठ्यचर्या और शिक्षण के व्यापक कार्यान्वयन के द्वारा ही किसी लोकतांत्रिक समाज को बनाए रखा जा सकता है और उसमें गुणात्मक विकास किया जा सकता है। कोई भी दूसरा विषय इस भूमिका को नहीं निभा सकता। समालोचना पर आधारित चिन्तनशील सामाजिक विज्ञान अध्ययन व अध्यापन की प्रमुख प्रासंगिकता यही है। जिस किस्म के सामाजिक विज्ञान को मैंने ऊपर विस्तार से समझाने की कोशिश की है, उसे व्यावहारिक हकीकत बनाने के लिए उसके पालन करने वालों को शैक्षणिक, बौद्धिक और सामाजिक सहयोग के साथ–साथ संसाधनों, मित्र समूहों की आवश्यकता होती है। मुझे पूरा भरोसा है कि इस पत्रिका के पाठक इस दिशा में कदम उठाएँगे।

सामाजिक विज्ञान की ऐसी शिक्षा न केवल समालोचनात्मक व चिन्तनशील लोकतांत्रिक नागरिकों के गुणों का विकास करेगी, बल्कि उनके भीतर किसी भी कार्यक्षेत्र में, समूह में रहकर काम करने की क्षमता, तथा लगातार बदलती दुनिया में विवेचनात्मक रूप से विवेकपूर्ण (और इसलिए मेरे हिसाब से बेहतर) चुनाव करने की क्षमता भी पैदा करेगी।

दूसरे प्रकार के सामाजिक विज्ञान शिक्षण (जानकारियाँ दे देना, अमुक–अमुक चीजों या लोगों के बारे में जानना आदि) की, मेरे हिसाब से, स्कूली शिक्षा के लिए कोई प्रासंगिकता नहीं है और इसलिए बच्चों को उस बोझ से बचाया जा सकता है।

अंजलि नरोन्हा *ने दिल्ली स्कूल ऑफ इकॉनोमिक्स से अर्थशास्त्र में एम.ए. किया है और वे 1982 से एकलव्य में काम कर रही हैं। वे एकलव्य के सामाजिक विज्ञान शिक्षा कार्यक्रम और भाषा व गणित से जुड़े प्राथमिक स्कूल शिक्षा कार्यक्रम के विकास में शामिल रही हैं। वे एनसीईआरटी की कक्षा 6 तथा 7 के सामाजिक और राजनैतिक जीवन विषय के विकास समूह का हिस्सा रही हैं। उन्होंने सामाजिक विज्ञान शिक्षा तथा स्कूली शिक्षा व्यवस्थाओं में नवप्रवर्तनों पर कई शोधपत्र भी लिखे हैं। वर्तमान में वे द्विभाषिक भाषा और अध्ययन कार्यक्रम के विकास में, TISS के एम.ए. शिक्षा कार्यक्रम के पाठ्यक्रमों के विकास तथा अध्यापन में, स्कूली विकास एवं सार्वजनिक शिक्षा कार्यक्रमों में, तथा NCTE के साथ नीति निर्धारण व शिक्षक शिक्षण पाठ्यक्रमों के विकास जैसे कार्यों में व्यस्त हैं। उनसे इस anjali_noronha99@yahoo.com ईमेल पते पर सम्पर्क किया जा सकता है।*

05 सामाजिक अध्ययन में परेशान करने वाले सवाल

हृदयकांत दीवान

अ. विषय परिचय

सामाजिक अध्ययन हमारे जीवन और अस्तित्व से गहरे तरीके से जुड़ा है। इससे हमारे व्यवहार को प्रभावित करने और संसार को देखने के हमारे नजरिए को गढ़ने की उम्मीद की जाती है। सामाजिक अध्ययन यह उम्मीद करता है कि सीखने वाला समाज को प्रभावित करने के साथ ही उसका अंग भी बन जाएगा। इस सवाल का, कि हम बच्चों को स्कूल में क्यों पढ़वाएँ, आम उत्तर होता है 'ताकि वे अच्छे नागरिक बनें'। सामाजिक अध्ययन एक ओर जहाँ बच्चे के जीवन में जड़ें जमाए हुए, समाजों और नागरिकों की भिन्न–भिन्न धारणाओं को समझाने और उनका विश्लेषण करने का प्रयास करता है तो वहीं दूसरी ओर यह अपने को परस्पर विरोधी तानोंबानों में उलझा हुआ पाता है।

सामाजिक अध्ययन कार्यक्रम की नैतिक बुनियादों में कुछ स्वयंसिद्ध मान्यताएँ होती हैं। उदाहरण के लिए, 'सभी मनुष्य समान हैं' को भारत के संविधान के अनुसार एक स्वयंसिद्ध तथ्य माना जा सकता है। हम जिन स्वयंसिद्ध तथ्यों को अपनाते हैं उनका – भोपाल गैस त्रासदी से लेकर हमारे घर में होने वाले लिंग भेदभाव तक – हमारे आसपास के संसार का विश्लेषण करने के तरीके पर सीधा प्रभाव पड़ता है।

एक सामाजिक अध्ययन कार्यक्रम में क्या और किस तरह पढ़ाया जाना चाहिए, इनका चुनाव इस पर निर्भर करता है कि हम समाज और मनुष्यों को कैसे देखते हैं। संविधान की प्रस्तावना से यह समझा जा सकता है कि इन खास शब्दों से क्या तात्पर्य है, परन्तु इनकी व्याख्या करने के ढंग, इनके प्रति आस्था और गम्भीरता की गहराइयों में बहुत भेद होते हैं। हमारी पहचान की धारणाओं से अभिन्न रूप से जुड़ा होने के कारण, सामाजिक अध्ययन अनेक दृष्टियों से एक युद्धक्षेत्र की तरह होता है क्योंकि यह विचारधाराओं और विशेष मतों को आरोपित करने के रास्ते उपलब्ध कराता है। परन्तु, शिक्षा के उद्देश्य को देखते हुए चिन्ताएँ केवल ये ही नहीं हैं। उसमें स्थिर सामाजिक सिद्धान्तों और रूपान्तरण की चिंताएँ भी शामिल हैं।

सामाजिक अध्ययन अपने आप को ऐसे मुद्दों में उलझाता है जिनसे हर व्यक्ति रोज जद्दोजहद करता है; इसी में इसकी सम्पन्नता और जटिलता निहित है।

जब हम सामाजिक अध्ययन पढ़ाने और पढ़ने पर विचार करते हैं तो हमें इन मुख्य प्रश्नों का सामना करना पड़ता है:

- **उद्देश्य** : सामाजिक अध्ययन के मुख्य उद्देश्य क्या हैं?
- **घटक** : सामाजिक अध्ययन कार्यक्रम की बुनियादी निर्माण इकाइयाँ क्या हैं?
- **दृष्टिकोण** : प्रस्तावित विमर्श का दृष्टिकोण क्या है?
- **प्रकृति** : इस विषय की प्रकृति क्या है, और यह किस तरह विकसित होता है और ज्ञान का संग्रह करता है?
- **विधि** : शिक्षण की कौन–सी विधियाँ उपयुक्त होंगी?

नीचे के खण्डों में हम देखेंगे कि सीधे–साफ ढंग से इन प्रश्नों के उत्तर देना क्यों कठिन है। हम अपना ध्यान प्राथमिक कक्षाओं पर केन्द्रित रखेंगे।

ब. उद्देश्य

सामाजिक अध्ययन का सर्वप्रमुख उद्देश्य समाज को और उसमें अपने स्थान को समझने में बच्चे की मदद करना, और विवेकपूर्ण व्यक्तिगत और सामाजिक विकल्पों को चुनने में इस समझ का उपयोग करना, और उसे यह महसूस करने के काबिल बनाना कि उसके चुनाव उस समाज के निर्माण को प्रभावित करते हैं जिसमें वह रहता है।

ऐसे चुनावों का केवल व्यक्तिगत हितों से ही नहीं बल्कि पूरे समाज की सामूहिक भलाई से भी प्रेरित होना जरूरी है। चूँकि एक 'अच्छा समाज' और एक 'अच्छा मनुष्य' नैतिक अवधारणाएँ हैं, इसलिए सामाजिक अध्ययन का चौथा लक्ष्य नैतिक बोध का विकास है।

एक सामाजिक अध्ययन कार्यक्रम के कुछ निहितार्थ होना चाहिए कि बच्चा अपने समाज के बारे में क्या समझता है और किस तरह वह उससे पेश आता है। कार्यक्रम को धीरे–धीरे बच्चे को बेहतर फैसले लेने, चुनाव तथा निर्णय करने में अधिक आत्मविश्वास महसूस करने में मदद करना चाहिए। उसे किसी मामले में पक्ष लेने, जो एक उदारवादी, लोकतांत्रिक बहुलतावादी समाज में महत्वपूर्ण है, के योग्य बनाना भी जरूरी है। पर इस सबके बावजूद किसी भी सामाजिक अध्ययन कार्यक्रम में बच्चों में दूसरों के चुनावों और दृष्टिकोणों, तथा आस्थाओं और अनुभवों की अनेकता से सामन्जस्य बिठाना भी बेहद महत्वपूर्ण है, क्योंकि यह व्यक्ति के वैश्विक दृष्टिकोण को अधिक समृद्ध बनाता है।

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि नैतिक विकास का कुछ हिस्सा सामाजिक अध्ययन कार्यक्रम में ही समाहित है। यहाँ सुझाए गए नैतिक विकास का सम्बन्ध स्वयं का तार्किक और मूल्यपरक ढाँचा

निर्मित करने में बच्चे की मदद करने से है। उसे ऐसे उपयुक्त विकल्प चुनने में सक्षम बनना जरूरी है जो अधिकाँश समाज के लिए लाभकारी हों। इसके अलावा, उसे पूरे समाज की आवश्यकताओं और पर्यावरण के प्रति संवेदनशील बनाना भी जरूरी है।

अक्सर सामाजिक अध्ययन को किसी विशेष प्रकार के सामुदायिक जीवन और नैतिक विज्ञान के बारे में सीखना मान लिया जाता है, और यह अक्सर करने और न करने वाली बातों की एक सूची तक सीमित हो जाता है जिनका बच्चों को पालन करना होता है। ऐसा कार्यक्रम बच्चे के निरीक्षण करने, अनुभव करने, विचारों को गढ़ने, और काम करने तथा निर्णय के अपने खुद के तरीके विकसित करने की छूट और अवसरों को सीमित कर देता है।

स. घटक

उपरोक्त तीन उद्देश्यों से सामाजिक अध्ययन कार्यक्रम के मोटे तौर पर चार घटक दिखाई देते हैं: चुनाव, अवधारणा, जानकारी और कौशल।

1. चुनाव

एक अच्छा सामाजिक अध्ययन कार्यक्रम बच्चे को नैतिक रूप से करने और न करने के निर्देशों की सूची देने के बजाय पक्ष और विपक्ष के तथ्यों को तौलकर खुद उचित चुनाव करने की उसकी क्षमता विकसित करने का प्रयास करेगा। इसमें यह महत्वपूर्ण है कि वह हमारे संविधान में स्थापित मूल्यों – तार्किक सोच, जाँच–पड़ताल, समता, विविधता और अनेकता के सिद्धान्तों – का अनुसरण करे।

2. अवधारणा

प्रश्न पूछने और समझने, उत्तरों को खोजने और चुनाव करने की योग्यता होने के लिए आधारभूत अवधारणाओं को समझना आवश्यक है। यदि हम उन्हें समुचित स्पष्टता के साथ नहीं समझते तो समझदारी भरे निर्णय नहीं कर सकते। सामाजिक अध्ययन में अवधारणाएँ ही समझ–निर्माण करने की बुनियादी इकाइयाँ होती हैं। अवधारणा से तात्पर्य वास्तविक संसार की किसी वस्तु या घटना की सैद्धान्तिक समझ से है। राष्ट्र, त्यौहार, बाजार, नागरिक, समुदाय, मनुष्य, घर, परिवार, आदि – प्रत्येक एक अवधारणा है।

सामाजिक अध्ययन कार्यक्रम में लोगों की पारस्परिक निर्भरता, सम्प्रेषण, मानव समाज, समाजों का विकास, स्थिति निर्धारण और मानचित्रण, जलवायु, पर्यावास, बाज़ार, शासन व्यवस्था, सहयोग, विविधता, अनेकता, आदि के विचारों के साथ काम करने को शामिल करना भी आवश्यक है। ये अवधारणाएँ धीरे–धीरे और अधिक जटिल होती जाएँगी और उनमें नए–नए अन्तर्सम्बन्ध बनते जाएँगे। बच्चे की शुरुआती स्पष्ट अवधारणाएँ – एक कुर्सी; ईद, दिवाली, क्रिसमस जैसे त्यौहार; घर, परिवार – धीरे–धीरे विकसित होती हुई अधिक गहरी और विस्तृत होती जाती हैं। सभी बच्चों में एक–सा अवधारणात्मक विकास नहीं होता। बच्चों में अवधारणाएँ बारीक भेदों के साथ विकसित होती हैं, और उनके अपने अलग–अलग अनुभवों के ढाँचों पर ही टिकी रह सकती हैं।

इसका एक अन्य उदाहरण यह हो सकता है कि जैसे–जैसे बच्चा बड़ा होता है तो वह 'पुरुष' समूह में से 'पिता' का विचार स्पष्ट रूप से अलग महसूस करने लगता है। फिर एक स्थिति आती है जब एक पिता और दूसरे पुरुष में भेद दिखाई देने लगता है। इस तरह, अनुभवों में अन्तर ही अवधारणाओं के निर्माण में बारीक भेद पैदा कर देता है।

3. जानकारी

अवधारणाएँ वास्तविक संसार से ली गई जातीय संरचनाएँ और अमूर्त धारणाएँ होती हैं। इसका मतलब हुआ कि वास्तविक संसार की जानकारी अवधारणाओं के निर्माण का आधार होती है।

जैसे नक्शे की अवधारणा को लें। नक्शा बनाने के लिए यह जानना जरूरी है कि उत्तर कहाँ है और दक्षिण कहाँ है। इसी प्रकार, सम्बन्धों की विविधता और उनके नाम जाने बिना, आप हमारे वार्तालापों और सामाजिक प्रक्रियाओं में आने वाले लिंग–आधारित तथा अन्य कौटुम्बिक सम्बन्धों का विश्लेषण नहीं कर सकते। किसी बाजार या नगर का इतिहास समझने के लिए हमें सम्बन्धित तारीखों और घटनाओं की जानकारी की जरूरत होती है।

> *सामाजिक अध्ययन कार्यक्रम में लोगों की पारस्परिक निर्भरता, सम्प्रेषण, मानव समाज, समाजों का विकास, स्थिति निर्धारण और मानचित्रण, जलवायु, पर्यावास, बाज़ार, शासन व्यवस्था, सहयोग, विविधता, अनेकता, आदि के विचारों के साथ काम करने को शामिल करना भी आवश्यक है।*

अन्य विषयों जैसे गणित या विज्ञान की अपेक्षा सामाजिक अध्ययन को जानकारी की ज्यादा जरूरत होती है। गणित में एक बारगी जब आपके पास कुछ स्वयंसिद्ध तथ्य हो जाते हैं तो आप उनका उपयोग करते हुए तार्किक रूप से सारा ज्ञान विकसित कर सकते

हैं। विज्ञान में हम एक प्रयोग को दोहरा सकते हैं या नए प्रयोग भी कर सकते हैं। इसमें यह भी सुनिश्चित रहता है कि किन्हीं दी गई स्थितियों में प्रेक्षणों के परिणाम सुसंगत होंगे।

परन्तु सामाजिक अध्ययन में विश्लेषण को गढ़ने के लिए किसी जानकारी और तथ्यों के बगैर किसी अवधारणा के साथ अमूर्त ढंग से काम करना सम्भव नहीं है। इसका काम जानकारी में से संरचनाएँ निकालना है। इसलिए, इस विषय को पढ़ाने में यह महत्वपूर्ण बात है कि क्या जानकारी प्रदान की जाती है और वह गहराई के किस स्तर तक जाती है। पर निश्चित ही हमें, इस बारे में सचेत रहना चाहिए कि जानकारी शायद ही कभी निष्पक्ष होती है, वह आमतौर पर लोगों के दृष्टिकोणों से रंगी हुई होती है।

जानकारी को कभी–कभी भ्रमवश अवधारणा समझ लिया जाता है। यह भ्रम इसलिए पैदा होता है कि जानकारी और अवधारणा आपस में, उनके पारस्परिक सम्बन्धों तथा एक दूसरे की बात करने में समान भाषा के उपयोग, दोनों तरह से गुंथी रहती हैं। कुछ पहलुओं में, जानकारी अवधारणा के विकास से पहले होती है। पर, एक बारगी अवधारणा के विकसित हो जाने के बाद, उसका उपयोग और अधिक जानकारी को व्यवस्थित करने और बनाए रखने के लिए किया जा सकता है। किसी बच्चे के लिए 'शिक्षक' का आशय उसके खास शिक्षक से हो सकता है – यह जानकारी है। दूसरी ओर, बच्चे की माँ 'शिक्षक' शब्द का उपयोग उस विशेष शिक्षक (जानकारी) या शिक्षक की अवधारणा, दोनों को निरूपित करने के लिए कर सकती है।

4. कौशल

जानकारी से आगे चलकर अवधारणा, अवधारणा से समझ और समझ से विकल्पों का चुनाव कैसे निकलता है? इसी में कौशलों की भूमिका है। जैसे तर्क प्रक्रिया एक गणितीय कौशल है, और परिकल्पना करना और प्रयोग करना वैज्ञानिक कौशल हैं, उसी तरह सामाजिक अध्ययन के अपने विशेष कौशल होते हैं।

सामाजिक अध्ययन कौशलों के कुछ उदाहरण हैं: यह पहचानना कि किस बात का प्रेक्षण करना है, प्रेक्षण करना, प्रेक्षण का विश्लेषण करना, संरचनाएँ निर्मित करना, स्थितियों पर विचार करना आदि। हो सकता है कि ये कठिन और उच्च स्तर के कौशल प्रतीत हों, परन्तु छोटे बच्चे भी इन्हें प्रदर्शित करते हैं, उदाहरण के लिए तब, जब उनसे उनकी कक्षा या स्कूल का नक्शा बनाने को या कोई सर्वेक्षण करने को कहा जाता है। कौशल तथा अवधारणाएँ प्रायः साथ–साथ और सन्दर्भों के अनुसार विकसित होती हैं।

ऊपर सुझाए गए घटकों की जाँच करने के लिए अब हम एक उदाहरण लेते हैं।

मानव सभ्यता कैसे विकसित हुई?

मान लीजिए कि शिकार संग्रहण युग से वर्तमान समय तक मानव समाज का विकास समझना एक दिया गया कार्य है। इसके लिए यह जानकारी आवश्यक है कि मनुष्य पहले खेती करना नहीं जानते थे, वे समूहों में जानवरों का शिकार करते थे और फिर धीरे–धीरे वे औजारों का इस्तेमाल करने लगे। हमें यह भी जानना जरूरी है कि औजारों में धातु का इस्तेमाल, प्रमुख रूप से पत्थर के बेहतर विकल्प की तरह, बाद में आया। इसके लिए गुफाचित्रों में मौजूद जानकारी को इकट्ठा किया जा सकता है। अवधारणात्मक ढाँचे के लिए हमें ढेर सारी जानकारी की जरूरत होती है जिसे केवल प्रेक्षण और अनुभव से इकट्ठा नहीं किया जा सकता।

कौशल और क्षमताएँ ऐसे स्रोतों का पता लगाने, समझने और उपयोग करने के इर्द–गिर्द घूमती हैं जिनमें इन तत्वों के बारे में जानकारी होती है। इसमें साधारण पढ़ने की ऐसी सामग्री, जिसमें प्रेक्षण से प्राप्त आँकड़ों का विश्लेषण किया गया हो, या फिर मूल विवरणों की व्याख्या भी शामिल हो सकती है। इसलिए जहाँ सीधा प्रेक्षण आवश्यक न भी हो तब भी कौशलों के अन्य पक्ष जरूरी होते हैं। इनके लिए अनेक कौशल और योग्यताएँ आवश्यक होती हैं, लेकिन वे उन स्थूल रूप से प्रेक्षणीय सम्भावनाओं से भिन्न होती हैं जिनकी जरूरत विज्ञान से सम्बन्धित कार्यों के लिए होती है।

मानव समाज के विकास के इस विश्लेषण में शामिल अवधारणाएँ हैं: यांत्रिकी का बढ़ता हुआ उपयोग, उत्पादन की प्रकृति, शासन व्यवस्था, संसाधनों और अधिशेष का बँटवारा, व्यापार और वाणिज्य की प्रकृति आदि।

नैतिकशास्त्र के सिद्धान्तों में विकास को लम्बे समय तक चल सकने की दृष्टि से समझना, वितरण में असमानता से निपटना, ऐसी शासन व्यवस्था के सिद्धान्त जो न्यायपूर्ण और समतावादी हो, यांत्रिकी और विस्तृत व्यापार को उपयोग करने के फायदे और नुकसान आदि शामिल रहते हैं।

जब हम ज्ञान के अधिक व्यापक और अमूर्त रूप की ओर बढ़ते हैं तो इनमें से कुछ श्रेणियों में हम परस्पर व्याप्त क्षेत्रों और घटकों का अनुक्रम पाते हैं। जैसे–जैसे हम उच्च प्राथमिक कक्षाओं की ओर बढ़ते हैं – मूर्त चित्रों और वर्णनों से सीखने से दूर होना – तो अमूर्तीकरण और बच्चे के अनुभवों से दूरी बढ़ती जाती है। बच्चे से जो व्यापकीकरण करने और सम्बन्ध जोड़ने की अपेक्षा की जाती है वे भी अधिक जटिल हो जाते हैं।

ऐसे में तस्वीर की मूर्तता को बचाए रखने की आवश्यकता बनी रहती है।

द. दृष्टिकोण

जिन दृष्टिकोणों से कोई कक्षा में सामाजिक मुद्दों को उठाता है उसमें छिपा सवाल अत्यन्त परेशान करने वाला है। क्या समता और न्याय का आदर करना सीखने से उन स्थितियों में कुछ करने की अपेक्षा की जाती है जहाँ अन्याय और असमानता हो – चाहे इसका अर्थ बच्चे के घर या समुदाय में प्रत्यक्ष रूप से उपस्थित बातों का सामना करने से हो? यदि बच्चे अन्याय और असमानता की स्थितियों का अन्वेषण करते हैं तो क्या वे इन्हें बदलने के तरीकों और साधनों की भी चर्चा करते हैं? या, क्या उन्हें अपने को सिर्फ संविधान, उसके वायदों और संरचना तक ही सीमित रखना चाहिए, बिना इसका विश्लेषण किए कि वे यथार्थ में कैसे काम करते हैं? यह एक कठिन निर्णय है।

> *क्या समता और न्याय का आदर करना सीखने से उन स्थितियों में कुछ करने की अपेक्षा की जाती है जहाँ अन्याय और असमानता हो – चाहे इसका अर्थ बच्चे के घर या समुदाय में प्रत्यक्ष रूप से उपस्थित बातों का सामना करने से हो?*

वास्तविक स्थितियों से उठने वालों सवालों पर कक्षा में चर्चा करना आसान नहीं होता। विभिन्न पृष्ठभूमियों और सामाजिक–आर्थिक स्तरों से आए बच्चे ऐसे मुद्दों पर मात्र सैद्धान्तिक या अकादमिक ढंग से बहस नहीं कर सकते। असमानता, सामाजिक प्रभुत्व और लोकतंत्र के हनन के साथ लोगों और परिवारों के नाम जुड़े रहते हैं। इन सबके साथ व्यक्तिगत सम्बन्धों और उलझावों का बोझ भी होता है। स्कूली व्यवस्था की स्वाभाविक प्रवृत्ति टकराव और अप्रियता को टालने, असमानताओं को छिपाने तथा शान्ति और सद्भाव की वकालत करने की होगी। अच्छा नागरिक वह है जो अपनी स्थिति को शान्त भाव से स्वीकार कर लेता है और आशा करता है कि बेहतर कानून बनेंगे और अधिक प्रभावकारी ढंग से उन्हें लागू किया जाएगा। तर्क दिया जा सकता है कि यही किसी समाज के लिए सबसे अच्छा विकल्प है, लेकिन वास्तव में यह सिर्फ एक दृष्टिकोण है। इसके विपरीत दृष्टिकोण भी हैं।

भारत का संविधान एक न्यायपूर्ण और समतावादी समाज का वायदा करता है। परन्तु वह इसके विस्तार में नहीं जाता कि किस तरह के नागरिक और शासन व्यवस्था इसे साकार कर सकते हैं। इसलिए यह समझ विकसित करने में बच्चे की सहायता करना प्रारम्भिक स्कूली कार्यक्रम का लक्ष्य होना चाहिए। इसलिए सवाल यह है कि क्या हम बच्चों को वर्तमान परिस्थिति में सबसे अच्छे ढंग से सफल होने के लिए तैयार करते हैं? या क्या हम उन्हें सामाजिक प्रवाह की दिशा पर प्रश्न उठाने और जिन लक्ष्यों का वायदा किया गया था उनके लिए संघर्ष करने के लिए तैयार करते हैं?

इसलिए ऐसा कार्यक्रम जो बच्चों में न्याय और बराबरी की भावना निर्मित करने पर ध्यान केन्द्रित करता हो, और ऐसा कार्यक्रम जो समाजरूपी प्राचीन तालाब की निश्चलता को भंग न करते हुए शान्ति और सद्भाव पर ध्यान केन्द्रित करता हो, एक–दूसरे के विरोधाभासी होंगे और उनमें संघर्ष होगा।

बच्चा अपने परिवेश के साथ अनेक अनुभवों और क्रियाकलापों को लेकर स्कूल आता है। उसके पास अपना आदर किए जाने और अपना मूल्य समझे जाने की, तथा एक समूह का हिस्सा माने जाने की यादें होती हैं। पर साथ ही अलग रखे जाने की, दूसरों को दबाने की, या दूसरों के द्वारा दबाए जाने आदि की भी यादें होती हैं। इन अनुभवों ने उसका व्यवहार और मान्यताएँ गढ़ी होती हैं। इनके आधार पर और अपने मौन विश्लेषण के द्वारा उसने अपनी पहचान बनाई होती है। ऐसा कार्यक्रम विकसित करना जो सार्थक ढंग से इन अनुभवों और इस पहचान का उपयोग कर सके और उनके माध्यम से एक साझा दृष्टिकोण विकसित कर सके, आसान नहीं है। फिर, यह भी बहस का मुद्दा हो सकता है कि एक साझा दृष्टिकोण या व्यापक मान्यता ढाँचा वांछनीय भी है या नहीं। हमें यह बात ध्यान में रखना चाहिए कि अनेक परस्पर टकराने वाले वैश्विक दृष्टिकोण होते हैं, और यह साफ नहीं होता कि किस वैश्विक दृष्टिकोण की वकालत की जाना चाहिए। हम इस बात की उपेक्षा नहीं कर सकते कि राज्य अनेक प्रभुत्ववादी ताकतों द्वारा नियंत्रित होता है जो स्वयं भी बच्चे के दृष्टिकोण को ढालना चाहेंगे। इसलिए विषयवस्तु को और उसको पढ़ाए जाने के ढंग को निर्धारित करने का संघर्ष यहाँ काफी तीव्र होता है।

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि सामाजिक पहचान विकसित करने और पर्यावरण, सांस्कृतिक और इतिहास की व्याख्या करने के अनेक दृष्टिकोण हो सकते हैं। चुने गए दृष्टिकोण का निर्धारण मनुष्य के उसके समाज से माने गए सम्बन्ध, मनुष्यों के बीच के सम्बन्ध, और बच्चे कैसे सीखते हैं इसकी समझ के आधार पर होता है। करने और न करने वाली हिदायतों की कोई भी सूची जो चुनाव, विवेक और तार्किक विश्लेषण का अवसर नहीं देती, स्वीकार नहीं की जा सकती। इसलिए प्राथमिक स्कूलों में सामाजिक अध्ययन के बारे में विचार करते समय ध्यान में रखने वाली बातों में से एक है, उपदेशात्मक कार्यक्रम विकसित करने के जाल में उलझने से बचना।

इ. विषय की प्रकृति

क्या यह सामाजिक अध्ययन है या सामाजिक विज्ञान?

आम प्रचलित धारणा रही है कि वैज्ञानिक पद्धति ज्ञान और जीवन का बेहतर मार्ग सुलभ कराती है; यह भी कि गणितीय तर्क प्रणाली के साथ मिलकर यह मानवीय जीवन को तर्कसंगत बनाने के लिए एक समग्र समाधान बन जाती है। इसके परिणामस्वरूप सामाजिक अध्ययन क्षेत्रों का भी, वैज्ञानिक प्रत्यय जोड़कर, फिर से नामकरण कर दिया गया।

वैश्विक रूप से विज्ञान और यांत्रिकी की शक्ति, तथा प्रमाण–आधारित तर्कों और वैचारिक तर्क पद्धति के अचूक होने के विश्वास को ही समस्त ज्ञान के निर्माण का आधार माना गया। यह धारणा अध्ययन के सभी क्षेत्रों में घर कर गई, और इसके फलस्वरूप वैज्ञानिक दृष्टिकोण मूल्यवान हो गया। सामाजिक अध्ययन के अन्तर्गत आने वाले विभिन्न विषयों के अध्येताओं ने परिश्रमपूर्वक यह बताया कि किस तरह उनका विषय विज्ञान के निकट था और संज्ञानात्मक दृष्टि से उतना ही तर्कसंगत था।

परन्तु, जहाँ तर्कों और वैचारिक संरचनाओं के तर्कसंगत होने की आवश्यकता में कुछ भी गलत नहीं है, वहीं इस बात को ध्यान में रखना महत्वपूर्ण है कि मानव व्यवहार के कई पहलू सीधे–साफ विवेकपूर्ण विश्लेषण और तर्कशास्त्र के अनुरूप नहीं होते क्योंकि उनमें कई असंगतियाँ होती हैं। उदाहरण के लिए आस्था प्रणालियाँ कैसे निर्मित होती हैं, यह एक अत्यन्त महत्वपूर्ण प्रश्न है और इसकी जाँच–पड़ताल ऐसे तरीके से करना पड़ती है जिसे वैज्ञानिक नहीं कहा जा सकता।

> *फिर, यह भी बहस का मुद्दा हो सकता है कि एक साझा दृष्टिकोण या व्यापक मान्यता ढाँचा वांछनीय भी है या नहीं। हमें यह बात ध्यान में रखना चाहिए कि अनेक परस्पर टकराने वाले वैश्विक दृष्टिकोण होते हैं, और यह साफ नहीं होता कि किस वैश्विक दृष्टिकोण की वकालत की जाना चाहिए।*

प्राकृतिक विज्ञान की एक पद्धति होती है, उसका अपना तरीका होता है जिससे वह ज्ञान का वैध होना और विज्ञान के दायरे में होना स्वीकारता है। वैज्ञानिक प्रक्रिया के विभिन्न प्रकार के चरण हो सकते हैं लेकिन उनके आधारभूत सिद्धान्त समान होते हैं। और, ज्ञान को अन्तिम रूप से तब स्वीकार किया जाता है जब वह ऐसी भविष्यवाणियाँ करता है जिनकी पुष्टि की जा सके। लेकिन मानव व्यवहार की निपट परिवर्तनशीलता को ध्यान में रखते हुए, समाज के विविध पहलुओं, और उसके परिवर्तनों का पुनरावलोकन करने के लिए, प्रक्रियाओं की ऐसी व्यवस्था की आवश्यकता होती है जिसे सहज रूप से सामाजिक विज्ञान की पारिभाषिक शब्दावली में समाविष्ट नहीं किया जा सकता। विज्ञान के प्रतिकूल, मनुष्य या समाज तर्कसंगत, वस्तुनिष्ठ और प्रायोगिक रूप से एक समान नहीं होते। हमारे लिए स्वयं इस बात पर विचार करना अच्छा होगा कि क्या सामाजिक अध्ययन के विषयों में ज्ञान का मूल्यांकन करने के मानदण्ड, या यह स्वीकार करने के मानदण्ड कि कोई समझने योग्य विचार प्रतिपादित किया गया है, वे ही हो सकते हैं जो विज्ञान के विषयों में होते हैं।

> *विज्ञान के प्रतिकूल, मनुष्य या समाज तर्कसंगत, वस्तुनिष्ठ और प्रायोगिक रूप से एक समान नहीं होते। हमारे लिए स्वयं इस बात पर विचार करना अच्छा होगा कि क्या सामाजिक अध्ययन के विषयों में ज्ञान का मूल्यांकन करने के मानदण्ड, या यह स्वीकार करने के मानदण्ड कि कोई समझने योग्य विचार प्रतिपादित किया गया है, वे ही हो सकते हैं जो विज्ञान के विषयों में होते हैं।*

फ. कक्षा की प्रक्रियाएँ

खाप पंचायतों के प्रभुत्व वाले समाज में, विवाह करने की वैधानिक उम्र और विवाह करने की स्वतंत्रता पर स्कूल में चर्चा करना कठिन है। इसी प्रकार, बाजार की ताकतों के द्वारा संचालित अर्थव्यवस्था में हम किस प्रकार सार्थक ढंग से समता, नियंत्रण और संतोष की बात कर सकते हैं? इन चर्चाओं की विषयवस्तु के तनावों और निहितार्थों के कारण उनका स्कूल में किया जाना कठिन हो जाता है। इसके अलावा स्कूल के संस्थागत ढाँचे की विचारधारा का भी सवाल है, और इसका भी कि किस सीमा तक वह मुक्त चर्चा और वैचारिक जाँच–पड़ताल करने की अनुमति दे सकता है, खासतौर पर ऐसे विषयों पर जिनका बच्चों और उनके आसपास के वयस्कों के जीवन से सम्बन्ध हो।

हालाँकि कक्षा की प्रक्रियाओं की परिपूर्ण व्याख्या इस लेख के दायरे के बाहर होगी, पर हम निम्नलिखित पाँच प्रश्नों पर विचार करेंगे:

1. क्या प्राथमिक कक्षाओं में विज्ञान और सामाजिक विज्ञान को

एक ही दृष्टिकोण से समझा जा सकता है, विशेष रूप से यह देखते हुए कि दोनों संयुक्त रूप से 'पर्यावरण अध्ययन' के अन्तर्गत पढ़ाए जाते हैं?

2 क्या शिक्षण कार्यक्रम को मोटे तौर पर विद्यार्थियों के ज्ञान के आधार पर निर्मित किया जा सकता है?

3. आप विद्यार्थी के अनुभव पर विषय को, खासतौर से इतिहास में, कैसे निर्मित कर सकते हैं?

4. जहाँ बात बच्चे के लिए तात्कालिक टकराव वाले मुद्दे की हो तो शिक्षक सीमारेखा कहाँ खींचेंगे?

5. क्या पाठ्यक्रम के बारे में एक समेकित बहुविषयी दृष्टिकोण हो सकता है, या पृथक विषयों पर आधारित कार्यक्रम की आवश्यकता है?

क्या प्राथमिक कक्षाओं में विज्ञान और सामाजिक विज्ञान को एक ही दृष्टिकोण से समझा जा सकता है, विशेष रूप से यह देखते हुए कि दोनों संयुक्त रूप से 'पर्यावरण अध्ययन' के अन्तर्गत पढ़ाए जाते हैं?

एक स्तर पर, एक ऐसा दृष्टिकोण सम्भव है जिसमें परिकल्पनाएँ करना, सामाजिक पहलुओं का प्रेक्षण करना और उनमें नियमित संरचनाएँ खोजना शामिल हो, जैसा कि विज्ञान में किया जाता है। परन्तु इस 'वैज्ञानिक' पद्धति को आगे बढ़ाते हुए यह समझने के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता कि समाज कैसे विकसित और परिवर्तित होते हैं, कैसे मानव सभ्यताओं ने शिल्प कलाओं का इस्तेमाल करना सीखा, और इसका उनके लोगों के जीवन पर क्या प्रभाव पड़ा। इसी प्रकार, शासन की प्रणालियों और उनका किसी समाज के व्यक्तियों के लिए क्या मतलब होता है, इसकी विवेचना करना भी सम्भव नहीं है। सामाजिक गतिशीलता और परिस्थितियों की जटिलता के चलते, कारण तथा परिणाम के स्पष्ट सम्बन्धों को देख पाना मुश्किल होता है। इसके बजाय चीजें जैसी हैं उसका विवरण ही हम देख पाते हैं और उनमें अन्तर करने वाले सूक्ष्म भेदों को पकड़ पाते हैं।

> *सामाजिक अध्ययन के शिक्षण में निहित कठिनाइयों के साथ इस धारणा, कि वैज्ञानिक ज्ञान सर्वोपरि है, के गठजोड़ ने स्कूल में सामाजिक विषयों के व्यापक तौर पर शामिल किए जाने को हतोत्साहित किया है।*

जाहिर है कि प्राथमिक स्तर पर भी विज्ञान और सामाजिक विज्ञान के दृष्टिकोण भिन्न होंगे। सामाजिक अध्ययन के शिक्षण में निहित कठिनाइयों के साथ इस धारणा, कि वैज्ञानिक ज्ञान सर्वोपरि है, के गठजोड़ ने स्कूल में सामाजिक विषयों के व्यापक तौर पर शामिल किए जाने को हतोत्साहित किया है। यही कारण है कि ईवीएस में भी ध्यान बच्चों के जीवन–अनुभवों पर केन्द्रित न होकर सर्वेक्षण करने और नक्शे पर स्थानों को चिन्हित करने पर होता है।

क्या शिक्षण कार्यक्रम को मोटे तौर पर विद्यार्थियों के ज्ञान के आधार पर निर्मित किया जा सकता है?

कार्यक्रम के आरम्भ होते समय बच्चों के पास स्थानीय और व्यक्तिगत जानकारी होती है। यह जानते हुए हम उसका उपयोग ऐसी अधिक व्यापक अवधारणात्मक संरचनाएँ निर्मित करने के लिए करते हैं जो विद्यार्थी के अनुभव पर आधारित होती हैं और उससे जुड़ती हैं।

> *यदि कार्यक्रम बच्चे को कारण खोजने, अपने विचारों को व्यवस्थित करने और विकल्प चुनने का अवसर देता है तो बच्चे के व्यवहार के लिए उसके उपयोगी अर्थ होंगे। ऐसा कार्यक्रम बच्चे को इसकी प्रतीति कराएगा कि समाज क्या है और उससे कैसे जुड़ना चाहिए।*

बच्चे को उपलब्ध जानकारी विभिन्न रूपों में होती है। उसमें परिवार और सम्बन्धी, उसके गाँव का नाम और पास–पड़ोस के गाँव का नाम, पास में बहने वाली नदी, आसपास के पेड़ों, उगाई जाने वाली विभिन्न प्रकार की फसलों के नाम, बाजार कहाँ है, और वहाँ क्या बिकता है, आदि बातें शामिल रहती हैं।

जैसे–जैसे बच्चा बड़ा होता है उसे उपलब्ध जानकारी की मात्रा और उसका दायरा बढ़ते जाते हैं। जहाँ कुछ हद तक यह अपने आप होता है, वहीं सामाजिक अध्ययन के एक औपचारिक प्रयास को ऐसी जानकारी और ज्ञान को बच्चे को सुलभ कराना चाहिए जिस तक अन्यथा उसकी पहुँच नहीं होती। इसके लिए जरूरी होगा कि वह बारीकी से अवलोकन करे, जानकारी और आँकड़े इकट्ठा करे, प्रेक्षणों से व्यापक अवधारणाएँ बनाए और निष्कर्ष आदि निकाले। बच्चे को धीरे–धीरे बढ़ती हुई कठिनाई वाले कार्य करने के अवसर दिया जाना बहुत जरूरी है।

यदि कार्यक्रम बच्चे को कारण खोजने, अपने विचारों को व्यवस्थित करने और विकल्प चुनने का अवसर देता है तो बच्चे के व्यवहार के लिए उसके उपयोगी अर्थ होंगे। ऐसा कार्यक्रम बच्चे को इसकी प्रतीति कराएगा कि समाज क्या है और उससे कैसे जुड़ना चाहिए। वह आसपास की दुनिया में घट रही घटनाओं को समझने के तरीके भी सुझाएगा। बच्चे को कुछ विशेष सिद्धान्तों और सामाजिक आदर्शों का ज्ञान होना और उन पर सवाल उठाने में उसका सक्षम होना भी जरूरी है।

आप विद्यार्थी के अनुभव पर विषय को, खासतौर से इतिहास में, कैसे निर्मित कर सकते हैं?

अवधारणाओं के लिए विषयसूत्र और प्रारम्भिक बिन्दु चुनने के लिए अनेक लोक दृष्टियाँ हैं। इनमें सर्वोपरि तर्क है ज्ञात से अज्ञात की ओर बढ़ना, और इसका मतलब है जो बच्चे के आसपास है उससे दूर की चीजों की तरफ जाना। परन्तु बच्चे इतनी विविध प्रकार की पृष्ठभूमियों से आते हैं कि उनके कारण इसे सार्थक ढंग से करना कठिन हो जाता है। बच्चे के अनुभव का उपयोग यही हो सकता है कि जो वह जानता है उसे प्रकट करने में और उसका विश्लेषण करने में उसकी सहायता की जाए।

फिर भी, अनुभव के कुछ तत्व ऐसे होते हैं जिन्हें निश्चित रूप से कक्षा में उपयोग किया जा सकता है। जैसे अलग–अलग तरह के कारीगर क्या करते हैं, कौन से औजार और सामग्री इस्तेमाल करते हैं, गाँव में कौन–सी चीजें बाहर से आती हैं, गाँव से कौन–सी चीजें बाहर जाती हैं, लोग जलाऊ लकड़ी कहाँ से लाते हैं, उन्हें पानी कहाँ से मिलता है, त्यौहारों के दौरान लोग क्या करते हैं, आदि, ऐसे तमाम विषयों पर बातचीत इसमें शामिल हो सकती है। ये सब प्रेक्षणों के सहज विवरण होते हैं, परन्तु उनमें इनका आलोचनात्मक विश्लेषण जोड़ देने से ये बातें कठिन बन सकती हैं। इसका विश्लेषण करना आसान नहीं है कि क्यों कुछ लोगों के घर में ही जलस्रोत होता है जबकि दूसरों को पानी लाने बहुत दूर जाना पड़ता है, या कि क्यों कुछ लोगों को पास के जलस्रोतों से पानी लेने की अनुमति भी नहीं होती।

एक मुद्दा यह भी है कि पहले क्या हुआ इसके बारे में सोचने की बच्चे की शुरुआत आप कैसे करते हैं। पहले यह तय करना जरूरी है कि हम राजाओं, राजवंशों, उनके युद्धों के बारे में बात करना चाहते हैं, या कुछ और। यदि इस पर सहमति हो कि हमारे लिए कम से कम ऐसा ऐतिहासिक दृष्टिकोण होना जरूरी है जो समाज के वर्णन और लोगों के जीवन को महत्व देता हो तो हमें बच्चों से इस पर बातचीत करना शुरू करना चाहिए। निश्चित ही, हम बच्चों के वंशवृक्ष से, और उनके माता–पिता तथा बुजुर्ग पुराने समयों के बारे में क्या सोचते हैं, इससे प्रारम्भ कर सकते हैं। परन्तु, इससे कारणों और निहितार्थों की साफ–साफ पहचान नहीं बनती। इसके अलावा इससे ऐसे प्रश्न भी सामने नहीं आते जिनकी विवेचना की जा सके।

इसलिए प्रत्यक्ष अनुभवों का उपयोग करते हुए ऐतिहासिक समझ निर्मित करना कठिन हो जाता है। विश्लेषण के ढाँचे के लिए व्यापक जानकारी का आधार आवश्यक होता है जो बच्चे को तत्काल सुलभ नहीं होता। आँशिक रूप से इस कमी की पूर्ति सुनाई गई कहानियों के माध्यम से की जा सकती है – उदाहरण के लिए, उपलब्ध व्यक्तियों के द्वारा सुनाए गए सामान्य लोगों के जीवन के विवरण।

अब तक यह स्पष्ट हो गया होगा कि कक्षा की पढ़ाई, बच्चा जो पहले से जानता है सिर्फ उसके इर्द–गिर्द नहीं घूम सकती। उसके ज्ञान के दायरे का विस्तार करने के लिए नई जानकारी जोड़े जाने की जरूरत होती है। बच्चे के लिए बहुलता और विविधता को समझना भी बहुत महत्वपूर्ण है। उसे अपनी अवधारणात्मक संरचनाएँ निर्मित करते समय इन सभी बातों को ध्यान में रखना जरूरी है। ऐसा विश्लेषण केवल विस्तृत वर्णनों को सुलभ कराकर हो सकता है ताकि सीखने वाला दी गई जानकारी से एक खास सम्बन्ध स्थापित कर सके। इसके लिए उपलब्ध सन्दर्भ समृद्ध और सुसम्बद्ध होना चाहिए।

> *इसका तात्पर्य यह है कि जहाँ विचलित करने वाले प्रश्न पूछना सामाजिक अध्ययन की प्रकृति में ही निहित है, वहीं बहस को किस सीमा तक आगे ले जाना है, इसका उचित फैसला उसी समय केवल शिक्षक के द्वारा ही किया जा सकता है।*

यह सुनिश्चित करना भी महत्वपूर्ण होगा कि जानकारी ऐसे स्वरूप में दी जाए जो अपने आप में रोचक हो। उदाहरण के लिए, वह कहानी के रूप में या विस्तृत चित्रों के संग्रह के रूप में हो सकती है। इन चित्रों में दर्शाए जाने वाले उदाहरण बच्चे के अनुभवों के विभिन्न पहलुओं से जुड़ना चाहिए। ऐसे विवरणों से बच्चों को जोड़ने के कई तरीके हो सकते हैं, जिनमें उसके खुद के अनुभव से उनकी तुलना करना और इस पर सोचने और मनन करने के लिए प्रेरित करना शामिल हो सकते हैं। हमें उसकी कल्पना को बीते समय में ले जाने की जरूरत होती है, और इसके लिए ऐसे खूँटे चाहिए

जिनके सहारे पुराने कालों के ऐसे विवरण दिए जा सकें जो बच्चे के लिए रोचक हों।

जहाँ बात बच्चे के लिए तात्कालिक टकराव वाले मुद्दे की हो तो शिक्षक सीमा रेखा कहाँ खींचेंगे?

यह तय करना तुलनात्मक दृष्टि से आसान हो सकता है कि आप भौतिक भूगोल के साथ क्या करना चाहते हैं, हालाँकि इसमें भी अमूर्तीकरण का परिमाण और उन भूक्षेत्रों का आकार जिनके लिए ये महत्वपूर्ण होते हैं, अपने आप में भयावह होते हैं। यह जानना भी सम्भव है कि गाँव के बाजार का क्या करना है या हम मुद्रा के विचार का विश्लेषण कैसे करें। परन्तु जब हम अधिशेष का सम्बन्ध असमानता की सामाजिक गतिकी से जोड़ते हैं और सम्पत्ति के संचय का, निजी जायदाद के औचित्य का, या विरासत में मिली सम्पत्ति का विश्लेषण करते हैं, तो हम सामाजिक अध्ययन की ऐसी अवधारणाएँ निर्मित कर रहे होते हैं जो अलग–अलग लोगों के लिए अलग–अलग तरीके से काम करती हैं। हम एक साथ सामाजिक विचारों के निर्माता और उनके विश्लेषक, दोनों होते हैं।

इस प्रकार कक्षा में मुक्त बहस महत्वपूर्ण, और यहाँ तक कि व्यवस्था की निन्दा करने वाली भी हो सकती है। इसी प्रकार, यदि हम भूगोल का सम्बन्ध देशों की राजनीति से, और संसाधनों के वर्चस्व और वितरण से जोड़ें, तो गैर बराबरी के ऊपर प्रश्न उठाने और स्वीकार्यता को बढ़ावा देने के बीच के मध्य मार्ग की चुनौती बारीक हो जाती है।

ऐसे शिक्षकों के अनेक उदाहरण होते हैं जो यह तो मानते हैं कि बच्चों का 'दूसरे' के बारे में सोचना और समता तथा बहुलता के मुद्दों के प्रति संवेदनशील होना जरूरी है, परन्तु जो चर्चा को आगे बढ़ाने में अपने को असमर्थ महसूस करते हैं। सांस्कृतिक दृष्टिकोणों के मन में गहरे तक जमे होने से संकट की स्थिति में स्कूल के लिए हस्तक्षेप करना कठिन होता है। संवाद की शुरुआत करने के लिए किसी भी प्रयास को यह जानना चाहिए कि जब समुदायों के बीच अन्तर सबसे तीव्र होते हैं उस समय भावनाएँ भी उग्र होती हैं। साथ ही, जाति के पूर्वाग्रह और पहले से बन चुकी सापेक्षिक स्थितियाँ सिर्फ तर्कसंगत बहस का मामला नहीं हो सकतीं। और, किसी भी सूरत में, कक्षा में उपस्थित बच्चों के बीच में विपन्नता और भेदभाव के बारे में बात करना आसान नहीं होता।

इसका तात्पर्य यह है कि जहाँ विचलित करने वाले प्रश्न पूछना सामाजिक अध्ययन की प्रकृति में ही निहित है, वहीं बहस को किस सीमा तक आगे ले जाना है, इसका उचित फैसला उसी समय केवल शिक्षक के द्वारा ही किया जा सकता है।

क्या पाठ्यक्रम के बारे में एक समेकित बहुविषयी दृष्टिकोण हो सकता है, या पृथक विषयों पर आधारित कार्यक्रम की आवश्यकता है?

सामाजिक अध्ययन पढ़ाने के सिलसिले में हमें समेकित बनाम विषय–आधारित कार्यक्रमों की पड़ताल करना भी जरूरी है। समेकित कार्यक्रम के पक्ष में तर्क यह है कि बच्चा यथार्थ जगत को उसकी समग्रता में देखता है। इसलिए उसका विवरण भी अलग–अलग विषयों में बँटा होने के बजाय अखण्ड होना चाहिए। यह अतिवादी दृष्टिकोण ऐसा सुझाव देता हुआ प्रतीत होता है कि सम्पूर्ण कार्यक्रम अलग–अलग विषयों पर आधारित अवधारणाओं के स्पष्ट विकास के बजाय एक भेदरहित विचारसूत्र की तरह विकसित किया जाए।

एक विचारसूत्र–आधारित प्रस्तुतिकरण के चरम समर्थक अक्सर उन तत्वों को सुनिश्चित करना भूल जाते हैं जो प्राथमिक स्कूल को आगे के विकास से जोड़ते हैं। प्रारम्भिक स्कूलों के कार्यक्रमों का एक खास विषय–उन्मुख रुझान होता है जो माध्यमिक कक्षाओं की ओर बढ़ने पर बढ़ता जाता है। उदाहरण के लिए, इस बात की अपेक्षा साफ प्रतीत होती है कि बच्चे के ऊपरी प्राथमिक कक्षाओं में पहुँचने तक उसे नक्शे पढ़ने में समर्थ हो जाना चाहिए, और इसलिए बच्चे में यह योग्यता विकसित करने में मदद करने वाला कार्यक्रम होना चाहिए। लेकिन इसका अपने आप होना किसी एक या दूसरे विचारसूत्र पर नहीं छोड़ा जा सकता।

इसी प्रकार, इतिहास का महत्व समझने के लिए प्राथमिक स्कूल के बच्चे को काल की और उसे अपनी गतिविधि से जोड़ने की समझ होना चाहिए। किसी भी विकसित की जाने वाली विषयवस्तु का आधार यह निष्कर्ष होना चाहिए कि एक ऐतिहासिक समयरेखा का होना आपके लिए जरूरी है। इसके लिए विशेष विषय के अमूर्तीकरण के ऐसे स्तर की आवश्यकता होती है जो एक समेकित विचारसूत्र–आधारित पद्धति के अन्तर्गत विकसित नहीं होगा।

सामग्री का समेकित होना इसे बच्चे के लिए अधिक रोचक बना सकता है। परन्तु यह अपने आप में लक्ष्य नहीं हो सकता। यह पहचानना महत्वपूर्ण है कि औपचारिक शिक्षा बच्चे को समग्र यथार्थ को समझने और उसका कई दृष्टियों से विश्लेषण करने में मदद करने के लिए होती है, और इसके लिए पृथक विषयों पर आधारित कार्यक्रम आवश्यक है।

ग. अन्तिम टिप्पणी

इस लेख में उठाए गए सभी सवालों के उत्तर हमारे पास नहीं हैं; वे सामाजिक अध्ययन कार्यक्रम विकसित करने के संघर्ष का हिस्सा

हैं। पूरे शैक्षिक समुदाय में, खासकर प्राथमिक स्कूल शिक्षकों और पाठ्यपुस्तकों लेखकों के बीच सामाजिक अध्ययन के मुद्दों की व्यापक समझ विकसित करने की जरूरत है, ताकि वे कक्षा की गतिविधियों को उपयुक्त जानकारी से समृद्ध बना सकें।

लेखक की ओर से आभार

इस लेख को व्यवस्थित और सम्पादित करने में सहायता के लिए मैं अज़ीम प्रेमजी फाउण्डेशन के आनंद स्वामीनाथन और विद्या भवन की महिमा सिंह के प्रति हार्दिक कृतज्ञता व्यक्त करना चाहूँगा।

हृदयकांत दीवान (हार्डी) *एकलव्य के संस्थापक समूह के एक सदस्य हैं और वर्तमान में विद्या भवन सोसायटी, उदयपुर के संगठन सचिव एवं शैक्षणिक सलाहकार हैं। वे शिक्षा के क्षेत्र में विभिन्न पक्षों पर विभिन्न तरीकों से पिछले 35 वर्षों से कार्य कर रहे हैं। विशेष रूप से वे शैक्षणिक नवाचार तथा राज्य की शैक्षणिक व्यवस्थाओं में संशोधन के प्रयासों से जुड़े रहे हैं। उनसे इस vbsudr@yahoo.com ईमेल पते पर सम्पर्क किया जा सकता है।*

06 सामाजिक विज्ञान तथा राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा

इन्दु प्रसाद

सामाजिक विज्ञान के विषय अकादमिक अध्ययन के वे क्षेत्र हैं जो मानव समाज और जटिल मानवीय सम्बन्धों के विभिन्न पहलुओं का अन्वेषण करते हैं। एक न्यायपूर्ण तथा शान्तिपूर्ण समाज हेतु आधार निर्मित करने के लिए सामाजिक विज्ञान विषयों के दृष्टिकोण और जानकारी अपरिहार्य हैं। सामाजिक विज्ञान के दायरे में समाज की विविध चिन्ताएँ आती हैं, और इसकी व्यापक विस्तार वाली विषयवस्तु इतिहास, भूगोल, राजनीति विज्ञान, अर्थशास्त्र, समाजशास्त्र और मानवशास्त्र आदि से ली जाती है।

राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा (नेशनल करिकुलम फ्रेमवर्क–एनसीएफ) कहती है कि सामाजिक विज्ञानों का अध्ययन विद्यार्थियों को परस्पर अधिक निर्भर होते जा रहे संसार से तालमेल बिठाने के लिए आवश्यक सामाजिक, सांस्कृतिक और विश्लेषणात्मक कौशल प्रदान करता है।

सामाजिक विज्ञानों पर मानवीय मूल्यों – जैसे कि, स्वतंत्रता, भरोसा, परस्पर सम्मान और विविधता के लिए आदर भाव का गहरा बोध – को निर्मित करने की जिम्मेदारी होती है। सामाजिक विज्ञान के शिक्षण का लक्ष्य विद्यार्थियों में एक समालोचनात्मक नैतिक और मानसिक ऊर्जा उत्पन्न करना होना चाहिए जिससे वे इन मूल्यों के लिए खतरा बनने वाली सामाजिक ताकतों के प्रति जागरूक बनें। जिन विषयों से मिलकर सामाजिक विज्ञान बनता है उनकी अपनी विशिष्ट पद्धतियाँ होती हैं जिनको देखते हुए उनके बीच में सीमारेखाओं का बना रहना उचित प्रतीत होता है। पर इसके साथ ही, जहाँ भी अन्तरविषयी दृष्टिकोण सम्भव हों उन्हें भी दर्शाया जाना चाहिए। विद्यार्थियों को योग्य बनाने वाली पाठ्यचर्या के लिए उसमें ऐसे विषयसूत्रों का समावेश करने की जरूरत है जो बहुविषयी सोच में सहायक हों।

एनसीएफ के अनुसार सामाजिक विज्ञान की विषयवस्तु का लक्ष्य परिचित सामाजिक यथार्थ का समालोचनात्मक अन्वेषण करने और उसके बारे में प्रश्न द्वारा विद्यार्थियों की चेतना को ऊपर उठाना होना चाहिए। इसमें विशेष रूप से विद्यार्थियों के अपने जीवन–अनुभवों से जुड़े नए आयामों और नई चिन्ताओं को जोड़ने की बहुत सम्भावनाएँ होती हैं। इसलिए सामग्री को चुनना और उसे ऐसी अर्थपूर्ण पाठ्यचर्या के रूप में व्यवस्थित करना जो विद्यार्थियों को समाज की समालोचनात्मक समझ विकसित करने में सक्षम बनाए, एक चुनौतीपूर्ण कार्य है।

सामाजिक विज्ञान के 'अनुपयोगी' विषय होने की आम धारणा के प्रति एनसीएफ सचेत है। कक्षा में इसकी पढ़ाई की प्रक्रिया आत्महीनता के इस बोध से ग्रस्त रहती है, और शिक्षक तथा विद्यार्थी, दोनों ही इसकी विषयवस्तु को समझने के प्रति उदासीन रहते हैं। स्कूल की पढ़ाई के प्रारम्भिक चरणों से ही

> *बिना समझे जानकारी को सिर्फ याद रखने के बजाय अवधारणाओं को तथा सामाजिक, राजनैतिक वास्तविकताओं का विश्लेषण करने की योग्यता को विकसित करने पर जोर दिया जाना चाहिए।*

विद्यार्थियों को प्रायः यह संकेत दिया जाता है कि प्राकृतिक विज्ञान सामाजिक विज्ञानों से 'श्रेष्ठ' होते हैं, और इस कारण वे 'मेधावी' विद्यार्थियों के लिए होते हैं। ऐसा माना जाता है कि सामाजिक विज्ञान केवल जानकारी प्रदान करते हैं और पाठ्यसामग्री पर केन्द्रित होते हैं।

इसलिए विषयवस्तु को परीक्षाओं के लिए रटे जाने वाले तथ्यों की कतार लगाने की बजाय अवधारणात्मक समझ पर केन्द्रित रहने की आवश्यकता है। बिना समझे जानकारी को सिर्फ याद रखने के बजाय अवधारणाओं को तथा सामाजिक, राजनैतिक वास्तविकताओं का विश्लेषण करने की योग्यता को विकसित करने पर जोर दिया जाना चाहिए। इस बात को पहचानना भी जरूरी है कि सामाजिक विज्ञानों में भी वैज्ञानिक जाँच पड़ताल की उतनी ही गुँजाइश होती है जितनी प्राकृतिक तथा भौतिक विज्ञानों में होती है। साथ ही यह भी दर्शाए जाने की जरूरत है कि सामाजिक विज्ञानों के द्वारा उपयोग की जाने वाली विधियाँ किस प्रकार प्राकृतिक और भौतिक विज्ञानों से भिन्न होते हुए भी उनसे घटिया स्तर की कतई नहीं होतीं।

एनसीएफ **ज्ञानार्जन के दृष्टिकोण में एक बुनियादी बदलाव** प्रस्तावित करता है, जिसके अनुसार :

- पाठ्यपुस्तक जानकारी का एकमात्र स्रोत होने के बजाय पाठ्यपुस्तक की भूमिका मुद्दों को समझने का एक खास तरीका सुझाने की हो।
- अतीत और उसके भी अतीत की 'मुख्यधारा' के विवरण को

बदलकर उसमें और अधिक समूहों और क्षेत्रों को शामिल किया जाए।

- उपयोगितावाद के बजाय समतावाद को अपनाया जाए।
- पाठ्यपुस्तक को एक बन्द बक्से की तरह न देखकर उसे एक गतिशील दस्तावेज की तरह देखा जाए।

यह परिवर्तन इसलिए सुझाया गया है ताकि भारतीय राष्ट्र की अनेक प्रकार से की गई ऐसी कल्पनाओं को समाहित किया जा सके जिनमें राष्ट्रीय दृष्टिकोण को स्थानीय सन्दर्भों से जोड़कर उसे सन्तुलित बनाने की आवश्यकता को ध्यान में रखा गया हो। इसके साथ ही, भारत के इतिहास को शेष विश्व से पृथक मानकर नहीं पढ़ाया जाना चाहिए, बल्कि उसे संसार के अन्य भागों में घट रही घटनाओं से जोड़ा जाना चाहिए। एक विषय के नाम की तरह नागरिक शास्त्र के स्थान पर राजनीति विज्ञान का उपयोग करने का सुझाव दिया गया है। भारतीय स्कूली पाठ्यचर्या में नागरिक शास्त्र का प्रवेश औपनिवेशिक दौर में अँग्रेजी राज के खिलाफ भारतीयों में बढ़ रही 'विद्रोह' की भावना की पृष्ठभूमि में हुआ था। आज्ञापालन और निष्ठा पर जोर देना नागरिक शास्त्र के प्रमुख तत्व थे। पर, राजनीति विज्ञान नागरिक समाज को ऐसा क्षेत्र मानता है जो संवेदनशील, जाँचने–परखने वाले, विचारवान और रूपान्तरकारी नागरिक बनाता है।

लिंगभेद के मुद्दों के समाधान के लिए यह जरूरी है कि स्त्रियों के दृष्टिकोणों को किसी भी ऐतिहासिक घटना या समसामयिक चिन्ताओं पर होने वाली चर्चा में अनिवार्य रूप से शामिल किया जाए। इसके लिए ज्ञानार्जन के दृष्टिकोण को उन पितृसत्तात्मक पूर्वधारणाओं से हटाना आवश्यक है जो अधिकांश वर्तमान सामाजिक अध्ययन का आधार हैं। बच्चों की स्वास्थ्य सम्बन्धी चिन्ताओं पर तथा किशोरावस्था के दौरान होने वाले परिवर्तनों (जैसे माता पिता, हमउम्र साथियों, विपरीत लिंगियों और व्यापक तौर पर वयस्कों के संसार के साथ बदलते हुए सम्बन्ध) पर भी समुचित विचार किए जाने की जरूरत है। मानवाधिकारों की अवधारणा को अब वैश्विक सन्दर्भ में देखा जाता है, तथा एनसीएफ की अनुशंसा है कि बच्चों को उनकी उम्र के अनुकूल तरीके से सार्वभौमिक मूल्यों से परिचित कराया जाए।

एनसीएफ की दृष्टि में सामाजिक विज्ञानों के अध्ययन से बच्चों में निम्नलिखित **क्षमताएँ** विकसित होना चाहिए :

- उस समाज को समझना जिसमें वे रहते हैं।
- समाज को विभिन्न तरीकों से रूपान्तरित करने और उसकी दिशा बदलने का प्रयास कर रही ताकतों को समझना।
- भारतीय संविधान में स्थापित मूल्यों का महत्व समझना।
- बड़े होकर समाज के सक्रिय, जिम्मेदार और विचारवान सदस्य बनना।
- विभिन्न मतों, जीवनशैलियों तथा सांस्कृतिक रिवाजों का आदर करना सीखना।
- दूसरों से मिले विचारों, संस्थाओं और रिवाजों पर सवाल उठाना और उन्हें जाँचना परखना।
- पढ़ने की आनन्ददायक सामग्री देकर उन्हें पढ़ने में आनन्द लेना सिखाना।
- ऐसी गतिविधियों में भाग लेना जो सामाजिक और जीवन सम्बन्धी कौशलों के विकसित करने में उनकी मदद करें।

विभिन्न स्तरों पर सामाजिक विज्ञानों के शिक्षण के एनसीएफ में वर्णित **लक्ष्य** :

1. प्राथमिक स्तर

- प्रेक्षण, पहचान और वर्गीकरण करने के कौशल विकसित करना।
- प्राकृतिक और सामाजिक परिवेशों के अन्तर्सम्बन्धों पर जोर देते हुए बच्चों में पर्यावरण की समग्र तथा समेकित समझ विकसित करना।
- बच्चों को सामाजिक मुद्दों के प्रति संवेदनशील बनाना और उनमें भिन्नता और बहुलता के लिए आदर भाव विकसित करना।

2. उच्च प्राथमिक स्तर

- मानव जाति तथा अन्य जीवनधारियों के आवास के रूप में पृथ्वी की समझ विकसित करना।
- विद्यार्थियों से अपने क्षेत्र, राज्य, और देश का वैश्विक सन्दर्भ में अध्ययन करने की शुरुआत करवाना।
- संसार के अन्य भागों में घट रही समकालीन घटनाओं का सन्दर्भ देते हुए विद्यार्थियों से भारत के अतीत के अध्ययन की शुरुआत करवाना।
- देश की सामाजिक एवं राजनैतिक संस्थाओं और प्रक्रियाओं के काम करने और उनकी गतिकी से विद्यार्थियों का परिचय करवाना।

इस स्तर पर, सामाजिक विज्ञानों के विभिन्न अध्ययन क्षेत्रों – जिनकी सामग्री इतिहास, भूगोल, राजनीति विज्ञान और अर्थशास्त्र से ली जाएगी – से विद्यार्थियों का परिचय करवाना।

3. माध्यमिक स्तर

निम्न उद्देश्यों के लिए विश्लेष्णात्मक और अवधारणात्मक कौशल विकसित करना :

- आर्थिक और सामाजिक परिवर्तन तथा विकास की प्रक्रियाएँ समझना।
- सामाजिक और आर्थिक मुद्दों तथा चुनौतियों – जैसे गरीबी, बालमजदूरी, विपन्नता, निरक्षरता आदि – की समालोचनात्मक जाँच पड़ताल करना।
- एक लोकतांत्रिक और धर्मनिरपेक्ष समाज में नागरिकों के अधिकार और जिम्मेदारियाँ समझना।
- संवैधानिक दायित्वों के पालन में राज्य की भूमिकाएँ और जिम्मेदारियाँ समझना।
- विश्व की अर्थव्यवस्था और राज्यतंत्र के सन्दर्भ में भारत में परिवर्तन और विकास की प्रक्रियाएँ समझना।
- स्थानीय समुदायों के पर्यावरण से सम्बन्धित अधिकारों, संसाधनों के विवेकपूर्ण इस्तेमाल और साथ ही प्राकृतिक पर्यावरण के संरक्षण की आवश्यकता का महत्व समझना।

माध्यमिक स्तर पर, सामाजिक विज्ञानों में इतिहास, भूगोल, राजनीति विज्ञान और अर्थशास्त्र के तत्व शामिल रहते हैं। यहाँ ध्यान प्रमुख रूप से समकालीन भारत पर होना चाहिए।

4. उच्चतर माध्यमिक स्तर

- अपनी अभिरुचियाँ खोजने और अपनी योग्यताएँ आँकने में विद्यार्थियों की सहायता करना ताकि वे अपने लिए विश्वविद्यालय के उपयुक्त पाठ्यक्रम और/ या कार्यक्षेत्र चुन सकें।
- विभिन्न अध्ययनक्षेत्रों में ज्ञान के उच्च स्तरों को जानने समझने के लिए उनको प्रोत्साहित करना।
- कल के नागरिकों में समस्याएँ हल करने की क्षमताओं और सृजनात्मक सोच को बढ़ावा देना।
- अलग–अलग विषयों में आँकड़ों और जानकारियों को इकट्ठा करने और उनको व्यवस्थित करने के विभिन्न तरीकों से विद्यार्थियों का परिचय करवाना, और निष्कर्षों पर पहुँचने में उनकी सहायता करना।
- इस प्रक्रिया में नई अन्तर्दृष्टियों और ज्ञान का सृजन करना।

एनसीएफ के अनुसार, सामाजिक विज्ञानों के शिक्षण में ऐसी विधियाँ अपनाई जाना जरूरी हैं जो सृजनात्मकता, सौन्दर्यबोध और समालोचनात्मक दृष्टिकोणों को पैदा करती हैं, साथ ही समाज में हो रहे परिवर्तनों को समझने के लिए विद्यार्थियों को अतीत और वर्तमान के बीच सम्बन्धों को जोड़ने में समर्थ बनाती हैं। समस्याओं का समाधान खोजना, नाट्य रूपान्तरण करना और विभिन्न स्थितियों के स्वांग रचना, ये ऐसी कुछ गतिविधियाँ हैं जिनका उपयोग किया जा सकता है। शिक्षण में तस्वीरों, लेखाचित्रों, चार्टों और नक्शों तथा पुरातात्विक और भौतिक संस्कृतियों की अनुकृतियों समेत दृश्य–श्रव्य सामग्रियों का इस्तेमाल करना चाहिए।

सीखने की प्रक्रिया को सहभागितापूर्ण बनाने के लिए सिर्फ जानकारी प्रदान करने की परम्परा से हटकर चर्चा और बहस पर जोर देने की जरूरत है। सीखने की यह पद्धति शिक्षक और विद्यार्थी दोनों को सामाजिक वास्तविकताओं से जीवन्तता के साथ जोड़े रखेगी। व्यक्तियों और समुदायों के जिए गए अनुभवों के माध्यम से विद्यार्थियों को अवधारणाएँ समझाई जाना चाहिए। यह देखा गया है कि कक्षा के सन्दर्भों में सांस्कृतिक, सामाजिक और वर्गों के भेद खुद ही अपने पक्षपात, पूर्वाग्रह और रवैये पैदा करते हैं। इसलिए शिक्षण पद्धति में खुलापन होना जरूरी है। शिक्षकों को कक्षा में सामाजिक यथार्थ के विभिन्न आयामों की चर्चा करना चाहिए, और धीरे–धीरे स्वयं अपना और अपने विद्यार्थियों का आत्मबोध प्रगाढ़ करने की ओर बढ़ना चाहिए।

पाठ्यपुस्तकों और कक्षाओं में विषयवस्तु, भाषा और तस्वीरें समझ में आने वाली, लिंगभेद के प्रति संवेदनशील और हर प्रकार की सामाजिक असमानताओं के प्रति आलोचनात्मक होना चाहिए। पाठ्यपुस्तकें आगे की जाँच पड़ताल के रास्ते खोलती हुई दिखना चाहिए और विद्यार्थियों को पाठ्यपुस्तकों के पार जाकर आगे और पढ़ने एवं प्रेक्षण करने के लिए प्रोत्साहित किया जाना चाहिए।

इन्दु प्रसाद *अज़ीम प्रेमजी फाउण्डेशन, बंगलौर में एकेडमिक्स एण्ड पेडागोजी प्रमुख हैं। इसके पहले उन्होंने तमिलनाडू और कर्नाटक के विशेष/सर्वसुलभ स्कूलों में 15 वर्ष से भी अधिक समय तक अध्यापिका के रूप में विभिन्न प्रकार की तंत्रिका चुनौतियों से जूझ रहे बच्चों के साथ काम किया है। उनसे इस indu@azimpremjifoundation.org ईमेल पते पर सम्पर्क किया जा सकता है।*

खण्ड - ब

कुछ परिप्रेक्ष्य

07 सामाजिक विज्ञान अध्ययन – क्या सही है और क्या गलत?

विमला रामचन्द्रन

जब मुझसे सामाजिक विज्ञान शिक्षण की मौजूदा स्थिति पर अपने विचार देने को कहा गया और पूछा गया कि आखिर क्यों हमारे स्कूली तंत्र का पूरा ध्यान बच्चों को कोई एक तय सही उत्तर बता देने, एक तय सही पद्धति बता देने और दुनिया को देखने का एक तय सही ढंग सिखा देने पर है – तो मैंने मुड़कर खुद अपने स्कूली दिनों को याद किया। हाँ, आज अध्यापन का ढंग निश्चित ही एकआयामी हो गया है, बच्चों से बस यह अपेक्षा होती है कि वे तथ्यों को रटकर परीक्षा में उत्तर पुस्तिकाओं में वैसे का वैसा उँड़ेल दें। कई युवाओं को नागरिक शास्त्र व इतिहास भयानक रूप से उबाऊ लगते हैं। वे यह स्वीकार करते हैं कि परीक्षा हॉल से निकलते ही वे याद की हुई सारी बातें भूल जाते हैं। ऐसा क्यों है? क्या स्थिति इससे कुछ भिन्न हो सकती है?

और फिर मैं इस सोच में पड़ गई कि कैसे और क्यों हममें से कुछ लोग प्रश्न पूछते हुए, तार्किक स्पष्टीकरणों की माँग करते हुए और अन्धविश्वासों तथा पूर्वाग्रहों को चुनौती देते हुए बड़े हुए। हालाँकि, परिवार और मित्र समूह की हमारे जीवनमूल्यों और आचरणों को निर्धारित करने में महती भूमिका होती है, पर यह तथ्य लम्बे समय से स्वीकृत है कि दुनिया के प्रति हमारा नजरिया विकसित करने में स्कूल महत्वपूर्ण भूमिका अदा कर सकते हैं। स्वतंत्रता–पूर्व काल में समाज सुधारकों द्वारा स्थापित किए गए स्कूलों से बड़ा फर्क आया। वैसे ही आज भी हमारे स्कूल का हमारे व्यक्तित्व के विकास में बहुत बड़ा हाथ होता है। यह एक ज्ञात तथ्य है कि हम क्या और कैसे पढ़ते हैं, किस तरह के शिक्षक हमें पढ़ाते हैं, पाठ्यक्रम किस तरह पढ़ाया जाता है, इन सबका न सिर्फ हम क्या सीखते हैं, बल्कि कैसे सीखते हैं और खुद को अपने पर्यावरण के साथ कैसे जोड़ते हैं, इन सभी बातों पर प्रभाव पड़ता है।

मैं त्रिवेन्द्रम, केरल स्थित पैटम केन्द्रीय विद्यालय में पढ़ रही थी। यह 1968 की बात है। हम शिमला से आए ही थे और केन्द्र सरकार के एक अधिकारी के बच्चे होने की वजह से हम किसी भी शहर में बमुश्किल दो साल ही रुक पाते थे। स्कूल के एक शिक्षक, जिनका नाम मुझे याद नहीं आ रहा, का अमेरिका में चल रहे नागरिक अधिकार आन्दोलन से बहुत भावनात्मक जुड़ाव था। वे मार्टिन लूथर किंग के प्रति बड़ी श्रद्धा रखते थे और मार्च 1968 में उस महान नेता की हत्या हो जाने पर वे बहुत विचलित हो गए थे। उन्होंने ही हमें उनके उस ऐतिहासिक भाषण – मेरा एक सपना है – से परिचित कराया और हममें से कई बच्चों ने उस भाषण को सुनाना सीख लिया था। एक दिन उन्होंने हमें पूजनीय आध्यात्मिक गुरु और समाज सुधारक श्री नारायण गुरु (1855–1922) के बारे में बताया जिन्होंने जातिवाद के विरुद्ध विद्रोह करके स्वतंत्रता तथा सामाजिक समानता के नए मूल्यों का प्रचार किया था। शिक्षक ने हम बच्चों से पूछा कि क्या हम लोग इन दो महान सुधारकों का तुलनात्मक अध्ययन करना चाहेंगे।

हममें से कुछ तैयार हो गए, हालाँकि हमें अमेरिका के नागरिक अधिकार आन्दोलन या केरल के समाज सुधार आन्दोलन के बारे में ज्यादा कुछ पता नहीं था।

हमने नागरिक अधिकार आन्दोलन, मार्टिन लूथर किंग की हत्या और अमेरिका में समानता व न्याय के लिए हुए संघर्ष के बारे में पढ़ना शुरू किया। वे सहपाठी जो मलयालम पढ़ सकते थे, उन्होंने केरल के समाज सुधार आन्दोलन व श्री नारायण गुरु के बारे में पढ़ा और फिर बाकी की कक्षा को भी बताया। हमने अखबारों की कतरनें बटोरी, ब्रिटिश काउंसिल की लाइब्रेरी गए, सार्वजनिक पुस्तकालय में गए और लोगों से बात की। फिर हम आश्रम गए, व्याख्यान सुने, इधर–उधर घूमे और लोगों से चर्चा की। हम सब – विभिन्न भाषाएँ बोलने वाले अलग–अलग जातियों, धर्मों के बच्चे – साथ में रहते थे और साथ ही खाना खाते थे (केन्द्रीय विद्यालय बहुमेल संस्कृति का एक ऐसा अद्भुत स्थान था जहाँ सभी सामाजिक–धार्मिक बन्धन पिघल जाते थे, वहाँ देशभर के बच्चे पढ़ते थे)। इन दो महान व्यक्तित्वों के बारे में लिखने के लिए विद्यार्थियों ने छोटे–छोटे समूहों में काम किया। उसके बाद हमने अपनी कक्षा में एक किस्म की प्रदर्शनी लगाई। वे मेरे विद्यार्थी जीवन के सबसे बढ़िया दो हफ्ते थे।

एक पारम्परिक ब्राम्हण परिवार से ताल्लुक होने के कारण मुझे समाज में व्याप्त जाति–आधारित असमानता के बारे में पर्याप्त समझ व जानकारी नहीं थी। इसके बारे में मैंने तमिलनाडु में चल रहे हिन्दू विरोधी आन्दोलन के दौरान पहली बार सुना (जब मैं आईआईटी मद्रास स्थित केन्द्रीय विद्यालय में पाँचवी कक्षा में पढ़ रही थी) और मुझे याद है कि बड़े बुजुर्ग उस वक्त यह दलील दे रहे थे कि अब ब्राम्हणों का राज्य में कोई भविष्य नहीं है अतः हमें अँग्रेजी और हिन्दी अच्छे से सीखना चाहिए। कुछ दूसरे लोग इस बात से असहमत थे और वे ऐतिहासिक अन्याय की बात कर रहे थे। ये बहसें बहुत आवेगपूर्ण हुआ करती थीं और बच्चों से अक्सर इस हिदायत के साथ बाहर जाकर खेलने को कह दिया जाता था कि वे कान लगाकर बड़ों के बीच हो रही बातचीत को न सुनें।

> *मेरे मित्रों में और मुझमें जो सबसे बड़ा परिवर्तन आया वह यह कि हमने सवाल खड़े करना तथा रोजमर्रा के अनुभवों पर विचार करना शुरू कर दिया। हमने 1968–1969 के खाद्य संकट पर तथा समाज में व्याप्त अशान्ति और घोर असमानता पर चर्चाएँ कीं।*

दो–हफ्ते के इस छोटे से प्रोजेक्ट ने जाति, नस्ल, सामाजिक भेदभाव तथा उसमें व्याप्त असमानता एवं अन्याय की काली छाया के बारे में मेरी आँखें खोल दीं। प्रोजेक्ट के पूरा होने पर मैंने पारम्परिक रिवाजों तथा भेदभाव के सूक्ष्म और खुले रूपों पर सवाल उठाने शुरू कर दिए। साथ ही खास ध्यान देते हुए अलग–अलग समुदायों व पृष्ठभूमियों के बच्चों के साथ मित्रता की। इसके अलावा मैं अपने दोस्तों के घर खाना खाने का भी खास ध्यान रखा करती थी। मेरे मित्रों में और मुझमें जो सबसे बड़ा परिवर्तन आया वह यह कि हमने सवाल खड़े करना तथा रोजमर्रा के अनुभवों पर विचार करना शुरू कर दिया। हमने 1968–1969 के खाद्य संकट पर तथा समाज में व्याप्त अशान्ति और घोर असमानता पर चर्चाएँ कीं। कुछ ही हफ्तों की छोटी से अवधि में हमारी दुनिया पूरी तरह उलट गई थी। उस समय यह कोई बड़ा भारी अनुभव नहीं लगा था, पर फिर कई साल बाद वयस्क जीवन में पहुँचने के बाद मुझे अहसास हुआ कि जिस किस्म की शिक्षा मैंने पाई उसका मुझपर कितना गहरा असर हुआ। मैंने यह भी अहसास किया कि हमारे शिक्षक ने हमें कभी यह नहीं बताया कि क्या तलाशें और क्या न तलाशें, या किस पर यकीन करें। सबसे महत्वपूर्ण बात यह थी कि उन्होंने कभी हमको जाति या धर्म पर कोई व्याख्यान नहीं दिया। हमारे शिक्षक ने हमें यह मौका दिया कि हम खुद स्थितियों की जाँच–पड़ताल करें और फिर स्वयं अपने निष्कर्ष पर पहुँचें।

कई दशकों बाद मुझे भीम संघ नामक कामकाजी बच्चों के कर्नाटक के एक संगठन के कार्य पर दस्तावेज तैयार करने का सौभाग्य मिला। दक्षिण कन्नड़ा स्थित कुण्डापुर की मेरी यात्रा के दौरान, मुझे मक्काला पंचायत (बाल पंचायत) के बारे में पता चला। 18 वर्ष तक की आयु वाले बच्चे पंचायत स्तर पर खुद अपने प्रतिनिधि चुनते हैं और बाल पंचायत का गठन करते हैं। वयस्क लोगों की पंचायत औपचारिक प्रक्रियाओं का पालन करते हुए चुनावों का संचालन करती है, जैसे निर्वाचन अधिकारी के समक्ष नामांकन दाखिल करना, प्रचार और फिर चुनाव। यह कार्यक्रम लोकतांत्रिक मूल्यों तथा प्रथाओं के बारे में बच्चों को अनुभवजन्य शिक्षा देने के लिए तैयार किया गया था। बाल पंचायत के चुनावों के बाद, एक टास्क फोर्स (कार्य बल) का गठन किया जाता है। यह एक प्रतिनिधिक मंच होता है जिसमें सभी स्थानीय सरकारी अधिकारी, निर्वाचित प्रतिनिधि और मक्काला पंचायत के बच्चे शामिल होते हैं। यह मंच सरकार के साथ निरन्तर संवाद बनाए रखने और सहयोग करने के उद्देश्य से बहुत महत्वपूर्ण है। इसकी शुरुआत के दौर से ही, इस मंच पर बच्चों की भिन्न–भिन्न तरह की ढेरों समस्याओं की चर्चा की गई और उन्हें हल किया गया : उदाहरण के लिए, स्कूल जाने के रास्ते में पड़ने वाले मौसमी नाले पर पैदल पुल बनाना, घरेलू कामों हेतु बच्चों को न रखने के लिए समुदाय को राजी करना, होटलों पर काम करने के लिए बच्चों के अपने गाँवों से बाहर जाने के चलन को खत्म करना और ऐसे स्थानों पर वैकल्पिक स्कूलों की स्थापना करना जहाँ पास में कोई स्कूल न हो, इत्यादि। स्थानीय सरकार के साथ जुड़ने से इस कार्यक्रम के लिए प्राथमिक स्कूल शिक्षकों के साथ काम करने का मौका पैदा हुआ है ताकि शिक्षा की गुणवत्ता को बेहतर किया जा सके और साथ ही स्कूलों को बच्चों के लिए एक आनन्दायक स्थान के रूप में बदला जा सके। (विमला रामचन्द्रन, गैटिंग चिल्ड्रन बैक टू स्कूल, सेज पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली 2003)

मैंने देश के दूसरे भागों में भी बाल पंचायतों के माध्यम से इसी तरह के कार्य होते देखे हैं। मक्काला पंचायत के बारे में बहुत महत्वपूर्ण बात यह थी कि वह शिक्षा, लोकतांत्रिक प्रक्रियाओं के बारे में सीखने, और समानता एवं निष्पक्ष व्यवहार जैसे मूल्यों को बच्चों के मन में बैठाने जैसी बातों के साथ अभिन्न रूप से जुड़ी हुई थी। चुनावों का अनुभव लेना, संवाद के माध्यम से निर्णयों तक पहुँचना, एक दूसरे के सन्देह दूर करना, और समाज–देश को लेकर अलग–अलग दृष्टिकोण रखने वाले लोगों के साथ जीना व काम करना सीखना – ये सब पहलू बच्चों में लोकतांत्रिक मूल्य विकसित करने तथा दूसरों के लिए सम्मान पैदा करने हेतु सशक्त माध्यम थे।

बीते वर्षों में मैंने महिला समाख्या द्वारा संचालित कुछ महिला शिक्षण केन्द्रों (एमएसके) को भी इसी तरह की कार्यविधियाँ अपनाते हुए देखा है जहाँ लिंग सम्बन्ध, सामाजिक अन्याय, सामूहिक मंचों के माध्यम से सशक्तीकरण इत्यादि मुद्दे गहन शिक्षा कार्यक्रम के पाठ्यक्रम में गुंथे हुए होते हैं। निरन्तर (लैंगिक व शैक्षणिक मसलों के लिए बना नई दिल्ली स्थित एक केन्द्र) के विण्डो टू द वर्ल्ड (ग्रामीण महिलाओं के लिए पाठ्यक्रम तैयार करने के अनुभव के बारे में एक विश्लेष्णात्मक दस्तावेज, नई दिल्ली, नया संस्करण) शीर्षक से प्रकाशित एक दस्तावेज चरण दर चरण

यह दर्शाता है कि बांदा, उत्तर प्रदेश में एमएसके पाठ्यक्रम किस तरह विकसित हुआ।

हमारे पाठ्यक्रम की समस्या है कि वह विषय–प्रसंगों पर तो बहुत ज्यादा बल देता है पर सीखने की प्रक्रिया पर बहुत कम ध्यान देता है। विषय–प्रसंग की परवाह किए बगैर यदि अध्ययन प्रक्रिया हमें प्रेरित करे कि हम अपनी दुनिया को जाँचें–परखें, एक दूसरे से एवं आसपास के लोगों से चर्चा करें, खुद अपने परिवेश में इतिहास को खोजें और सबसे जरूरी बात, समूहों में काम करते हुए बहस करें, तर्कों को चुनौती दें, सवाल उठाएँ – तो इस तरह के अनुभव से हम सब (शिक्षक व बच्चे) ज्यादा समृद्ध हो सकेंगे।

लगभग चार दशक बाद मुझे दिल्ली एससीईआरटी द्वारा तैयार की गई नागरिक शास्त्र की पाठ्यपुस्तक को पढ़ने का मौका मिला। निरन्तर के मेरे मित्र व साथियों ने, जो उस पाठ्यपुस्तक की रचना में भागीदार थे, मुझे उसका प्रारूप दिखाया। वह पाठ्यपुस्तक परम्परागत पाठ्यपुस्तकों जैसी नहीं थी; उसमें शिक्षक को प्रोजेक्टों के माध्यम से बच्चों के साथ काम करने के लिए प्रोत्साहित किया गया था। उनको प्रेरित किया गया था कि वे अपने आसपास देखें और अपने पड़ोस और अपने शहर के बारे में जानें। मुझे याद है कि मैंने भी अपना अनुभव उनमें से कुछ लोगों के साथ बाँटा था।

मेरा सौभाग्य था कि इसी दौरान मुझे वर्ष में दो बार ऋषि वैली स्कूल (मदनापल्ले, आँध्र प्रदेश) जाने का मौका मिलता था और मैंने देखा कि कैसे इतिहास, नागरिक शास्त्र और तकरीबन सभी विषयों के प्रोजेक्ट–आधारित अध्ययन से विद्यार्थियों को पढ़ने, चर्चा करने व सोचने का मौका मिलता था। इससे बच्चों के दिमाग बिलकुल खुल जाते थे और वे प्रश्न पूछने के लिए प्रेरित होते थे। सबसे महत्वपूर्ण बात यह कि, पढ़ने–पढ़ाने की प्रक्रिया में भय और सजा की कोई जगह नहीं थी – बच्चों को पढ़ाई में मजा आता था।

राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा में सुझाव दिया गया है कि अनुभवजन्य अध्यापन व अध्ययन में स्थानीय इतिहास तथा संस्कृति से सामग्री ली जाए। इससे मुझे तुरन्त ही ऊपर उल्लिखित दो हफ्ते चले मेरे प्रोजेक्ट की याद आ गई, कि किस तरह खोजने, पढ़ने और दो महान लोगों के जीवन और उनके विचारों को जानने से समालोचनात्मक चिन्तन की प्रक्रिया मेरे भीतर शुरू हो गई, जो हमेशा मेरे साथ रही चाहे वह विद्यार्थी जीवन हो, या बाद में एक शिक्षक की भूमिका हो या कि अब एक शोधकर्ता व लेखिका का रूप हो।

हमारी पाठ्यचर्या की समस्या है कि वह विषय–प्रसंगों पर तो बहुत ज्यादा बल देता है पर सीखने की प्रक्रिया पर बहुत कम ध्यान देता है। विषय–प्रसंग की परवाह किए बगैर यदि अध्ययन प्रक्रिया हमें प्रेरित करे कि हम अपनी दुनिया को जाँचें–परखें, एक दूसरे से एवं आसपास के लोगों से चर्चा करें, खुद अपने परिवेश में इतिहास को खोजें और सबसे जरूरी बात, समूहों में काम करते हुए बहस करें, तर्कों को चुनौती दें, सवाल उठाएँ – तो इस तरह के अनुभव से हम सब (शिक्षक व बच्चे) ज्यादा समृद्ध हो सकेंगे।

अनुभवजन्य अध्ययन प्रक्रिया में दिल और दिमाग दोनों शामिल रहते हैं। जब दिल को किसी जानकारी के बारे में पक्का भरोसा हो जाए, तो तुरन्त ही वह जानकारी आत्मसात हो जाती है। दिल को विश्वास होने के लिए जरूरी है कि जानकारी न केवल शिक्षक की आँखों में प्रामाणिक होनी चाहिए बल्कि एक दर्पण की भाँति होनी चाहिए जो 'सत्य' को वैसा ही प्रतिबिम्बित करे जैसा कि बच्चों ने उसे समझा हो। बच्चों को ऐसी प्रक्रिया में शामिल करने के लिए शिक्षक को कहीं ज्यादा प्रयास व मेहनत करना पड़ती है। वह कोई समस्त ज्ञान का स्रोत, सर्वज्ञ व्यक्ति नहीं होता, बल्कि एक मार्गदर्शक होता है जिसका काम होता है अपने विद्यार्थियों को इस काबिल बनाना कि वे चीजों की पड़ताल कर सकें, सामग्री इकट्ठा करें और फिर तथ्यों का विश्लेषण कर सकें। एक बार जब हमें जानकारियों को तलाशने–हासिल करने, उनपर समालोचनात्मक ढंग से विचार करने, चर्चा करने और उनको लेकर अपनी एक राय बनाने की समझ आ जाती है तो फिर हम इसे किसी भी स्थिति में उपयोग कर सकते हैं।

ऐसी अध्ययन प्रक्रियाएँ व्यावहारिक बुद्धि के मूल्य को पुनःपुष्ट करती हैं और नागरिकों के रूप में हमारे रोज के अनुभवों को अवधारणाओं व इतिहास से जोड़ती है। यह पद्धति सामाजिक सम्बन्धों, हावी रहने वाले पूर्वाग्रहों, अन्याय, असमानता, लैंगिक सम्बन्धों तथा भ्रष्टाचार, हिंसा जैसे ढेर सारे अन्य सामाजिक मुद्दों के बारे में समालोचनात्मक ढंग से विचार करने में विद्यार्थियों की मदद कर सकती है। व्यावहारिक बुद्धि और ज्ञान की दुनिया (जैसा कि उसे पाठ्यपुस्तकों में आदरपूर्वक स्थापित कर दिया गया है) के बीच सेतु बनाने से शिक्षकों और विद्यार्थियों को बहुमूल्य अन्तर्दृष्टियाँ प्राप्त होती हैं।

यह सब, करने की तुलना में कहना बहुत आसान है। क्या हमारे शिक्षक अध्ययन–अध्यापन प्रक्रियाओं में ऐसी सम्पूर्ण मरम्मत के

सामाजिक विज्ञान अध्ययन – क्या सही है और क्या गलत?

लिए तैयार हैं? नए विचारों को जानते रहने, अध्ययन–अध्यापन की प्रक्रिया के बारे में एक अलग दृष्टि रखने के साथ ही सीखे हुए जड़तापूर्ण ज्ञान को दिमाग से निकाल देने का सचेत प्रयास भी साथ ही साथ चलते रहना चाहिए। नागरिक शास्त्र और सामाजिक विज्ञान की पढ़ाई अनुभवजन्य अध्ययन के मुताबिक ढल सकती है। इसे बहुत ही शुरुआती स्तर पर कक्षा एक से पर्यावरण विज्ञानों में सिखाना शुरू किया जा सकता है और फिर इस शुरुआत को धीरे–धीरे आगे ले जाते हुए माध्यमिक शिक्षा तक ले जाया जा सकता है। निश्चित ही इससे परिदृश्य बहुत व्यापक हो जाएगा, लेकिन एक बार शिक्षकों और बच्चों को इस पद्धति की कला आ जाए, तो फिर इसे आगे बढ़ाना सम्भव है।

हमारे सामने आज कई बड़ी चुनौतियों में से एक यह है कि राजनेता हमारे लिए यह निर्धारित करना चाहते हैं कि सही इतिहास क्या है और सही नागरिक शास्त्र क्या है। इतिहास और नागरिक शास्त्र, दुर्भाग्यवश, एक राजनैतिक अखाड़ा बन गए हैं। वह एकमात्र तरीका, जिसके द्वारा हम इसे रोक सकते है, अनुभवजन्य अध्ययन–अध्यापन प्रक्रिया को शुरू करना ही है, ताकि हम स्थानीय अनुभवों, स्थानीय संस्कृति, इतिहास के लिए, तथा सबसे जरूरी, ऐसी अर्थपूर्ण शिक्षा के लिए जगह बना सकें जो हमारे बच्चों को यह सिखाती हो कि कैसे सीखना है न कि यह कि क्या सीखना है।

विमला रामचन्द्रन *एजुकेशनल रिसोर्स यूनिट की निदेशक हैं जो शिक्षा तथा सशक्तीकरण पर काम कर रहे शोधकर्ताओं व प्रयोगकर्ताओं का एक समूह है। वे मानव संसाधन विकास मंत्रालय के शिक्षा विभाग के अन्तर्गत, महिलाओं की शिक्षा के लिए बने भारत सरकार के कार्यक्रम – महिला समाख्या (1988–1993) के शिल्पकारों में से एक तथा उसकी पहली राष्ट्रीय प्रोजेक्ट निदेशक थीं। वे महिलाओं के एक स्वास्थ्य नैटवर्क, हैल्थवॉच, की संस्थापक हैं व 1994 से 2004 तक वे उसकी प्रबन्धक न्यासी भी रहीं। प्राथमिक शिक्षा, लैंगिक मुद्दों और महिला सशक्तीकरण पर उनके कई लेख प्रकाशित हो चुके हैं। उनसे इस erudelhi@gmail.com ईमेल पते पर सम्पर्क किया जा सकता है।*

08 स्कूल की पाठ्यपुस्तकें

रश्मि पालीवाल एवं सी.एन. सुब्रह्मण्यम

सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रियाओं के प्रति जागरूक दृष्टि का अभाव, अनेक प्रकार की उस निरक्षरता का एक पहलू है जो हमें अपने चारों ओर दिखाई देती है। इसी से होड़ करती हुई दूसरी असमर्थता है, एक प्रकार की मानसिक 'दीवार' जो ऐसे लोगों के जीवन की वैधता को स्वीकार करने में रुकावट बन जाती है जो 'भिन्न' हैं – जो 'दूसरे' हैं। चाहे हमारी भूमिका सामाजिक कार्यकर्ता की हो या शासनाधिकारी, विशेषज्ञ, या कार्यक्रमों की निगरानी या पुनरीक्षण करने वाले परामर्शदाता की हो, हम सभी अपेक्षा करते हैं कि अन्तिम रूपान्तरण हमारे प्रयासों के परिणामस्वरूप ही होंगे। हम यह नहीं समझते कि ये प्रयास एक वृहद प्रक्रिया की कड़ियाँ मात्र होते हैं।

इस सन्दर्भ में इतिहासकार की भूमिका महत्वपूर्ण हो जाती है। इतिहासकार का काम, या जिम्मेदारी है सामाजिक प्रक्रियाओं का नजदीक से और ईमानदारी से इस तरह वर्णन करना कि उसमें दृष्टिकोण उठने वाले प्रश्नों के उत्तर देने का हो। इसलिए जरूरत 'अनुभववाद' और अमूर्त धारणाओं की अन्धभक्ति, दोनों से दूर हटकर ऐसे वर्णन की है जिसे सिद्धान्तों का सहयोग प्राप्त हो। सामाजिक प्रक्रियाओं के निकटता से किए गए मूल्यांकन में टिक पाने की ताकत होती है; यह जीवन को जिस तरह वह हमारे चारों ओर जिया जाता है, उसी तरह देखने के लिए दिमाग को प्रशिक्षित करता है। इस जिम्मेदारी को कार्य रूप में निभाना स्कूली बच्चों के लिए नई पाठ्यपुस्तकें विकसित करने के उस उपक्रम का सबसे रोमांचक पहलू था जिसका बीड़ा हम लोगों ने एकलव्य में उठाया। एकलव्य के सामाजिक विज्ञान समूह, जिसमें इतिहास, अर्थशास्त्र और भूगोल विषयों के अध्येता शामिल थे, ने तब चल रही पाठ्यपुस्तकों का पुनरीक्षण करने, सामान्य सामाजिक विज्ञान कक्षाओं के संचालन का अवलोकन करने, और शिक्षकों से इस विषय को पढ़ाने के उनके अनुभवों और समस्याओं के बारे में चर्चा करने से शुरुआत की। लगभग तीन साल की जमीनी तैयारी के बाद हमने मध्य प्रदेश सरकार से अपनी पाठ्यपुस्तकें नौ स्कूलों में कक्षा 6 से 8 तक औपचारिक तौर पर लागू करने की अनुमति प्राप्त की। यह 1986 में हुआ। तब से इन स्कूलों से प्रतिक्रिया मिलने के बाद इन पुस्तकों में संशोधनों के कई दौर हो चुके हैं। शिक्षक भी किताबों की विषयवस्तु, शिक्षण–पद्धतियाँ, विद्यार्थियों के मूल्यांकन आदि पर हुए प्रशिक्षण कार्यक्रमों में भाग ले चुके हैं। किताबें खुली रखकर परीक्षा की एक व्यवस्था विकसित की गई है, और कार्यक्रमों के लक्ष्यों को ध्यान में रखते हुए उपयुक्त प्रश्नपत्र बनाए जाते हैं; वर्तमान में हम सामाजिक अध्ययन के पढ़ाने और सीखने पर इस प्रकार के कार्यक्रम का प्रभाव आँकने के लिए तरीके विकसित करने का प्रयास कर रहे हैं।

अवधारणाएँ निर्मित करना

अलग–अलग पाठ्यपुस्तकें इस्तेमाल करने वाले बच्चों के द्वारा हासिल की गई समझ के अन्तरों का पता लगाने के लिए हमने हमारी किताबें उपयोग करने वाले दो स्कूलों, और सामान्य किताबें उपयोग करने वाले दो स्कूलों में एक छोटा अध्ययन किया।

हमने दोनों समूहों के बच्चों को शिकारी मानव या आदिमानव पर आधारित एक से प्रश्नपत्र दिए। पारम्परिक व्यवस्था के अनुसार चलने वाले स्कूलों के अनेक बच्चों ने शिकारी मानवों के जीवन पर किसी न किसी प्रकार का अस्पष्ट सा मूल्यात्मक निर्णय दिया: 'बहुत बेकार', 'बहुत कठिन', 'असम्भव'। प्रश्नों को ऐसे शब्दों में रचा गया था जिनमें बच्चों को इस प्रकार की टिप्पणियाँ करने को नहीं कहा गया था। दूसरी ओर, हमारे कार्यक्रम का अनुसरण करने वाले स्कूलों के एक भी बच्चे ने मूल्यात्मक निर्णय नहीं दिया। इसके अतिरिक्त, वे उन लोगों के जीवन के बारे में कई और जानकारियाँ दे सके।

> *इतिहासकार का काम, या जिम्मेदारी, है सामाजिक प्रक्रियाओं का नजदीक से और ईमानदारी से इस तरह वर्णन करना कि उसमें दृष्टिकोण उठने वाले प्रश्नों के उत्तर देने का हो। इसलिए जरूरत 'अनुभववाद' और अमूर्त धारणाओं की अन्धभक्ति, दोनों से दूर हटकर ऐसे वर्णन की है जिसे सिद्धान्तों का सहयोग प्राप्त हो। सामाजिक प्रक्रियाओं के निकटता से किए गए मूल्यांकन में टिक पाने की ताकत होती है; यह जीवन को जिस तरह वह हमारे चारों ओर जिया जाता है, उसी तरह देखने के लिए दिमाग को प्रशिक्षित करता है।*

अन्य प्रश्नों, जैसे 'शिकारी मानव घरों में क्यों नहीं रहते थे' या 'बरतनों और मर्तबानों का उपयोग क्यों नहीं करते थे', के उत्तर भी इस अन्तर को दर्शाते हैं। सामान्य धारा के बच्चों के द्वारा दिया गया सबसे आम उत्तर था कि शिकारी मानवों को मकान, बरतन और मर्तबान बनाने का और उपयोग करने का ज्ञान नहीं था। शायद इतिहास के पूर्व–स्नातक विद्यार्थियों से भी ऐसे उत्तर मिलना कोई अनोखी बात न हो। परन्तु, हमारे कार्यक्रम में शामिल बहुत थोड़े से

बच्चों ने ऐसे सरलीकृत उत्तर दिए। लगभग दो–तिहाई बच्चों ने पुरातत्वीय खोजों में बरतनों और मर्तबानों के अभाव का कारण भोजन व पानी के संसाधनों के समाप्त हो जाने को बताया। अन्य ने कहा कि सम्भवतः ये लोग जंगलों से अपना भोजन इकट्ठा करते हों, और उसे सीधा वैसे ही खा जाते हों जिससे संग्रह करके रखने के लिए कुछ बचता ही न हो। या वे घुमन्तू लोग थे जो अपने साथ बड़े बरतन आदि नहीं रख सकते थे। ये उत्तर इस समस्या की ज्यादा गहरी समझ दर्शाते थे।

अतः हमें मिलने वाले उत्तर कुछ इस प्रकार के प्रतीत होते हैं: चर्चित वस्तु की अधिक समृद्ध और सजीव तस्वीर, सतही व्याख्याओं से आगे बढ़कर अधिक जानकारीपूर्ण व्याख्याओं तक पहुँचने की योग्यता, सामाजिक क्रियाकलापों में अन्तर्सम्बन्ध देखने की शुरुआत और अन्त में 'दूसरे' लोगों को कम मूल्यात्मक और आलोचनात्मक तरीकों से देखना। एकलव्य के प्रयास के अन्तर्गत, बच्चों के साथ काम करने के इन वर्षों में इतिहास की नई पाठ्यपुस्तकों के प्रभाव के कुछ दूसरे आयाम भी सामने आए हैं। बच्चों के साथ काम करने के इन अनुभवों में से कुछ हम यहाँ बाँटना चाहेंगे।

> *बच्चों पर पड़ने वाले कुछ प्रभावः चर्चित वस्तु की अधिक समृद्ध और सजीव तस्वीर, सतही व्याख्याओं से आगे बढ़कर अधिक जानकारीपूर्ण व्याख्याओं तक पहुँचने की योग्यता, सामाजिक क्रियाकलापों में अन्तर्सम्बन्ध देखने की शुरुआत और अन्त में 'दूसरे' लोगों को कम मूल्यात्मक और आलोचनात्मक तरीकों से देखना।*

पाठ्यपुस्तक की भाषा बनाम बच्चों की भाषा

हमें हमारे काम के दौरान एक गाँव के स्कूल में कक्षा 8 के बच्चों के साथ मुगल बादशाह अकबर की चर्चा की याद आती है। उसमें भाग लेने का उनका जोश चकित करने वाला था। वे एक कथानक रचने, उसका बारीकी से विश्लेषण करने, और राजपूतों, तूरानियों और ईरानियों से अकबर के सम्बन्ध के बारे में हमारी ओर से पूछे जा रहे हर सवाल के ऊपर सोचने और प्रतिक्रिया देने में उत्साह से भरे हुए थे।

अकबर ने राजपूताना के विभिन्न राज्य जीतने के बाद फिर क्यों उन्हें उनके शासकों को लौटा दिया था? ताकि जरूरत के समय राजपूत उसकी मदद कर सकें', और फिर, ताकि राजपूतों के राज्य अकबर के राज्य के नाम में आ जाएँ (उसके साम्राज्य में गिने जाएँ)'। तूरानी क्यों नाखुश थे? यहाँ परिस्थिति की जटिलता को समझना ज्यादा कठिन थाः 'क्योंकि वे अपने पदों से वंचित कर दिए गए'। 'नहीं', हमने कहा, और उन्होंने उत्तर दिया, 'क्योंकि वे महत्वपूर्ण पदों से हटा दिए गए जो राजपूतों को दे दिए गए'। हमने उन्हें बताया कि यह भी सच नहीं था, और फिर विद्यार्थियों को सजीव रूप से स्थिति को महसूस कराने के लिए हमने उनके साथ एक स्वाँग रचा। हमें गहरी रुचि और एकाग्रचित्त से देखते हुए उन्होंने सिर हिलाकर समझने का इशारा किया, लगभग यह संकेत देते हुए कि हम आगे न समझाएँ, ताकि वे वापस उत्तर देने की भूमिका निभा सकें, और कहा 'हाँ, मतलब तूरानी अमीरों को लगा कि उनकी पूछ नहीं रही'। यहाँ हमें बच्चों के दिमाग में बन रही अवधारणा को व्यक्त करने के लिए उनका चुटीली उक्तियाँ बनाने और मुहावरे इस्तेमाल करने का प्रयास दिखाई देता है।

एक और घटना याद आती है। यह कक्षा 7 के स्तर पर हुई। हमने एक बहुत चुपचाप रहने वाले लड़के से एक अध्याय में दी गई तस्वीरों पर बात की। ये तस्वीरें प्रारम्भिक मध्यकालीन भारत में उभरते हुए राजवंशों से सम्बन्धित थीं। इन तीन तस्वीरों में से एक में घोड़ों पर बैठे हुए किसी शक्तिशाली परिवार के दो पुरुषों को एक ब्राह्मण से बात करते हुए दिखाया गया था, दूसरी में राज्याभिषेक समारोह का दृश्य था जिसमें एक ब्राह्मण समारोह की विधियों में मदद कर रहा था, और तीसरी में एक राजा एक ब्राह्मण को ताम्रपत्र भेंट कर रहा था।

'घोड़ों पर बैठे हुए दोनों आदमी नाराज दिखते हैं...क्योंकि...हो सकता है कि दूसरे गरीब लोग उन्हें राजाओं की तरह स्वीकार न कर रहे हों...क्योंकि शायद उनको पता नहीं कि ये लोग कौन सी जात के हैं...'। 'इस तस्वीर में वो पण्डित से कह रहा है कि मेरे को भरी सभा में मुकुट पहना दो...मैं राजा बन जाऊँ,...वो खुद मुकुट पहन लेगा तो जो कोई उसकी सभा होगी वो मानेगी नहीं कि यह राजा है, सब कोई पण्डित की बात मानते हैं'। 'अब राजा दान दे रहा है...क्योंकि ब्राह्मण से कहा था, सो उसने उसका काम कर दिया'।

तस्वीरों पर प्रतिक्रिया करते हुए बच्चे ने जो कथानक सुनाया वह उस पाठ से अलग था जो हमने शोधकर्ताओं और इतिहासकारों की सहायता से लिखा था। उससे बात करते हुए हम सोच में पड़ गए कि शायद तेरह साल का यह ग्रामीण लड़का हमारे जैसे लोगों की अपेक्षा वंश परम्परा, शक्ति और सत्ता की धार्मिक वैधता के सन्दर्भ से कहीं ज्यादा निकट था। यह बात शायद उन उत्तरों की प्रति के मामले में भी कही जा सकती है जो अकबर के काल में खेमेबाजी की राजनीति और ताकत के बारे में पूछे गए सवालों के जवाब में मिले थे।

हमारे द्वारा विकसित की गई नई पाठ्यपुस्तकों पर बच्चों की प्रतिक्रियाओं को हमें किस तरह समझना था? ऐसा लगता है कि जब ऐतिहासिक प्रक्रियाओं को मूर्त रूप दे दिया जाता है तो हमेशा एक प्रतिध्वनि निर्मित हो जाती है, कोई तार झंकृत हो उठता है, और दूसरे लोगों तथा दूसरे कालों से एक भावनात्मक जुड़ाव पैदा हो जाता है। बच्चे अपने अनुभवों और अपनी भाषा के माध्यम से उस इतिहास को आत्मसात और अभिव्यक्त करने लगते हैं जिसे वे पढ़ रहे हैं।

जब हम इतिहास की पाठ्यपुस्तकों पर छाई हुई सघनता, अमूर्तीकरण और निरर्थक अनुभववाद को काटकर अलग कर देते हैं, और जब बच्चे किताबों में अपने परिचित मुद्दों को देख पाते हैं तब वे उनका सम्बन्ध अपने जीवन और अपने अनुभवों से जोड़ पाते हैं। वर्णन करने में उनका अपनी शब्दावली और पदावली में चले जाना उस भावनात्मक जुड़ाव का द्योतक है जो ये बच्चे विषय के साथ महूसस करते हैं। इसके विपरीत, पारम्परिक पुस्तकें केवल पाठ्यपुस्तकीय भाषा के दोहराव की इजाजत देती हैं जिसके लिए बस तारीखों और घटनाओं को याद कर लेने की ही जरूरत होती है।

बच्चे, विशेष रूप से ग्रामीण क्षेत्रों में, श्रम प्रक्रियाओं से जुड़े रहते हैं, और उन्हें अपने आसपास की राजनैतिक वास्तविकता का गहरा बोध होता है। इसलिए सामाजिक मुद्दों का कोई भी सतही या अमूर्त विवरण, चाहे वह ऐतिहासिक हो या तात्कालिक, उनकी दिलचस्पी को बुझा देता है। परन्तु, सभी बच्चे विभिन्न सन्दर्भों के प्रति एक ही तरह से प्रतिक्रिया नहीं करते। उदाहरण के लिए, हमने देखा है कि वे बच्चे जिन्हें श्रम के रूपों का और मेहनताना दिए जाने के तरीकों का अनुभव होता है, ऐसी बातों के प्रति अधिक सुविधा–सम्पन्न बच्चों की तुलना में ज़्यादा पैनी समझ दर्शाते हैं।

बच्चों की इस जरूरत को देखते हुए हमारे लिए सामाजिक–ऐतिहासिक स्थितियों में ज्यादा गहराई से जाने की और उनमें मौजूद बदलते हुए टकरावों और संकटों की पड़ताल करने की आवश्यकता है। इसी जरूरत को ध्यान में रखते हुए हमने अपनी किताबों में कई सम्बन्धों की जाँच–पड़ताल करने की कोशिश की जैसे : मध्यकालीन ब्रम्हदेय में एक साधारण आर्य जनजातीय व्यक्ति और राजन्यगण, पड़ैया श्रमिक, वेल्लला रैयतों और ब्राह्मण जमींदारों के बीच; महाराजाधिराज और सामन्तों के बीच; या अँग्रेजों के अधीन भारत में आदिवासी, वनरक्षक और साहूकार के बीच।

विभिन्न श्रेणियों के लोगों के अनुभवों का पाठ्यपुस्तकों में समावेश करने का मतलब, जानने के प्रचलित तरीकों में आमूल परिवर्तन करना था। यह हमारे सामाजिक अस्तित्व में मौजूद विविधताओं और संघर्षों पर जोर देता था, जबकि प्रमुख वर्ग का हित संघर्षरहित छवि प्रस्तुत करने से पुष्ट होता है।

पारम्परिक पुस्तकों में शिक्षण

इतिहास की पारम्परिक स्कूली किताबों में, लगभग सौ पेजों में, सब कुछ कहने की मजबूरी पाठ्यपुस्तक को याद रखी जाने वाली बातों का एक संकलन मात्र बना देती है। इसमें एक छिपी हुई मान्यता रहती है कि बच्चे बातों को गहराई में न तो समझ सकते हैं और न ही उन्हें इसकी जरूरत होती है, उनके लिए तो जो कुछ हुआ उस सबके बारे में केवल थोड़ी बहुत चुनी गईं महत्वपूर्ण बातें जानना आवश्यक है।

विभिन्न श्रेणियों के लोगों के अनुभवों को पाठ्यपुस्तकों में समावेश करने का मतलब, जानने के प्रचलित तरीकों में आमूल परिवर्तन करना था। यह हमारे सामाजिक अस्तित्व में मौजूद विविधताओं और संघर्षों पर जोर देता था, जबकि प्रमुख वर्ग का हित संघर्षरहित छवि प्रस्तुत करने से पुष्ट होता है।

एनसीईआरटी की 1980 के दशक की पुस्तकें इस बुनियादी मान्यता के प्रति निष्ठावान बनी रहीं, यद्यपि वे कुछ दृष्टियों से पहले की किताबों से काफी बेहतर थीं। उन्होंने क्षेत्रीय और साम्प्रदायिक पक्षपातपूर्ण बातों को निकाल देने का ध्यान रखा था, और इतिहास की कुछ प्रमुख धाराओं और अवधारणाओं पर चर्चा करने का कुछ प्रयास भी किया था। घटनाओं की व्याख्या और कारणों पर भी पहले से ज्यादा जोर दिया गया था। परन्तु यह प्रयास अधूरा ही बना रहा और इस पर जानकारी का एक 'सन्तुलित' संकलन प्रदान करने की प्रबल मजबूरी के चलते भारी बन्दिशें थीं।

यदि इतिहास के शिक्षण को बच्चों के लिए प्रासंगिक बनाना है तो कई शैक्षणिक चिन्ताओं पर काम किए जाने की जरूरत है (जो अकादमिक इतिहासकार के माने गए कर्तव्य से आगे जाने की माँग करता है)। यहाँ जिम्मेदारी ध्यान को इतिहास लेखन की राजनीति पर केन्द्रित करने की नहीं है – यद्यपि यह भी महत्वहीन नहीं है – बल्कि इस विषय का अपने आप में जो चरित्र है उस पर, अर्थात ऐतिहासिक ढंग से विचार करने के प्रमुख दृष्टिकोणों और तरीकों पर केन्द्रित करने की है। इसे निभाने का मुख्य तरीका यह देखना सीखना है कि हर चीज परिवर्तनशील है क्योंकि वह समय और स्थान के साथ बदलती है, कि हर चीज का विवरण एक विशेष

काल और क्षेत्र से जुड़ा रहता है, और इस विशेषता और परिवर्तन की व्याख्या सबसे पहले करना जरूरी है। इसके बाद निर्धारित स्थान और काल की सीमाओं में सभी क्रियाकलापों की परस्पर अन्तर्सम्बन्धित प्रकृति को पहचानना भी इसमें शामिल होगा।

किसी ऐतिहासिक स्थिति का अनोखापन उसकी अन्य स्थितियों से तुलना के माध्यम से स्थापित करना जरूरी है। पर यह तुलनात्मक पद्धति हमारी पाठ्यपुस्तकों में बिरले ही इस्तेमाल की जाती है। विभिन्न ऐतिहासिक कालों में भेद दर्शाने के लिए कोई व्यवस्थित प्रयास नहीं होता। उस समय की एनसीईआरटी की पुस्तकों में यदा–कदा ऐसे अन्तरों का उल्लेख होता था, पर वे भेद बिरले ही मूलभूत और गुणात्मक प्रकृति के होते थे। जिस ढंग से उनकी चर्चा की जाती थी उससे केवल मात्रात्मक अन्तर का आभास होता था। उदाहरण के लिए, यह कहा गया कि मौर्यकाल में राजा का नियंत्रण/शक्ति राजपूत काल से अधिक थी। पर इन दोनों सन्दर्भों में राजा का अपना मातहतों से सम्बन्ध बुनियादी रूप से भिन्न था, और यह बात कभी भी स्पष्ट नहीं की गई। इसके लिए राजसेवा में भर्ती और वेतन देने के तरीके, जवाबदेही की व्यवस्था और इस सबका समाज के अन्य पहलुओं पर पड़ने वाला प्रभाव, इन बातों की बहुआयामी पड़ताल की जाना थी।

> *अब समय आ गया है कि ऐसे निष्प्राण, वर्गीकृत प्रारूप त्याग दिए जाएँ और सामाजिक संरचनाओं की ऐसी सजीव तस्वीरें विकसित की जाएँ जिनमें उत्पादक गतिविधियाँ, सामाजिक सम्बन्ध, राजनीतिक संस्थाएँ, विचारधारा और संस्कृति को सक्रिय रूप से एक–दूसरे को निर्धारित और प्रभावित करते हुए देखा जाए।*

यहाँ तक कि मूलभूत रूपान्तरों, जैसे कि नगरीय क्रान्ति, राज्य समाजों का उद्भव, या चरवाहा जीवनशैली से कृषि की ओर संक्रमण का भी उल्लेख भर ही किया गया, उसमें भी इन परिवर्तनों की कोई व्याख्या नहीं की गई। इसके परिणामस्वरूप, बच्चे को निरन्तर विभिन्न कालों और क्षेत्रों में अन्तर और समानताएँ खोजने, और उनकी व्याख्या करने और उन्हें समझने में समर्थ बनाने के लिए कोई प्रशिक्षण नहीं मिलता।

विभिन्न ऐतिहासिक कालों के अन्तरों को सामने लाने के लिए अध्यायों को इस तरह व्यवस्थित करना जरूरी है कि उनकी तुलना की जा सके। पर, न केवल इसका कोई प्रयास नहीं किया गया, बल्कि पाठ्यपुस्तकों ने जानकारी का सन्तुलित संग्रह देने की कोशिश में समाज के एक पक्ष का दूसरे से सम्बन्ध जोड़ने का प्रयास भी नहीं किया। राज्यतंत्र, अर्थव्यवस्था, समाज, धर्म, कला और संस्कृति पर केन्द्रित खण्ड एकदम अलग–थलग थे, किसी का दूसरे खण्डों से कोई नाता नहीं था।

अब समय आ गया है कि ऐसे निष्प्राण, वर्गीकृत प्रारूप त्याग दिए जाएँ और सामाजिक संरचनाओं की ऐसी सजीव तस्वीरें विकसित की जाएँ जिनमें उत्पादक गतिविधियाँ, सामाजिक सम्बन्ध, राजनीतिक संस्थाएँ, विचारधारा और संस्कृति को सक्रिय रूप से एक दूसरे को निर्धारित और प्रभावित करते हुए देखा जाए।

विकल्प की रूपरेखा बनाना

इस प्रसंग में असिन दासगुप्ता के सूरत के व्यापारियों का वर्णन करने के ढंग को याद करना जरूरी है जिसमें पढ़ने वाले को न केवल व्यापारियों के जीवन और काम का बल्कि समूची मुगल राजनीतिक व्यवस्था, उसकी कार्यशैली और उसके पतन का सजीव चित्र मिलता है। चित्रात्मक विवरण न तो उद्देश्यहीन हैं और न ही अनुभववादी। उनका ध्यान मुख्य रूप से समुद्रतटीय शहर के रोजमर्रा के जीवन की उथल–पुथल दिखाने के माध्यम से उसके पतन के कारणों की व्याख्या करने पर केन्द्रित रहता है।

इस विधि को स्कूल की पाठ्यपुस्तकों में भी बखूबी इस्तेमाल किया जा सकता है, और इस तरह अमूर्त और अबूझ आख्यानों से, और रटकर सीखी जाने वाली बहुत सी 'शब्दावली' के अनावश्यक प्रयोग से भी बचा जा सकता है। किसी समस्या/विषयप्रसंग पर केन्द्रित पाठ्यपुस्तकें लिखने में किसी जानकारी को शामिल करने या छोड़ने के लिए उचित मानदण्ड तय करना सम्भव होता है। बिना सोचे समझे ऐसी हर जानकारी, जो आमतौर पर ज्ञात है या किसी के द्वारा बहुत महत्वपूर्ण मानकर चुनी गई है, को शामिल करने के बजाय ऐसे मानदण्ड अधिक अर्थपूर्ण होंगे।

हमें सम्पूर्ण इतिहास की अवधारणा और डी.डी. कोसाम्बी की पद्धतियों से परिचित होने के कारण बहुत मदद मिली। कोसाम्बी ने सफलतापूर्वक अन्य विषयों की कार्यप्रणालियों का समावेश करते हुए इतिहास लिखा। इससे हमें भी अहसास हुआ कि समाज की हमारी अपनी समझ को विखण्डित किए बिना भी उसमें विभिन्न विषयों के विशेष दृष्टिकोणों को समायोजित करना सम्भव है। ऐसे उदाहरणों के प्रकाश में ही हम समेकित पाठ्यपुस्तक लिखने के कठिन सवाल का समाधान करने में समर्थ हो सके।

शेष पाठ्यक्रम की रूपरेखा तैयार करने में हमें बच्चों के साथ काम करने में मदद मिली। हमने सीखा कि अपने स्वयं के परिवेश के बारे

में तथ्यों का सिर्फ अवलोकन करना और उन्हें दर्ज करना बेमानी हो सकता है। यह तब तक बच्चों की समझ में कोई खास योगदान नहीं देता जब तक परिवेश से परे जाकर बातों की पूरी व्याख्या न की जाए। बच्चों को अपने परिवेश का बहुत नजदीकी ज्ञान होता है। लेकिन उसे बेहतर ढंग से समझने के लिए उन्हें विविध प्रकार की स्थितियों की जानकारी होना जरूरी है। अपनी स्थिति की जानकारी का अन्य, समान तथा असमान, स्थितियों के अन्वेषण के लिए उपयोग करने का अभ्यास, सिर्फ परिचित बातों को दोहराने की अपेक्षा अधिक रोचक लगता है।

इसके साथ ही हमने पाया कि मिडिल स्कूलों के बच्चों में अमूर्त श्रेणियों के साथ काम करने की योग्यता नहीं थी। वे मूर्त स्थिति से जुड़ी विचार प्रक्रिया के साथ अधिक सहज थे। इसके अलावा, स्रोतों और धारणाओं में समीक्षात्मक और व्याख्यात्मक ढंग से बहुत गहराई में जाने के लिए भी उनकी तैयारी नहीं थी।

ऐसा लगा कि उन्हें विविध प्रकार के लोगों के वास्तविक जीवन–अनुभवों की बहुत व्यापक शृंखला से परिचित होने की जरूरत थी। लोगों की विविधता जितनी ज्यादा हो – पास के और दूर के, अतीत के और वर्तमान सन्दर्भ से जुड़े, धनी और निर्धन, शासक और शासित इत्यादि – वह जितनी जटिल हो उतनी ही बेहतर विद्यार्थियों की समझ होगी। विभिन्न मानवीय परिस्थितियों और परेशानियों को जानना, उनकी चर्चा करना और उनकी आपस में तुलना करना, ये सब मिलकर ऐसा आधार बनाते प्रतीत हुए जिस पर बच्चे मुद्दों को समीक्षात्मक ढंग से देखने के लिए निर्भर कर सकते थे, और इस तरह समाज के बारे में एक खुले दिमाग वाला परिपक्व दृष्टिकोण निर्मित कर सकते थे।

आज जब हम अधिकांश बच्चों के लिए अपनी किताबों की प्रभावशीलता का मूल्यांकन करते हैं तो हमें उस सबका भी अहसास होता है जो अभी किया जाना बाकी है। हमने बच्चों के साथ अपने अनुभवों से सीखा है कि बहुत–सी गैर पाठ्यपुस्तकीय गतिविधियाँ भी जरूरी हैं, जैसे मौखिक आख्यान, चित्र बनाना, मिट्टी के नमूने बनाना आदि। उन्हें वे जो लिखते हैं, उस पर अधिक प्रतिक्रियाओं की, पाठ्यपुस्तकों के ढाँचे से अधिक नजदीक परिचय की, पढ़ने और तैयारी करने के लिए अधिक समय की, अध्यापकों द्वारा अधिक ध्यानपूर्वक की गई चर्चाओं और व्याख्याओं की, और, जो अतिमहत्वपूर्ण है, पाठों के दौरान अपने अनुभवों के बारे में बात करने के लिए कहीं अधिक सुविधा और अवसर की जरूरत है।

जब हम समस्या–आधारित और मूर्त सन्दर्भों से जुड़ी पाठ्यपुस्तकों के प्रति बच्चों की सकारात्मक प्रतिक्रिया पर, और उनके अपने मुहावरे और अभिव्यक्ति के उनके भीतर से निकलने पर विचार करते हैं तो हमें जरा भी सन्देह नहीं रह जाता कि वे लोग जो वास्तविक जीवन के ज्यादा निकट हैं, इतिहास की पुस्तकों में चर्चित प्रक्रियाओं की उससे ज्यादा आसानी से व्याख्या करने में सहायक हो सकते हैं जितनी हमने की या करते हैं, और यह भी कि उनके दृष्टिकोण इतिहासकार तथा समाजविज्ञानी की सत्य की खोज को सुगम बना सकते हैं।

टिप्पणी

इसे लिखे जाने के बाद बहुत कुछ घट चुका है। एनसीईआरटी की पाठ्यपुस्तकें दो बार नए सिरे से फिर लिखी जा चुकी हैं – एक बार एनसीएफ 2000 के बाद और फिर एनसीएफ 2005 के बाद। जहाँ बहुत ऐसी शैक्षणिक चिन्ताएँ जिनके साथ एकलव्य ने संघर्ष किया अब अधिकाधिक स्वीकार की जाने लगी हैं और विभिन्न सीमाओं तक उनके समाधान का प्रयास भी हुआ है। वहीं अकादमिक क्षेत्र और शिक्षण से सम्बन्धित नए मुद्दों पर बहस और काम जारी है। इसी बीच, मध्य प्रदेश के नौ शासकीय स्कूलों में एकलव्य का प्रायोगिक कार्यक्रम 2002 में समाप्त हो गया। यह लेख मूल रूप से इण्डियन इन्सटीट्यूट ऑफ ऐडवान्स्ड स्टडीज़, शिमला द्वारा प्रकाशित पत्रिका 'समर हिल' में 1998 में प्रकाशित हुआ था। इसका वर्तमान स्वरूप मूल लेख का रूपान्तर है।

सी. एन. सुब्रह्मण्यम *एकलव्य के निदेशक हैं। उनकी पृष्ठभूमि इतिहास की है। वे 1984 से एकलव्य में सामाजिक विज्ञानों के नए पाठ्यक्रम विकसित करने पर काम कर रहे हैं। एकलव्य में उनके कार्य के अन्य क्षेत्रों में प्राथमिक स्कूलों में भाषा और गणित का शिक्षण शामिल है। उनसे इस director.eklavya@gmail.com ईमेल पते पर सम्पर्क किया जा सकता है।*

रश्मि पालीवाल *की पृष्ठभूमि इतिहास की है। वे 1983 से एकलव्य के साथ सामाजिक विज्ञानों के नए पाठ्यक्रम विकसित करने का काम कर रही हैं। उन्होंने पाठ्यक्रम और पाठ्यपुस्तकें विकसित करने में अनेक शासकीय और अशासकीय संस्थाओं के साथ काम किया है। इसके अलावा उन्होंने सामाजिक विज्ञान शिक्षण और पाठ्यक्रम विकास पर बहुत कुछ लिखा है। वर्तमान में वे कार्यक्षेत्र–आधारित ऐसे संसाधन केन्द्रों के विकास में संलग्न हैं जिनका प्राथमिक शिक्षा पर विशेष जोर है। उनसे इस subburashmi@yahoo.com ईमेल पते पर सम्पर्क किया जा सकता है।*

09 कल के नागरिक निर्मित करना : सारे संसार में सामाजिक विज्ञान शिक्षण का संक्षिप्त सर्वेक्षण

ऐन हॉर्विटज़

सामाजिक विज्ञान की शिक्षा को समझना और उसको बढ़ावा देना सरल मामला नहीं है। ये विषय – इतिहास, समाज शास्त्र, भूगोल, नागरिक शास्त्र, अर्थशास्त्र, मनोविज्ञान – अपनी परिभाषा के अनुसार ''ठोस'' विज्ञान नहीं हैं। किसी विद्यार्थी को इनमें महारथ हासिल करने के लिए ऐसे ढंग से जानकारी की व्याख्या करने और समीक्षात्मक दृष्टि से सोचने में समर्थ होना जरूरी है। ऐसा उन विद्यार्थियों से अपेक्षित नहीं है जो बुनियादी संख्यात्मक ज्ञान और साक्षरता हासिल कर रहे हैं। आखिरकार, a2 + b2=c2 ही होगा चाहे आप जकार्ता में हों या नैरोबी या पेरिस में। एक सेब तो सेब ही रहेगा भले ही आप किसी भी महाद्वीप में हों। परन्तु, उपनिवेशवाद की विरासत, पूँजीवाद के फायदे और नुकसान, या समाज में स्त्रियों का उचित स्थान, इनके बारे में निष्कर्ष निकालने की प्रक्रिया विभिन्न देशों में, और किसी देश की सीमाओं के भीतर भी, बहुत भिन्न हो सकती है।

शायद इसी ''लचीलेपन'' के कारण, पिछले कुछ दशकों में अन्तर्राष्ट्रीय शैक्षिक समुदाय में नीति बनाते समय और प्रगति का मूल्यांकन करते समय सामाजिक विज्ञानों की अपेक्षा पढ़ने, लिखने और अंकगणित पर अधिक जोर देने की प्रवृत्ति रही है। प्रमुख अन्तर्राष्ट्रीय शैक्षिक मूल्यांकन, ''ट्रैन्ड इन इन्टरनेशनल मैथेमैटिक्स एण्ड साइंस स्टडी (टीआईएमएसएस)'' और ''प्रोग्रैस इन इन्टरनेशनल रीडिंग लिटरेसी स्टडी (पीआईआरएलएस)'', सामाजिक विज्ञान सामग्री में विद्यार्थियों की उपलब्धि को नहीं नापते। एक अन्य जानामाना मूल्यांकन ''प्रोग्राम फॉर इन्टरनैशनल स्टूडेंट एसैसमेन्ट (पीआईएसए)'' भी पढ़ने, गणित और विज्ञान पर केन्द्रित रहता है। हालाँकि यह जरूर है कि समस्या सुलझाने की क्षमता को नापने के लिए इसमें एक छोटा अन्तर–सांस्कृतिक भाग भी होता है। पीआईएसए केवल 65 देशों में उपयोग किया जाता है, और इसके सबसे हाल के दौर में भाग लेने वालों में अफ्रीका के उप–सहारा क्षेत्र का कोई देश शामिल नहीं था।

एक वैश्विक मूल्यांकन, ''इन्टरनेशनल ऐसोसिएशन फॉर द इवैल्युएशन ऑफ ऐजुकेशनल एचीवमेंट (आईईए) सिविक ऐजुकेशन स्टडी'' जरूर विद्यार्थियों की इतिहास तथा भूगोल की समझ और नागरिक योग्यताओं को मापता है, लेकिन 2009 में इसके अन्तिम दौर में केवल 39 देशों ने भाग लिया। पुनः, भाग लेने वाले देशों की सूची में विविधता का अभाव था; इनमें 64% यूरोपियन, 15% लैटिन अमेरिकन, 13% एशियन थे, और शेष प्रतिशत में एक भी अफ्रीकी देश का प्रतिनिधित्व करने वाला नहीं था। जॉर्ज डब्ल्यू. बुश के शिक्षा विभाग ने अपने एक निर्णय, जो सामाजिक विज्ञान के ऊपर गणित, विज्ञान और पढ़ने की प्रमुखता को प्रतिबिम्बित करता हुआ माना जा सकता है, में अमेरिका को आईईए सिविक ऐजुकेशन स्टडी के 2009 के दौर में और आगे भागीदारी करने से हटा लिया। यह माना जा सकता है कि यह निर्णय टीआईएमएसएस और पीआईआरएलएस जैसे बड़े, अधिक व्यापक भागीदारी वाले, और अधिक प्रभावशाली मूल्यांकनों से निकले उन परिणामों से प्रेरित हुआ हो जिनमें एशिया और यूरोप के अनेक देशों को पढ़ने, गणित और विज्ञान में अमेरिका से आगे निकलता हुआ पाया गया।

संक्षेप में, पूरी दुनिया की तस्वीर कुछ ऐसी है जिसमें सामाजिक विज्ञान ''अधिक ठोस'' विषयों से महत्व की दृष्टि से पीछे रह जाते हैं। अभी समझदारी इसी में प्रतीत होती है कि यदि कोई देश वैश्विक अर्थव्यवस्था में स्पर्धा करना चाहता है तो उसकी शिक्षा व्यवस्था को अपने कामगारों को संख्याओं और शब्दों को समझने के लिए तैयार करने पर ध्यान केन्द्रित करना जरूरी है। आज जब देश निरन्तर कम पड़ती जा रही वैश्विक सम्पदा में अपना हिस्सा बढ़ाने के लिए होड़ कर रहे हैं, तब ऐसे सक्रिय नागरिकों, जिन्हें इतिहास, संस्कृति और मानवीय व्यवहार की बारीक समझ हो, को तैयार करने की बात काफी हद तक एक पीछे से आने वाला विचार भर बनकर रह गया है।

संक्षेप में, पूरी दुनिया की तस्वीर कुछ ऐसी है जिसमें सामाजिक विज्ञान ''अधिक ठोस'' विषयों से महत्व की दृष्टि से पीछे रह जाते हैं। अभी समझदारी इसी में प्रतीत होती है कि यदि कोई देश वैश्विक अर्थव्यवस्था में स्पर्धा करना चाहता है तो उसकी शिक्षा व्यवस्था को अपने कामगारों को संख्याओं और शब्दों को समझने के लिए तैयार करने पर ध्यान केन्द्रित करना जरूरी है।

पर इतिहास, समाजशास्त्र या सामाजिक विज्ञान के अन्य क्षेत्रों में शिक्षा को त्यागकर बहुत दूर चला जाने वाला कोई भी देश अपना भारी नुकसान करता है। बेशक सक्षम, योग्य, कामगार आबादी को तैयार करने के लिए उपयुक्त शिक्षा के महत्व से शायद ही कोई इन्कार करेगा, और इसी कारण से साक्षरता और संख्या ज्ञान पाठ्यचर्या में होते हैं, और उनका होना जरूरी भी है। लेकिन,

मानवीय पूँजी–निर्माण ही राज्यों के शिक्षा में निवेश का एकमात्र कारण नहीं होता। स्कूल ऐसे स्थान हैं जहाँ युवा लोग नागरिकता, और सार्वजनिक कार्यों के तरीके सीखते हैं, जहाँ उनके सामाजिक और राजनैतिक लगाव निर्मित होते हैं, जहाँ किसी समाज के भीतर विद्यमान भेदों को प्रतिबिम्बित किया जा सकता है या रूपान्तरित किया जा सकता है। इन कारणों से, पाठ्यचर्या में सामाजिक विज्ञानों का भी स्थान – कुछ लोग कह सकते हैं कि सबसे महत्वपूर्ण स्थान – होता है, और इसका आगे भी बना रहना जरूरी है।

आर्थिक दबावों, जो एक समर्थ कामगार आबादी की माँग करते हैं, और सामाजिक अपेक्षाओं, जो एक सक्रिय नागरिक समुदाय की माँग करती हैं, के बीच स्वाभाविक खींचतान संसार के किसी एक भाग तक सीमित नहीं है। इसे सम्पन्न देशों में और गरीब देशों में, लम्बे समय से स्थापित लोकतन्त्रों में और नए–नए लोकतन्त्रों में, सभी जगह देखा जा सकता है। हालाँकि सारे संसार में सामाजिक विज्ञान शिक्षण के विषय पर ग्रन्थ लिखे जा सकते हैं, पर मैं यहाँ अपनी पड़ताल को थोड़े से देशों तक ही सीमित रखूँगी। अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर सामाजिक विज्ञानों की पाठ्यचर्या और शिक्षण पद्धतियों में इतनी विविधता है कि उनमें से अधिकांश को यहाँ अनछुआ छोड़ना अफसोस की बात है। पर मुझे आशा है कि यह लेख पाठकों की रुचि को उकसाएगा और वे इस बारे में और अधिक जानने की पहल करेंगे।

'अच्छे' के लिए या 'बुरे' के लिए

सामाजिक विज्ञान शिक्षण की वैश्विक तस्वीर में प्रवेश करने से पहले, हमें शिक्षाकर्मियों की तरह, अपने को यह याद दिलाना उपयोगी होगा कि शिक्षा निसंदिग्ध रूप से हमेशा अच्छी ही होती हो ऐसा नहीं है। अक्सर और अनेक जगहों पर किसी खास विचारधारा को मन में बैठाने के लिए और राज्यशक्ति को मजबूत करने के लिए सामाजिक विज्ञान शिक्षण को विकृत करके उपकरण की तरह उपयोग किया जाता है। ऐसे सुरक्षित शरणस्थल होने के बजाय, जहाँ विद्यार्थी समाज के सामने खड़ी समस्याओं के बारे में समीक्षात्मक ढंग से सोचना सीखें, स्कूल स्वयं ही ऐसे संघर्ष–क्षेत्र बन जाते हैं जहाँ समुदायों के बीच वैचारिक युद्ध लड़े जाते हैं। शासक वर्ग अपनी पसन्द के जातीय, धार्मिक या भाषाई समूह को उपकृत करने के लिए इतिहास को तोड़ते–मड़ोरते, विकृत करते और यहाँ तक कि गढ़ भी लेते हैं। स्कूलों का ऐसा दुरुपयोग जहाँ हिंसक संघर्षों से पीड़ित क्षेत्रों में सबसे अधिक प्रचलित है, वहीं इसे अधिक स्थायित्व वाले देशों में भी देखा जा सकता है। अमेरिका के टैक्सास राज्य में सामाजिक अध्ययन पाठ्यचर्या के ऊपर हुआ ताजा विवाद इसका सबूत है। इसमें राज्य शिक्षा मण्डल (स्टेट बोर्ड ऑफ ऐजुकेशन) के दक्षिणपन्थी सदस्यों का एक समूह ईसाई धर्म और अनुदारवादी राजनैतिक आन्दोलनों और नेताओं पर जोर देने के लिए अमरीकी इतिहास की पुस्तकों में संशोधन करवाने में सफल हुआ।

यह मानते हुए, कि सभी लोगों को ऐसी शिक्षा पाने का अधिकार है जो, मानवाधिकारों की सार्वभौमिक घोषणा (यूनीवर्सल डिक्लेरेशन ऑफ ह्यूमन राइटस) के शब्दों में, ''सभी राष्ट्रों, नस्लीय और धार्मिक समूहों में आपसी समझ, सहिष्णुता और मित्रता को बढ़ावा देती है,... और...शान्ति को बनाए रखने में सहायक होती है'', हममें से उन लोगों को जो शिक्षा क्षेत्र में हैं, हमारे अपने देशों में और विदेशों में, स्कूलों में सामाजिक विज्ञानों के उचित स्थान के लिए लड़ना आवश्यक है। यदि हम शान्ति, सुरक्षा और सभी लोगों की सामान्य गरिमा के आदर्शों को मानते हैं तो यह सुनिश्चित करना कि सभी विद्यार्थियों, चाहे वे जैसे भी हालातों में रहते हों, को सोचने, कार्य करने, और बराबरी के साथ भागीदारी करने के औजार दिए जाएँ, यह हमारी जिम्मेदारी है।

वैश्विक परिदृश्य

हाल ही में प्रकाशित वर्ल्ड सोशल साइंस रिपोर्ट 2010, जो यूनेस्को तथा इन्टरनेशनल सोशल साइंस काउंसिल का साझा प्रयास है, इस बात की ओर ध्यान दिलाती है कि सामाजिक विज्ञान पर होने वाला संवाद ज्यादातर उत्तरी अमेरिका और पश्चिमी यूरोप द्वारा संचालित किया गया है। यह शायद आश्चर्य की बात नहीं है क्योंकि संसार के सबसे पुराने लोकतंत्र इन्हीं क्षेत्रों में स्थित हैं, और सार्वजनिक स्कूल की संस्था को जैसा आधुनिक युग में समझा जाता है, ये क्षेत्र उसके जन्मस्थान हैं। संयुक्त राज्य अमेरिका में सार्वजनिक स्कूलों को लोकतांत्रिक व्यवस्था को बनाए रखने और मजबूत बनाने के महत्वपूर्ण साधनों की तरह देखा जाता है। अधिकतर देशों के विपरीत, यूएस (संयुक्त राज्य अमेरिका) में विकेन्द्रीकृत शिक्षा व्यवस्था है। वहाँ वैसे तो एक संघीय शिक्षा विभाग है, पर काफी हद तक स्कूलों का नियोजन, संचालन और वित्तीय आबंटन राज्य के और स्थानीय स्तर पर किया जाता है। शिक्षा पर होने वाले व्यय का लगभग 83% राज्यों और स्थानीय सरकारों से आता है, और शिक्षा के मापदण्ड तय करने और विद्यार्थियों की प्रगति का आकलन करने की जिम्मेदारी भी उन्हीं स्तरों पर निहित रहती है। इस विकेन्द्रीकरण के बावजूद, सभी राज्यों के पाठ्यक्रमों में कुछ समानताएँ हैं, और उनमें से एक यह है कि सभी विद्यार्थियों को देश के इतिहास और सरकार के बारे में पढ़ना आवश्यक है। यह अमेरिका के संस्थापकों के दृष्टिकोण की उपज है जो मानते थे कि यदि किसी भी लोकतंत्र के नागरिक सुशिक्षित न हों तो वह बचा नहीं रह सकता। संयुक्त राज्य के दूसरे

राष्ट्रपति जॉन एडम्स ने लिखा था, ''लोगों में सामान्य ज्ञान के बिना स्वतंत्रता को बचाए नहीं रखा जा सकता।''

इसलिए सामाजिक शिक्षा के पैरोकार आई.ई.ए. के नागरिक शिक्षा अध्ययन में आगे भाग न लेने के सरकार के निर्णय से हतोत्हासित हैं, क्योंकि इससे यह निराशाजनक सन्देश जाता है कि इतिहास, भूगोल और नागरिक शास्त्र के ज्ञान को नापना बेकार है।

यूएस में सार्वजनिक स्कूली शिक्षा का तेजी से विकास सही तौर पर हॉरेस मान के नेतृत्व में 1830 के दशक में शुरू हुआ। वे स्कूलों के माध्यम से लोकतांत्रिक नागरिकों को ढालने के संस्थापकों के आदर्शों को मानते थे। इस दृष्टि के अनुसार ही यूएस में सामाजिक विज्ञान शिक्षा का उद्देश्य युवाओं को अपनी सरकार की कार्यप्रणाली के बारे में बुनियादी जानकारी, व्यक्ति पर जोर देने वाले अधिकारों की समझ, और जो संस्थाएँ व्यवस्थाओं को बनाए रखने के लिए अतिआवश्यक हैं उनमें आधारभूत भरोसा प्रदान करना था, और अभी भी है। जैसा ऐलिनॉर रूजवेल्ट ने कहा था, ''हमारे बच्चों को उनकी सरकार के सामान्य ढाँचों को जानना चाहिए, और फिर उन्हें यह जानना चाहिए कि वे कहाँ सरकार के सम्पर्क में आते हैं, कहाँ वह उनके दैनिक जीवन को छूती है और कहाँ सरकार पर उनका प्रभाव पड़ता है। यह उनके लिए दूर की बात, या किसी और का सरोकार नहीं होना चाहिए, बल्कि उनको यह समझना जरूरी है कि कैसे लोकतंत्र के पहिए का हर दाँता महत्वपूर्ण है और पूरी मशीन के सुचारु रूप से चलने के लिए जिम्मेदार है।''

सामाजिक विज्ञान पाठ्यक्रम में परम्परा और प्रगति के बीच में यही तनाव संसार के अपेक्षाकृत नए लोकतंत्रों जैसे अफ्रीका और भूतपूर्व सोवियत खेमे के देशों में दिखाई देता है। यूएस और पश्चिमी यूरोप की तुलना में इन देशों की प्रवृत्ति सामाजिक रूप से अधिक रूढ़िवादी होती है और उनमें आलोचनात्मक सोच और व्यक्तिगत सक्रियता पर जोर देने की उतनी सम्भावना नहीं होती।

हालाँकि, सामाजिक विज्ञान शिक्षा अमेरिकी स्कूलों का एक केन्द्रीय अंग है, और हमेशा रहा है, परन्तु अधिकांश अमेरिकी लोग निम्न स्तर का राजनैतिक ज्ञान प्रदर्शित करते हैं। इसलिए सामाजिक शिक्षा के पैरोकार आई.ई.ए. के नागरिक शिक्षा अध्ययन में आगे भाग न लेने के सरकार के निर्णय से हतोत्हासित हैं, क्योंकि इससे यह निराशाजनक सन्देश जाता है कि इतिहास, भूगोल और नागरिक शास्त्र के ज्ञान को नापना बेकार है। इन विषयों का स्थान सुरक्षित करने के संघर्ष के अलावा, यूएस में सामाजिक विज्ञान समुदाय कई बार इस बात को लेकर, कि क्या पढ़ाया जाना चाहिए, आपस की लड़ाइयों में उलझ जाता है। इस जटिल वाद विवाद के अतिसरलीकरण का जोखिम उठाते हुए, इस मुद्दे को ''बहुसंस्कृतिवादी'' की तरह निरूपित किया जा सकता है। जैसे जो ऐसी पाठ्यचर्या देखना चाहते हैं जिसकी प्रकृति अन्तर्राष्ट्रीय हो और जो अल्पसंख्यकों के ऐतिहासिक और सांस्कृतिक योगदानों को रेखांकित करता हो – बनाम ''परम्परावादी''. जो प्रेरक चरित्रों (उदाहरण के लिए जॉर्ज वॉशिंगटन) और देशभक्तिपूर्ण आख्यान पर ध्यान दिए जाने के पक्षधर हैं। शिक्षा व्यवस्था के विकेन्द्रित स्वरूप के कारण, अपेक्षाकृत उदार जिलों के अमेरिकी विद्यार्थी प्रायः ऐसी सामाजिक शिक्षा पाते हैं जिसकी प्रकृति अधिक अन्तर्राष्ट्रीय होती है, जबकि अनुदार जिलों के विद्यार्थी अधिक परम्परावादी चश्मे से देखना सीखते हैं।

ऑस्ट्रेलिया में भी विकेन्द्रित व्यवस्था है जिसमें स्कूलों के लिए मुख्य रूप से राज्य और क्षेत्र जिम्मेदार हैं। सामाजिक विज्ञान शिक्षण द्वारा प्रदान की गई नागरिक क्षमताओं की ऑस्ट्रेलियाई विद्यार्थियों की उपलब्धि भी अमेरिका की तरह ही प्रभावहीन है। आईईए के नागरिक शिक्षा अध्ययन पर ऑस्ट्रेलिया सरकार की रिपोर्ट कहती है कि ''केवल आधे ऑस्ट्रेलियाई विद्यार्थियों को ही सुचारु ढंग से काम करने वाले लोकतंत्र के लिए अनिवार्य पूर्व शर्तों की समझ होती है। उन्हें इसकी गहरी समझ नहीं है कि उनके नागरिक अधिकारों में क्या निहित है...न ही उन्हें लोकतांत्रिक व्यवस्था की कार्यप्रणाली पर आर्थिक मुद्दों के प्रभाव की गहरी समझ है।'' इसे सुधारने की जरूरत के अलावा ऑस्ट्रेलिया के सामने उसकी मूल आबादी में व्याप्त गरीबी और असमान अवसरों के दुस्साध्य मुद्दे भी हैं। सरकार पर अक्सर आरोप लगते रहते हैं कि समस्या के समाधान के लिए सामाजिक विज्ञान की पाठ्यचर्या में यूरोप–केन्द्रित पक्षपात को दूर करने के लिए वह समुचित कार्यवाही नहीं करती। ऑस्ट्रेलियाई राष्ट्रीय पाठ्यचर्या के एक नए मसौदे पर अभी परामर्श चल रहा है, और यदि वह सामाजिक विज्ञान पाठ्यपुस्तकों के दोषों को दूर करने में सफल होता है तो वह अन्य देशों को भी उनके वंचित समूहों को ताकतवर बनाने के लिए एक प्रारूप प्रदान कर सकता है।

भूमण्डल की दूसरी तरफ, पश्चिमी यूरोप में, शिक्षा सामान्यतया

केन्द्रीकृत मामला है। एक पुराना चुटकुला है कि फ्रान्स के शिक्षामंत्री किसी भी दिन अपनी घड़ी देखकर आपको एकदम ठीक–ठीक बता सकते हैं कि उस समय सारे फ्रान्स में कौन सा पाठ पढ़ाया जा रहा है। वाकई, फ्रान्स में सामाजिक विज्ञान शिक्षा का एक विशेष लक्षण केन्द्रीय राज्य के प्रति सम्मान की भावना और एक अखण्ड फ्रान्सीसी पहचान को बढ़ावा देने में एक समान होना रहा है। पर, फ्रान्स और यूके, जर्मनी, नीदरलैण्ड और स्कैन्डीनेवियाई देशों सहित उसके पड़ोसी, उस महाद्वीप में हो रहे दो प्रमुख परिवर्तनों के द्वारा सामाजिक विज्ञान शिक्षा की भूमिका को मिल रही चुनौती का सामना कर रहे हैं। पहली है, अफ्रीका और मध्यपूर्व से हो रहे आप्रवासन की लहर, जिसने इन लोकतंत्रों को ठिठककर यह सोचने पर, कि वे सचमुच में कितने सहिष्णु और समतावादी हैं, और फ्रेंच, डैनिश, जर्मन आदि होने का मतलब क्या है, इसकी सम्भावित अधिक व्यापक धारणा बनाने पर मजबूर किया है। दूसरा परिवर्तन यूरोपीय यूनियन की स्थापना और उसका विकास है। जिसकी माँग है कि पाठ्यचर्या एक विशेष राष्ट्रीय आख्यान का बोध कराने और ईयू के सदस्यों की परस्पर राजनैतिक और आर्थिक निर्भरता की समझ को बढ़ावा देने के बीच सन्तुलन बनाए। यूरोप की राष्ट्रीय सरकारों को इस चुनौती का सामना बहुत सम्भलकर करने की जरूरत है। क्योंकि एक तरफ संघ के लाभ हैं तो दूसरी ओर अनेक मतदाताओं के मन में ईयू के प्रति गहरा संशय है। कुछ दृष्टियों से, यह यूएस में बहुसंस्कृतिवादियों और परम्परावादियों के बीच चलने वाली रस्साकशी से भिन्न नहीं है। सामाजिक विज्ञान के विषय नागरिकों की राजनैतिक और राष्ट्रीय पहचान बनाने में ऐसे तरीकों से प्रमुख भूमिका निभाते हैं इसलिए वे हमेशा, समाज कैसा दिखना चाहिए और उसे कैसे काम करना चाहिए, इसकी दो (या अधिक) कल्पनाओं के बीच फंसे हुए प्रतीत होते हैं।

सामाजिक विज्ञान पाठ्यचर्या में परम्परा और प्रगति के बीच में यही तनाव संसार के अपेक्षाकृत नए लोकतंत्रों जैसे अफ्रीका और भूतपूर्व सोवियत खेमे के देशों में दिखाई देता है। यूएस और पश्चिमी यूरोप की तुलना में इन देशों की प्रवृत्ति सामाजिक रूप से अधिक रूढ़िवादी होती है और उनमें आलोचनात्मक सोच और व्यक्तिगत सक्रियता पर जोर देने की उतनी सम्भावना नहीं होती। फिर भी, वे यह जानते हैं कि उन्हें, वर्ल्ड सोशल साइंस रिपोर्ट 2010 के शब्दों में ''मानवता के सामने खड़ी बड़ी चुनौतियों, जैसे कि गरीबी, महामारी और जलवायु परिवर्तन से जूझने के लिए सामाजिक विज्ञानों की पहले से कहीं ज्यादा जरूरत है''। विडम्बना यह है कि अफ्रीका के अधिकांश उप–सहारा क्षेत्र की शिक्षा के द्वारा नागरिक क्षमताएँ विकसित करने की असमर्थता उत्तरी भभूमण्डल के द्वारा थोपे गए ढाँचागत सुधारों, जो गरीब देशों को शिक्षा पर व्यय में कटौती करने पर मजबूर करते हैं, के कारण और बढ़ जाती है। यदि ये लोकतंत्र अपने विद्यार्थियों को नागरिकता की जिम्मेदारियों के लिए तैयार करने में असमर्थ रहते हैं तो धनी देशों द्वारा नए लोकतंत्रों की मदद करने की व्यक्त की गई इच्छा के सफल होने की कोई सम्भावना नहीं दिखती।

इसके अतिरिक्त, सामाजिक विज्ञान शिक्षा के असर के बारे में हुए शोधों के परिणामों से संकेत मिलता है कि सहभागिता वाली विद्यार्थी–केन्द्रित शिक्षा पद्धति ही नागरिक अवधारणाएँ सिखाने का सर्वश्रेष्ठ तरीका है। ऐसी शिक्षण पद्धति उत्तरी भूमण्डल में अधिक प्रचलित है, बजाय दक्षिणी भूमण्डल के जहाँ शिक्षक–केन्द्रित रटकर सीखने की अपेक्षाकृत अधिक पारम्परिक पद्धति आम है। इन चुनौतियों के बावजूद, अफ्रीका के कुछ देश सामाजिक विज्ञान शिक्षा में बड़े कदम उठा रहे हैं। उदाहरण के लिए, रवांडा का शिक्षा मंत्रालय इस बात को जरूरी मानने से नहीं हिचकिचाया कि विद्यार्थी, टुटू और टुटसी जनजातियों के बीच हुई हिंसा में संचार माध्यमों की भूमिका सहित, 1994 के नरसंहार के बारे में जानें। दक्षिण अफ्रीका में, जो अभी भी रंगभेद के घावों को भरने की मशक्कत कर रहा है, राष्ट्रीय पाठ्यचर्या विभिन्न विषयक्षेत्रों में ''गरीबी, असमानता, नस्ल, लिंग, उम्र, विकलांगता, और ऐसी चुनौतियों जैसे कि एचआईवी/एडज के प्रति संवेदनशील होने'' का प्रयास करती है। अतीत के दैत्यों का सामना करना आसान काम नहीं है, लेकिन विद्यार्थियों को उनके इतिहास के बारे में सच बताकर ही कोई देश शान्तिपूर्ण भविष्य का निर्माण करने की आशा कर सकता है।

इराक एक ऐसा देश है जो अपने हाल के अतीत को समझने, उससे निपटने, और उसे स्कूलों में कैसे पेश किया जाए, यह सोचने के दौर से गुजर रहा है। न्यूयॉर्क टाइम्स का एक हाल का लेख ''इन रिराइटिंग हिस्ट्री, इराक ट्रैड कॉशसली'' संघर्ष के बीच में सामाजिक विज्ञान पाठ्यचर्या को पूरी तरह दुरुस्त करने की कठिनाई पर प्रकाश डालता है। इस बात पर ध्यान दिलाते हुए, कि सद्दाम हुसैन के हटाए जाने तक इराक में इतिहास की शिक्षा ''बाथ पार्टी के तौर–तरीकों को मन में बैठाने का और जनाब हुसैन के महिमामण्डन को बढ़ावा देने का औजार'' थी, यह लेख दर्शाता है कि उसकी मृत्यु के बाद देश के विभिन्न सम्प्रदायों में कोई सहमति नहीं बन पाई है कि किसके दृष्टिकोण से देखा गया इतिहास स्कूलों में पढ़ाया जाना चाहिए।

यहाँ फिर यह खींचतान, कि सामाजिक विज्ञान के मापदण्ड परिभाषित करने का हक किसे है, संसार के अन्य भागों में, बहुसंस्कृतिवादियों और परम्परावादियों के बीच, यूरोप पर जोर देने वाले ईयू समर्थकों और ईयू के प्रति संशयवादियों के बीच, और

सहभागितापूर्ण शिक्षण पद्धति और रटकर सीखने के बीच चल रहे संघर्ष को प्रतिध्वनित करती है। जहाँ इन भिन्न दृष्टिकोणों के बीच अलंघ्य प्रतीत होने वाली खाई को देखते हुए हताश हो जाना आसान है, वहीं इस मतभेद में एक शैक्षिक अवसर को खोजना भी सम्भव है, और शिक्षकों की हैसियत से वही करना हमारे लिए जरूरी है। जैसा कि वर्ल्ड सोशल साइंस रिपोर्ट 2010 हमें याद दिलाती है, ''मनुष्यों के पारस्परिक व्यवहार से यह समझने में कि संसार कैसे काम करता है,'' सामाजिक विज्ञान हमारी मदद करता है। सामाजिक विज्ञान शिक्षा प्रदान करने का सबसे अच्छा तरीका क्या हो, इसकी बहस अपने आप में अगली पीढ़ी के नागरिकों के लिए एक सबक है; यदि हम अपने मतभेदों पर सौजन्यतापूर्वक और एक साझा उद्देश्य की भावना से चर्चा कर सकें, तो हम उन्हें दिखा पाएँगे कि जिम्मेदार होने और वैश्विक समुदाय के सक्रिय सदस्य होने का क्या मतलब है। वाकई, हमारी सबसे गम्भीर साझा चुनौतियों – गरीबी से लेकर युद्ध और जलवायु परिवर्तन तक – का समाधान खोजना इस पर निर्भर करता है कि हम कितने कारगर ढंग से आज सामाजिक विज्ञान पढ़ाते हैं।

ऐन हॉर्विटज़ *ने अन्तर्राष्ट्रीय शिक्षा नीति में अपनी मास्टर की डिग्री हार्वर्ड विश्वविद्यालय से प्राप्त की। वे पेरिस में यूनैस्को के सैक्शन फॉर ऐजुकेशन इन पोस्ट कॉनफ्लिक्ट एण्ड पोस्ट डिजॉस्टर सिचुएशन्स में परामर्शदाता हैं। उनसे इस ann.horwitz@gmail.com ईमेल पते पर सम्पर्क किया जा सकता है ।*

10 इतिहास का और खुद का सामना करना : इतिहास पढ़ना एक नैतिक उद्यम है

मार्टिन स्लीपर और ऐडम स्ट्रॉम

इतिहास की शिक्षा के उद्देश्यों पर अपने विचार व्यक्त करते हुए ब्राजील के एक हाईस्कूल छात्र राक्वेल एफ., जिन्होंने क्वीन्स, न्यूयॉर्क स्थित इंटरनेशनल हाईस्कूल में फेसिंग हिस्ट्री एण्ड अवरसैल्व्ज़ (इतिहास का और खुद का सामना करना) का कोर्स किया, ने समझाया :

''कभी–कभी ब्राजील के मेरे स्कूल में ऐसा लगता था जैसे भाप से ढँकी हुई खिड़कियों वाली कक्षा में बैठना। रोशनी अन्दर आती थी पर आप बाहर नहीं देख सकते थे। इतिहास, अगर अच्छी तरह पढ़ाया जाता है, तो वह उस काँच को पारदर्शी बना सकता है। अपने जीवन और जो कुछ आप स्कूलों में सीखते हैं, उसके बीच के सम्बन्ध को आप स्पष्ट रूप से देख और समझ सकते हैं।''

''मुझे पता है कि हम दोषारोपण करने के लिए इतिहास नहीं सीखते हैं। मेरी सौतेली माँ के परिवार के सभी सदस्य जर्मन हैं। तो क्या मुझे होलोकॉस्ट (विभीषिका) के दौरान घटी ज्यादतियों के लिए उसे जिम्मेदार ठहराना चाहिए? अतीत की गलतियों के लिए हम अगली कितनी पीढ़ियों को दोषी ठहराते रहेंगे?मैं बस उस के लिए जिम्मेदार हूँ जो मैं करता हूँ, न कि उसके भी लिए जो कि मेरे पूर्वजों ने किया था।''

''आइए अब हम यह सोचें कि हम कौन सा इतिहास सीखते हैं। यह बहुत महत्वपूर्ण है कि हम अप्रिय हिस्सों को भी पढ़ें, क्योंकि अप्रिय हिस्सों से ही हम वाकई में कुछ सीखते हैं। इन्हीं हिस्सों में हम उन द्वंदों से वाकिफ हो सकते हैं जो हमें खुद को समझने में मदद करते हैं।''

राक्वेल की ये बातें हमारा ध्यान युवा लोगों के बारे में एक बुनियादी सत्य की ओर खींचती हैं : उनके पास ऐतिहासिक मुद्दों को अपनी जिन्दगियों से जोड़ने की क्षमता भी है और प्रवृत्ति भी। इसी विधि से वे लोग अतीत का अर्थ लगाते हैं। संज्ञानात्मक अंगों के अलावा इतिहास की शिक्षा से बच्चों को जटिल, शैक्षणिक रूप से सुदृढ़, और व्यक्तिगत तरीकों से उनके खिलते हुए नैतिक दर्शन – उनकी अपनी अनोखी आवाज – को विकसित करने में मदद मिलना चाहिए। इतिहास को खुद के साथ जोड़ लेने से विद्यार्थी एक ऐसी बौद्धिक और नीतिपरक शब्दावली विकसित कर सकते हैं जिसका उपयोग वे अपने इतिहास के अध्ययन के लिए, और उनके खुद के नागरिक परिवेशों के घेरे में लिए गए निर्णयों के लिए उसकी सार्थकता के बारे में सोचने के लिए कर सकें।

इतिहास तब जीवन्त हो पाता है जब विद्यार्थी अपनी दुनियाओं से इसका सम्बन्ध जोड़ते हैं जिससे उन्हें इतिहास के नायकों से जुड़ने, उनकी प्रेरणाओं, निर्णयों, और कार्यों का अर्थ समझ पाने में मदद मिलती है। साथ ही, विद्यार्थियों को इस बारे में नई दृष्टि मिलती है कि आज उनके व्यक्तिगत जीवन में तथा बृहद् दुनिया में क्या हो रहा है। इतिहास के अध्ययन तथा आज की दुनिया के अध्ययन के बीच आगे–पीछे हो सकने की यह गतिशीलता किशोरों के लिए – जो खुद को वृहद् इतिहास के हिस्से के रूप में देखने और परिभाषित करने लगे हैं और अक्सर ''अन्तर पैदा करने'' के तरीके ढूँढ़ने लगे हैं – विशेष रूप से अति आवश्यक हो जाती है। यह फेसिंग हिस्ट्री एण्ड अवरसैल्व्ज़ की शिक्षण पद्धति का, इस संगठन की स्थापनाके समय से ही, अभिन्न हिस्सा रहा है।[1]

यह कह चुकने के बाद, कहना होगा कि वर्तमान समय के सामाजिक व नागरिक मुद्दों से सम्बन्ध जोड़ते हुए इतिहास का अध्ययन करना लगातार बौद्धिक चुनौतियाँ पेश करता है । घटनाओं को उनके ही ऐतिहासिक सन्दर्भ के अन्तर्गत समझना, सतही समानता रखने वाली घटनाओं के बीच सरल तुलनाएँ करने से बचना, और यह समझ पाना कि किस प्रकार अतीत की घटनाओं ने वर्तमान को प्रभावित किया है (या नहीं किया है)। इसमें ऐतिहासिक अवधारणाओं और जाँच–पड़ताल की पद्धतियों के द्वारा किसी खास इतिहास की समझ को और उसके सार्वभौमिक आशयों के मूल्यांकन को प्रभावित करना शामिल रहता है। इसका मतलब खुद को इतिहास के द्वारा गढ़े जाने वाले व्यक्ति की तरह, और उसके अविरत चलने वाले निर्माण में एक खिलाड़ी के रूप में देखना शामिल है।

''इतिहास का सामना करने'' में विद्यार्थियों की मदद करने के लिए इस पर विचार करना अत्यावश्यक है कि विद्यार्थियों की भिन्न–भिन्न व्यक्तिगत और शैक्षणिक पृष्ठभूमियों तथा संज्ञानात्मक विकास के अलग–अलग स्तरों को ध्यान में रखते हुए उनके द्वारा पाठ्यसामग्री को किस तरह समझ पाने की सम्भावना है। इसके लिए ऐसे पाठ और कार्य तैयार करना जरूरी है जो उनके द्वारा व्यक्त किए जाने वाले प्रश्नों और उनकी अनकही चिन्ताओं का समाधान करें, जिससे उन्हें इतिहास की और खुद की एक गहरी समझ बनाने में मदद

मिल सके। साथ ही, शिक्षकों की हैसियत से, हमें इस बात का खयाल रखना होगा कि हम यह मानकर न चलें कि हम जानते हैं कि पाठ्यसामग्री के किसी खास अंश को विद्यार्थी किस तरह लेंगे या कौन से प्रश्न उठाएँगे। इसका मतलब हुआ कि विद्यार्थियों के स्वयं के विचारों को विषयवस्तु के ऊपर लिखने के दौरान तथा कक्षा में चर्चा के दौरान व्यक्त करने की पूरी स्वतंत्रता देना।

> *वस्तुतः इतिहास के किसी भी अर्थपूर्ण अध्ययन के लिए जरूरी है कि अतीत की घटनाओं की तरफ, तथा हम मनुष्यों की हैसियत से खुद को किस तरह से समझते हैं, और किस तरह हम व्यक्तिगत रूप से और सामूहिक रूप से अपना जीवन जीते हैं, इस सबको लेकर उन घटनाओं के क्या निहितार्थ हैं, इसके बारे में बौद्धिक रूप से ईमानदार दृष्टि रखी जाए।*

वस्तुतः इतिहास के किसी भी अर्थपूर्ण अध्ययन के लिए जरूरी है कि अतीत की घटनाओं की तरफ, तथा हम मनुष्यों की हैसियत से खुद को किस तरह से समझते हैं, और किस तरह हम व्यक्तिगत रूप से और सामूहिक रूप से अपना जीवन जीते हैं, इस सबको लेकर उन घटनाओं के क्या निहितार्थ हैं, इसके बारे में बौद्धिक रूप से ईमानदार दृष्टि रखी जाए। विद्यार्थियों और शिक्षकों, दोनों ही के लिए इस प्रक्रिया में सही–सही विश्लेषण के साथ–साथ भावनात्मक जुड़ाव होना भी जरूरी होता है – और इसे फेसिंग हिस्ट्री एण्ड अवरसैल्व्ज़ में दिमाग और दिल कहा जाता है। इस पाठ्यक्रम में बार–बार संज्ञानात्मक असंगति, भावनात्मक बेचैनी और चुभने वाली नैतिक जाँच–पड़ताल सामने आती हैं। नई जानकारी, नए दृष्टिकोण और नए सम्बन्ध बार–बार विद्यार्थियों और शिक्षकों को इतिहास, वर्तमान मुद्दों और स्वयं के बारे में अपनी समझ पर पुनर्विचार करने की चुनौती देते हैं।

> *एक जीवन्त–सजीव, पहुँच के भीतर, अर्थपूर्ण और महत्वपूर्ण इतिहास तटस्थता से लेकर सक्रिय संवेदना तक के पूरे नैतिक विस्तार को दर्शाने वाली मानवीय प्रक्रियाओं को रेखांकित करता है। ऐसे इतिहासों को जुड़ाव और मनन के साथ सीखना युवा आदर्शवाद को जगाता है, क्योंकि युवा लोगों को बोध होता है कि इतिहास बनाने में उन्हें भी भूमिका निभाना है।*

शिक्षकों और विद्यार्थियों को आवश्यक नागरिकीय और नैतिक सम्बन्ध बनाने में मदद करने के लिए इतिहास के माध्यमिक स्कूली पाठ्यक्रमों को एक साझा धुरी के इर्द–गिर्द निर्मित करना सबसे अच्छा होता है। यह ढाँचा, जिसे फेसिंग हिस्ट्री एण्ड अवरसैल्व्ज़ अपना ''विस्तार और अनुक्रम'' कहता है, जाँच–पड़ताल को व्यवस्थित करता है और उस यात्रा को आकार देता है जो शिक्षक और विद्यार्थी साथ–साथ करते हैं। इसे अक्सर एक वृत्ताकार या पेंचदार यात्रा की तरह दर्शाया जाता है; यात्रा का हर चरण न केवल पहले के तत्वों को आधार बनाकर आगे बढ़ता है, बल्कि उसकी अधिक गहरी और विस्तारित समझ बनाने में भी सहायक होता है। एक दृष्टि से फेसिंग हिस्ट्री एण्ड अवरसैल्व्ज़ की एक यात्रा पहचान और समूह की सदस्यता के विचार से शुरू करके ऐतिहासिक अध्ययन से होते हुए समाज में व्यक्ति की भूमिका की परिपूर्ण समझ पर पहुँचती है। दूसरी दृष्टि से, यह यात्रा दोहरी पेंचदार गति के समान अधिक होती है जिसमें ''इतिहास का सामना करने'' और ''अपना सामना करने'' के बीच निरन्तर पारस्परिक अन्तर्क्रिया चलती रहती है जिसमें प्रत्येक दूसरे का बोध बढ़ाता है।

प्रसिद्ध विदुषी और मानवाधिकारकर्मी समांथा पावर ने इतिहास के ऐसे पाठ्यक्रमों की सराहना की है जिनमें पारम्परिक तरीके से राष्ट्र–राज्यों और साम्राज्यों तथा उनके नेताओं और उनके अधिकृत प्रतिनिधियों के क्रियाकलापों पर ध्यान केन्द्रित करने के बजाय, बारीकियों पर ध्यान देते हुए और विकेन्द्रित दृष्टिकोण अपनाते हुए ऐसे लोगों की कहानियों को महत्व दिया जाता है जिनके व्यक्तिगत और सामूहिक निर्णयों ने घटनाओं के प्रवाह को दिशा दी। इस तरह से देखने पर, इतिहास स्थिर न होकर, निर्धारित और अपरिहार्य न होकर, निरन्तर प्रवाहमान होता है। प्रसिद्ध और गैर–प्रसिद्ध, दोनों ही प्रकार के लोग इसके संचालक होते हैं। जो हुआ उससे भिन्न भी हो सकता था बशर्ते कि भिन्न विकल्प चुने गए होते। इसी प्रकार सामूहिक हिंसा के वृत्तान्तों के इतिहास में, जैसा कि उसे फेसिंग हिस्ट्री एण्ड अवरसैल्व्ज़ द्वारा पढ़ाया जाता है, प्रमुख रूप से और केवल, हिंसा करने वालों और उसके शिकारों की ही कहानियाँ नहीं होतीं। बल्कि एक जीवन्त इतिहास – सजीव, पहुँच के भीतर, अर्थपूर्ण और महत्वपूर्ण – तटस्थता से लेकर सक्रिय सम्वेदना तक के पूरे नैतिक विस्तार को दर्शाने वाली मानवीय प्रक्रियाओं को रेखांकित करता है। ऐसे इतिहासों को जुड़ाव और मनन के साथ सीखना युवा आदर्शवाद को जगाता है, क्योंकि युवा लोगों को बोध होता है कि इतिहास बनाने में उन्हें भी भूमिका निभाना है।

एक कारगर शैक्षणिक पद्धति विद्यार्थियों को यह समझने में मदद करने की है कि किस तरह अतीत की विचार प्रक्रियाएँ और संस्थाएँ समय के बीतने से प्रभावित होती हैं – वह अवधारणा जिसे

इतिहासकार ''निरन्तरता और परिवर्तन'' कहते हैं। यह अवधारणा सुझाती है कि जहाँ मानवीय स्थिति की कुछ प्रवृत्तियाँ अतीत और वर्तमान, दोनों से जुड़ी रहती हैं, इन सम्बन्धों की प्रकृति समय के साथ बदलती जाती है। उदाहरण के लिए, अमानवीकरण की प्रक्रिया को लें, जिसकी कई प्रसंगों के अपने अध्ययन में फेसिंग हिस्ट्री पड़ताल करता है। अमानवीकरण उन क्रमिक चरणों का ऐसा जाना–पहचाना ''संकेतक'' है जो धीरे–धीरे अन्ततः नरसंहार तक ले जाते हैं। इस सन्दर्भ में नाजियों द्वारा यहूदियों के अमानवीकरण, और रवांडा के नरसंहार में टुटसी लोगों के अमानवीकरण में कुछ खास गतिमान विशेषताएँ साझा रूप से देखी जा सकती हैं। पर यह कहने के बाद, यह भी कहना होगा कि इन दोनों कालखण्डों और सामाजिक सन्दर्भों में से प्रत्येक में अमानवीकरण की अपनाई गई विशेष विधियाँ और नीतियाँ भिन्न रूपों में प्रगट हुईं।

शिक्षकों के लिए चुनौती यही है कि विद्यार्थियों की यह अन्वेषण करने में मदद की जाए कि ऐसे विचार और संस्थाएँ किस तरह समय बीतने पर ''जारी रहती हैं'' और साथ ही ''बदलती'' भी हैं। और भी महत्वाकांक्षी लक्ष्य है विद्यार्थियों की यह देखने में मदद करना कि यह विरोधाभास अतीत और वर्तमान के किसी भी गहरे अन्वेषण का अनिवार्य हिस्सा है।

युवा लोग अक्सर इतिहास को ''चीजें जैसी थीं'' इस नजरिए से देखते हैं, बजाय ऐसी प्रक्रिया के जो व्यक्तियों, समूहों और समाजों के क्रियाकलापों सहित अनेक कारकों से प्रभावित होती है। वे अक्सर ऐतिहासिक विवरणों को किसी भी प्रकार के सन्दर्भ में रखे बगैर सच मानकर चलते हैं। हो सकता है कि वे कारण और कार्यकारी माध्यम के एक आयामी प्रतिरूपों का इस्तेमाल करें, जैसे कि यह कहकर कि यहूदियों का सामूहिक संहार हिटलर नाम के एक पागल आदमी के ''कारण हुआ'' था, और फिर यह समझाने का प्रयास करें कि ''क्यों उसने सभी यहूदियों को मार डाला''। ऐसे कृत्यों, जो उन्हें आज के मानकों के हिसाब से साफ तौर पर नासमझी भरे और अनैतिक लगते हैं, से विचलित होकर उनमें पीड़ित व्यक्तियों के साथ सम्वेदना अनुभव करने, पहचाने जा सकने वाले आततायियों और मूकदर्शकों को दोष देने, और उनकी नैतिक दृष्टि को ढँकने वाले भेदों और व्याख्याओं का प्रतिरोध करने की प्रवृत्ति होती है।

थोड़े और जटिल स्तर पर विद्यार्थी मिश्रित तस्वीरें निर्मित करते हैं। वे प्रमाणों के अनेक स्रोतों को एकजुट करते हैं। वे यह समझते हैं कि घटनाओं के अनेक कारण हो सकते हैं और बदलाव के लिए किसी ताकत को ऐसे प्रतिरोध का सामना करना पड़ सकता है जिससे पार पाना कभी सम्भव होता है, और कभी नहीं। वे व्यक्तियों की धारणाओं और कृत्यों को उनके चारों ओर जो हो रहा है, उससे प्रभावित होता हुआ तो देखते हैं, पर उससे निर्धारित होता हुआ नहीं मानते। हो सकता है वे सोचें कि लोगों ने जो विकल्प चुने वे क्यों चुने, और यदि वे उनके स्थान पर होते तो क्या करते। जब वे अतीत और वर्तमान का सम्बन्ध जोड़ते हैं तो हो सकता है कि वे दूसरों के स्थान पर अपने को रखने का भरपूर प्रयास करें। इस बात का अहसास होने पर कि वे स्वयं अपने ही आदर्शों पर हमेशा खरे नहीं उतरते, वे दूसरों को आँकने में उदार हो सकते हैं। पर इसके साथ ही उदीयमान नैतिक दार्शनिकों की तरह वे अतीत और वर्तमान के लोगों से अपनी साझा मानवता को स्वीकारने की, एक–दूसरे की जरूरतों को पहचानने और उनका ध्यान रखने की, और अपने नजदीकी दायरे से दूर के लोगों की फिक्र करने की अपेक्षा करते हैं।

दृष्टिकोण थोड़ा और विकसित होने पर, युवा और वयस्क इतिहास को कई चश्मों के माध्यम से देख सकते हैं। वे समझते हैं कि व्यक्तिगत चुनाव और कृत्य अनेक परस्पर सक्रिय कारकों द्वारा प्रभावित और सीमित होते हैं, और वे विविध पृष्ठभूमियों, परिस्थितियों और ऐतिहासिक कालखण्डों में साझा रचनाएँ खोजते हैं। वे जानते हैं कि वर्णित ''तथ्य'' अक्सर ऐसे दृष्टिकोणों से छनकर आते हैं जो संस्कृति, विचारधारा और अनुभव से प्रभावित होते हैं। अतः किसी कहानी को देखने के कई कोण हो सकते हैं, पर यह जरूरी नहीं कि सभी समान रूप से महत्वपूर्ण हों। इस बारे में विद्वान लोग ईमानदारी से असहमत हो सकते हैं कि कोई बात क्यों हुई और यदि अन्य निर्णय लिए गए होते तो क्या हो सकता था। उनके विवरणों और व्याख्या सिद्धान्तों का आलोचनात्मक मूल्यांकन करना विद्यार्थियों के लिए सम्भव है। इतिहास की प्रामाणिक समझ के लिए ऐतिहासिक प्रमाणों को इकट्ठा करने और उनके महत्व को आँकने का ईमानदार प्रयास करना आवश्यक है।

ऐतिहासिक विवरणों की छानबीन करके विद्यार्थी मनुष्य की प्रकृति के बारे में निष्कर्ष निकाल सकते हैं। परन्तु उन्हें नैतिक सापेक्षवाद, दोष दर्शन या हताशा में फंस जाने की जरूरत नहीं है; इसके बजाय जब वे जानकारी पर आधारित विचारपूर्ण निर्णय लेंगे और अपने आदर्शों पर चलने की कोशिश में अपरिहार्य रूप से कठिनाइयों का सामना करेंगे, तो वे सक्रिय बोध, चिन्तन और सावधानीपूर्वक सोचे–समझे कृत्यों का मार्ग अपना लेंगे।

फेसिंग हिस्ट्री की कक्षाओं में अतीत और वर्तमान के बीच जानकारी पर आधारित तुलनाएँ करना एक नीरस शैक्षणिक अभ्यास हो यह जरूरी नहीं है, वास्तव में ऐसा होना भी नहीं चाहिए। ऐतिहासिक और समसामयिक विवरण जिस समानुभूति, चिन्ता, क्रोध और नैतिक नाराजगी को जगाते हैं, वे सभी भाव क्रियात्मक विश्लेषण में

और समझने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। जब हम विद्यार्थियों को फिक्र (शब्द के सभी अर्थों में) से पढ़ने, निरीक्षण करने और सुनने के लिए प्रोत्साहित करते हैं तो हम उनसे थोड़ी देर के लिए मूल्यांकन करना स्थगित करके दूसरों की आवाजों को सुनने, अपने विश्लेषण में सन्दर्भ की अधिक जानकारी को शामिल करने, और अपने नैतिक आवेश को दबाए बिना अपनी खुद की सोच पर चिन्तन करने को कह सकते हैं। वास्तव में, विद्यार्थियों में मन की ऐसी अनुशासित आदतें, जो प्रामाणिक समझ पाने का प्रयास करती हों, विकसित करने में मदद करके तथा साथ ही भावनात्मक जुड़ाव और नैतिक सोच को समर्थन देकर, हम विचारपूर्ण नैतिक तर्क गढ़ने और जानकारी पर आधारित फैसले और दायित्व लेने की उनकी क्षमता को बढ़ा सकते हैं।

युवा लोग नैतिक दार्शनिक होते हैं। वे अपनी पढ़ाई में पूर्वाग्रह, सहिष्णुता और न्याय की पहले से बनी धारणाएँ लेकर आते हैं। जब वे किशोरावस्था से गुजरते हैं तो उनके मन में ये मुद्दे गहराई तक जम जाते हैं: व्यक्तिगत और सामूहिक पहचान को शामिल करने; और स्वीकारे या ठुकराए जाने, समरूपता और विषमता, लेबल लगाए जाने, बहिष्कार, निष्ठा, औचित्य और हम उम्र लोगों का दबाव इन सब की चिन्ता।

युवा लोग नैतिक दार्शनिक होते हैं। वे अपनी पढ़ाई में पूर्वाग्रह, सहिष्णुता और न्याय की पहले से बनी धारणाएँ लेकर आते हैं। जब वे किशोरावस्था से गुजरते हैं तो उनके मन में ये मुद्दे गहराई तक जम जाते हैं: व्यक्तिगत और सामूहिक पहचान को शामिल करने; और स्वीकारे या ठुकराए जाने, समरूपता और विषमता, लेबल लगाए जाने, बहिष्कार, निष्ठा, औचित्य और हम उम्र लोगों का दबाव जैसी बातों की चिन्ता। हमारे शिक्षण का उनकी नई–नई खोजी गई आत्मदृष्टि, दृढ़ सच्चाइयों और विविध दृष्टिकोणों से, तथा साथ ही काल्पनिक रूप से सोच पाने की उनकी बढ़ती हुई क्षमता, और नए–नए जाने गए क्रियाकलापों में व्यक्तिगत अर्थ ढूँढ़ने के रुझान से सरोकार होना बेहद जरूरी है। वर्तमान और भविष्य को समझने के लिए विद्यार्थियों को अतीत में अर्थ ढूँढ़ने का, और उसके पूर्वाग्रहों, भेदभाव, लचीलेपन और साहस की विरासत समेत इतिहास की पूरी जटिलता में उसकी पड़ताल करने का अवसर मिलने की जरूरत होती है। इतिहास के शिक्षकों की तरह हमारा कार्य ऐसे अध्ययन में सहायता देना है, और यह इस तरह से करना है कि उनकी नैतिक क्षमता का उपयोग हो और जिन समुदायों, समाजों और संसार में वे रहते हैं उनमें उनकी नागरिक भूमिका के बारे में उनकी नैतिक कल्पनाओं को प्रेरणा मिले।

टिप्पणियाँ

1. ऐलेन स्टॉस्कॉफ, ''कोर कॉन्सैप्टस इन हिस्टॉरिकल अंडरस्टैंडिंग'' अप्रकाशित पृष्ठभूमि शोधपत्र, फेसिंग हिस्ट्री एण्ड अवरसैल्व्ज़, 2005
2. फेसिंग हिस्ट्री एण्ड अवरसैल्व्ज़ के पूर्ण विवरण के लिए मॉरिस ऐलियस एवं हैरियट अर्नाल्ड द्वारा सम्पादित द ऐजुकेटर्स गाइड टू इमोशनल इंटैलीजैन्स एण्ड अकैडमिक ऐचीवमेंट (कॉर्विन प्रेस 2006) में पृष्ठ 240.246 पर मार्टिन ई. स्लीपर तथा मार्गोट स्टर्न स्ट्रॉम का लेख ''फेसिंग हिस्ट्री एण्ड अवरसैल्व्ज़'' देखें।

ऐडम स्ट्रॉम *फेसिंग हिस्ट्री एण्ड अवरसैल्व्ज़ में रिसर्च एण्ड डैवेलपमैंट के निदेशक हैं। वे फेसिंग हिस्ट्री के अनेक प्रकाशनों के लेखक व सम्पादक हैं, जिनमें शामिल हैं: 'फन्डामैंटल फ्रीडम्स: ऐलेनॉर रूज़वेल्ट एण्ड द यूनिवर्सल डिक्लेरेशन ऑफ ह्यूमन राइटस' और 'स्टोरीज़ ऑफ आइडैन्टिटी : रिलीजन, माइग्रेशन एण्ड बिलॉगिंग इन ए चेंजिंग वर्ल्ड'। उनसे इस Adam_Strom@facing.org ईमेल पते पर सम्पर्क किया जा सकता है।*

मार्टिन स्लीपर *फेसिंग हिस्ट्री एण्ड अवरसैल्व्ज़ के एसोशिएट ऐक्ज़िक्यूटिव ऐडिटर हैं। फेसिंग हिस्ट्री के स्टाफ में शामिल होने से पहले वे ब्रुकलिन, मैसाचुसेटस में रंकल स्कूल के प्रधानाचार्य थे। इतिहास, नागरिक शास्त्र और नैतिक अध्ययन पर लिखे गए उनके अनेक लेख प्रकाशित हो चुके हैं। उनसे इस marty_sleeper@facing.org ईमेल पते पर सम्पर्क किया जा सकता है।*

11 मानचित्र और राजनीति

एम.एच. कुरैशी

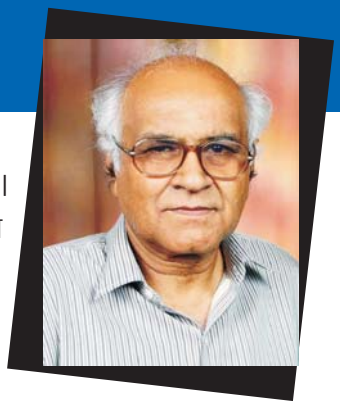

मनुष्यों ने अपने स्थान का ठीक–ठीक निर्धारण करने के लिए हमेशा ही ऐसे निर्देशांकों की मदद से कोशिश की है जो दरअसल उनके मन की ही उपज होते हैं। जब कोई दिशा भूला हुआ अजनबी किसी अन्य व्यक्ति से स्वयं को सही दिशा में इंगित करने के लिए मदद माँगता है, तो यह मदद कभी–कभी कागज पर लाइनें बनाकर, या फिर जमीन पर दिक्बिन्दुओं/दिशासूचकों की सहायता से प्रदान की जाती है। इस तरह की जानकारी देने के लिए किसी व्यक्ति का प्रशिक्षित मानचित्रकार होना जरूरी नहीं है। इस प्रकार, यह तो माना ही जा सकता है कि मानचित्र हमारे दिमाग में होते हैं भले ही हम उनके प्रति सचेत हों या नहीं। प्रारम्भिक मनुष्य भी अपने क्षितिज के बाहर के स्थानों व लोगों के बारे में जानने के लिए उत्सुक रहते थे। अपने क्षितिज के परे क्या है, इस बात ने हमेशा लोगों के मन में उत्सुकता पैदा की है। दूरस्थ स्थानों के बारे में जानकारियाँ कहानियों, यात्रियों के वृत्तांतों, या फिर व्यक्तियों की कल्पनाओं के माध्यम से एक दूसरे तक पहुँचती थीं। वे कहानियाँ जो आमतौर पर इस वाक्य के साथ शुरू होती थीं – ''एक बार, एक राजा था'' आमतौर पर उस काल्पनिक राज्य का विस्तृत वर्णन होती थीं; और पाठकगण हमेशा इसके बारे में एक दिमागी मानचित्र बना लेते थे जो उनके मानस का हिस्सा बन जाता था।

> *यदि हम मानचित्र रचना के ऐतिहासिक उद्भव पर नज़र डालें तो पाते हैं कि मानचित्रकारों ने यथार्थ के बारे में अपनी दृष्टि को निरूपित करने का प्रयास किया। यथार्थ बहुमुखी एवं बहुआयामी होता है; इसलिए इसे दो आयामों में दर्शाना कठिन काम है।*

पृथ्वी के सबसे शुरुआती वर्णन भी ठोस वैज्ञानिक तथ्यों की अपेक्षा दार्शनिक तर्क पर ज्यादा आधारित थे। दार्शनिक अपनी कल्पनाशक्ति का उपयोग करके दार्शनिक तर्क बनाते थे और फिर वैज्ञानिक ऐसे तर्कों को सिद्ध करने या खारिज करने का प्रयत्न करते थे। सिद्ध हो जाने पर वह तर्क एक वैज्ञानिक तथ्य बन जाता है। यदि वैज्ञानिक दार्शनिकों के तर्क को खारिज कर देते थे तो दार्शनिक अपने तथ्यों में थोड़ा हेरफेर करके अपने सिद्धान्त को नया रूप देते थे। शुरुआती यूनानी दार्शनिकों का मानना था कि पृथ्वी गोल तो है पर वह एकदम एक गोला न होकर समुद्र के पानी से घिरी गोल टिकिया की तरह है। यह दृष्टि सम्भवतः प्लेटो के समय तक बनी रही जिसने पहली बार यह विचार सामने रखा कि पृथ्वी एक 'गोला' है। उसने अपने विचारों के लिए कभी कोई साक्ष्य नहीं दिया और न अपनी बात को सिद्ध करने का कोई प्रयास किया। उसके तर्क का मूल मानचित्रकला में न होकर धर्मशास्त्र में था। उसका मानना था कि मनुष्य ईश्वर की सर्वश्रेष्ठ कृति है। मानव शरीर सममित है, अतः ईश्वर ने अपनी सर्वश्रेष्ठ कृति के आवास के रूप में पृथ्वी को बनाया होगा जिसे, तार्किक रूप से, सममित आकार का होना चाहिए। चूँकि, गोला एक पूर्ण सममित भौगोलिक स्वरूप है, अतः पृथ्वी को एक गोलाभ होना चाहिए। उसने ब्रह्मांड के बारे में एक भूकेन्द्रिक राय प्रतिपादित की। इसमें उसने पृथ्वी को केन्द्र में रखा और यह माना कि बाकी सभी खगोलीय पिण्ड पृथ्वी के चारों ओर घूमते हैं। पृथ्वी को लेकर यह भूकेन्द्रिक विचार लम्बे समय तक मौजूद रहा और धार्मिक संस्थाओं ने अपने धर्मादेशों द्वारा इनका प्रचार–प्रसार किया। प्लेटो ने तो कभी अपने तर्क के लिए साक्ष्य पेश करने की कोशिश नहीं की, लेकिन उसके शिष्य अरस्तू ने इस बारे में साक्ष्य देने का प्रयास किया कि पृथ्वी एक गोला है। और इस तरह गोलाकार पृथ्वी को द्विआयामी मानचित्र में रूपान्तरित करने की समस्या मानचित्रकारों के लिए एक सतत चिन्ता का विषय बन गई।

भूगोलवेत्ताओं और मानचित्रकारों ने मानचित्र को अवधारणाबद्ध करके परिभाषित करने का प्रयास किया। पाठ्यपुस्तकों में, आमतौर पर मानचित्र को ''पृथ्वी का या उसके किसी हिस्से का ऊपर से देखे गए अनुसार एक पैमाने पर आधारित द्विआयामी, पारंपरिक निरूपण'' के रूप में परिभाषित किया जाता है। पृथ्वी का द्विआयामी निरूपण – यह अभिव्यक्ति दर्शाती है कि मानचित्र के अर्थ में अधिकारक्षेत्र की भावना जुड़ी रहती है। अधिकारक्षेत्र ने हमेशा न सिर्फ मनुष्यों को बल्कि पशुओं को भी आकर्षित किया है। जहाँ मनुष्यों ने शुरुआत में जीवित रहने के लिए भूक्षेत्रों का औपनिवेशीकरण किया और अपने सामाजिक–आर्थिक विकास के बाद के चरणों में उसके संसाधनों का शोषण किया, वहीं पशुओं ने जीवित रहने हेतु और कमजोर जानवरों पर प्रभुत्व स्थापित करने के लिए अपने क्षेत्र विकसित किए। शेर का क्षेत्र राजाओं के राज्यों से कम महत्वपूर्ण नहीं होता और इसीलिए शेर को जंगल का राजा कहा जाता है। मनुष्य अपने क्षेत्रों का सीमांकन मानचित्र बनाकर करते हैं जबकि पशुओं का अपने क्षेत्रों को चिन्हित करने का ढंग

बड़ा सूक्ष्म होता है। न सिर्फ शेर बल्कि कुत्तों के भी अपने सीमांकित क्षेत्र होते हैं और उनके द्वारा किसी भी अतिक्रमण का बहुत हिंसात्मक ढंग से विरोध किया जाता है। दुनिया भर में कहीं का भी उदाहरण ले लें, कि जब किसी देश की क्षेत्रीय अखण्डता को भंग किया गया है तो उस देश का साहित्य भावात्मक आवेगों से भर जाता है।

यदि हम मानचित्र रचना के ऐतिहासिक उद्भव पर नजर डालें तो पाते हैं कि मानचित्रकारों ने यथार्थ के बारे में अपनी दृष्टि को निरूपित करने का प्रयास किया। यथार्थ बहुमुखी एवं बहुआयामी होता है; इसलिए इसे दो आयामों में दर्शाना कठिन काम है। ईसाई मानचित्रकारों द्वारा बनाए गए बहुत शुरुआती मानचित्रों में से एक में पृथ्वी को टिकिया की तरह गोल दर्शाया गया था जो चारों तरफ से किसी गोलाकर समुद्र के पानी से घिरी हुई थी। भूमध्य सागर को, यूरोप तथा एशिया को अलग करते दिखाया गया था, व टेथिस को, एशिया को यूरोप व अफ्रीका से अलग करते दिखाया गया था। येरूशलम प्रभु ईसा का जन्मस्थान है और चूँकि प्रभु ईसा दुनिया की रोशनी हैं अतः येरूशलम को दुनिया के केन्द्र में दिखाया गया था ताकि रोशनी हर कोने में बराबरी से पहुँचे। पूर्व को मानचित्र में ऊपर और स्वर्ग को पूर्व के अन्तिम कोने में दिखाया गया था। पश्चिम को मानचित्र में नीचे दिखाया गया था। ''ओ'' मानचित्र (जैसा कि उसे कहा जाता था) में यह ''टी'' यथार्थ की अपेक्षा कल्पना पर ज्यादा आधारित था। धीरे–धीरे खुद देखकर अपनी उत्सुकता को शान्त करने के तरीके ने दुनिया के क्षेत्रों की अनुमान पर आधारित समझ की जगह ले ली। इस तरह दुनिया के अलग–अलग हिस्सों में अन्वेषण शुरू हुए।

खोजकर्ता दूरस्थ देशों के अनजान क्षेत्रों के लिए निकल पड़े। इसके पीछे या तो यथार्थ को जानने की उनकी खुद की उत्सुकता होती थी, अथवा उन्हें विभिन्न देशों के राजाओं और शासकों द्वारा दूरस्थ स्थानों को जाने के लिए और उन जगहों की वास्तविकता को जानने, तथा वहाँ के लोगों और उनकी संस्कृतियों को समझने हेतु प्रायोजित किया जाता था। इस प्रयास में एशियाई लोग सम्भवतः पथ–प्रदर्शक थे। सम्राट अशोक के संरक्षण में भारतीय भगवान बुद्ध का सन्देश लेकर पूर्वी और दक्षिण पूर्वी एशिया के दूरस्थ कोनों तक गए। अरब यात्री सबसे पहले अफ्रीका में भूमध्य रेखा को पार करके दक्षिणी गोलार्ध पहुँचे जो कभी भी यूनानियों द्वारा कल्पित निवास–योग्य दुनिया का हिस्सा नहीं था। यूनानी विद्वानों के अनुसार, अफ्रीका की निवास–योग्य दुनिया अफ्रीका में केवल 12.5 डिग्री उत्तरी अक्षांश तक ही सीमित थी। अरब यात्री, इब्न–ए–हॉकल ने इस सोच को गलत सिद्ध किया जब उसने भूमध्य रेखा के 20 डिग्री दक्षिण में जाकर अफ्रीका के पूर्वी तट के किनारे लोगों को रहते देखा। चीनी यात्रियों ने जमीनी तथा समुद्री मार्गों के माध्यम से विभिन्न भूक्षेत्रों को खोजना शुरू किया। मशहूर चीनी यात्रियों में से एक, ह्वेन साँग तिब्बत के उजाड़ पठार को पार करके भूमार्ग से सातवीं सदी ईसवीं में भारत पहुँचा था। एक अन्य चीनी यात्री इचिंग दक्षिण–पूर्वी एशिया के द्वीपों को पार करके 671 ईसवीं में समुद्री मार्ग से भारत पहुँच सका था। पन्द्रहवीं सदी ईसवीं तक एशियाई यात्रियों ने अपनी समुद्री यात्राएँ बन्द कर दीं थीं। इब्न–ए–बतूता, सम्भवतः, अन्तिम अरब यात्री था। 1433 ईसवीं में अपना अभियान पूरा करने वाला चीनी एडमिरल, चेंग हो, लौटने वाला अन्तिम व्यक्ति था, और उसके साथ चीनी अन्वेषणों की कहानी भी समाप्त हो गई।

पन्द्रहवीं सदी ईसवीं तक प्राचीन दुनिया के बड़े हिस्सों की जानकारी उपलब्ध हो गई थी; इसलिए इस सदी में यूरोपियन यात्रियों ने अन्वेषण के प्रयास किए, खासतौर पर पुर्तगाल और स्पेन के यात्रियों ने जिन्हें इन देशों के राजाओं की आर्थिक मदद और संरक्षण प्राप्त हुए। पुर्तगाली यात्रियों ने इन अन्वेषणों को भूमध्य सागर के परे ले जाने की शुरुआत की। 1415 ई. में राजकुमार हैनरी की जिब्राल्टर के दक्षिण में, अफ्रीका में हुई जीत किसी यूरोपीय शक्ति की यूरोप के बाहर पहली जीत थी। यूरोप द्वारा अफ्रीका, एशिया और बाद में नई दुनिया के औपनिवेशीकरण की प्रक्रिया सम्भवतः इसी मोड़ पर शुरू हुई थी। राजकुमार हैनरी ने 1418 में, सैगरे में पहला भौगोलिक शोध संस्थान स्थापित किया। इस संस्था को नाविकों को प्रशिक्षित करने का और ऐसे उपकरण तथा मानचित्र बनाने का कार्य सौंपा गया जिनसे आगे के अन्वेषणों में मदद मिल सके। मानचित्र, प्रचुर संसाधनों वाले गन्तव्यों तक पहुँचने के सुरक्षित और सबसे छोटे मार्गों को चिन्हित करने के अत्यावश्यक उपकरण बन गए। मनुष्य हमेशा ही कम से कम प्रयास के सिद्धान्त से प्रेरित हुए हैं, और उन्होंने हमेशा ही सबसे छोटे मार्गों की तलाश की है जिन्हें मर्केटर के प्रक्षेपण पर निर्मित मानचित्रों द्वारा खोज पाना सम्भव हो गया। जहाँ एक ओर सैग्रे में मानचित्र निर्माण का काम जारी था वहीं दूसरी ओर लागोस में राजकुमार हैनरी के निर्देशन में नए जहाज तैयार हो रहे थे। औपनिवेशिक युग के बीज बो दिए गए थे और उनमें से अँकुर निकलना शुरू गए थे। सबसे पहली प्रतिद्वन्दिता स्पेनियाइयों व पुर्तगालियों के मध्य शुरू हुई और बाद में अन्य यूरोपीय शक्तियाँ भी नए उपनिवेशों की खोज की दौड़ में शामिल हो गईं। टॉर्डिसैलास की सन्धि के दस्तावेज पुर्तगालियों व स्पेनियाइयों के बीच के मतभेदों को सुलझाने के लिए पोप द्वारा की गई मध्यस्तता की कहानी कहते हैं। तीन शक्तियाँ; अँग्रेज, फ्रांसीसी और पुर्तगाली भारतीय उपमहाद्वीप पर प्रभुता

स्थापित करने के लिए एक–दूसरे से लड़ते रहे। फ्रांसीसी, डच और अँग्रेज दक्षिणपूर्वी एशिया अर्थात मलेशिया, इण्डोनेशिया और हिन्दचीन के प्रायद्वीप में आमने–सामने थे। औपनिवेशिक प्रक्रिया के विस्तार के साथ नए मानचित्र उभरना शुरू हो गए।

> *राजनैतिक निर्णय नए मानचित्रों के सृजन और मानचित्रों में हेरफेर के लिए जिम्मेदार होते हैं। भारत में अँग्रेजों द्वारा अपनाई गई समकालीन राजनीति के चलते भारतीय उपमहाद्वीप का विभाजन हुआ; यह राजनीति ही पहले भारत, पाकिस्तान, तथा बाद में बांग्लादेश के नए नक्शों के लिए जिम्मेदार थी।*

राजनीति की सृष्टि के रूप में मानचित्र

राजनैतिक निर्णय नए मानचित्रों के सृजन और मानचित्रों में हेरफेर के लिए जिम्मेदार होते हैं। भारत में अँग्रेजों द्वारा अपनाई गई समकालीन राजनीति के चलते भारतीय उपमहाद्वीप का विभाजन हुआ; यह राजनीति ही पहले भारत, पाकिस्तान, तथा बाद में बांग्लादेश के नए नक्शों के लिए जिम्मेदार थी। अँग्रेजों ने तत्कालीन सोवियत संघ और चीन को ब्रिटिश भारत से दूर रखने के लिए उसकी सीमाओं पर कई छोटे–छोटे राज्यों को बफर (अन्तःस्थ) राज्यों की तरह से संरक्षित किया। अंग्रेज नहीं चाहते थे कि वे कभी भी इन पड़ोसियों के साथ किसी झगड़े में उलझें। बफर राज्यों का काम आमतौर पर ऐसी बकरियों की तरह काम करना होता है जो दो शेरों के बीच खड़ी रहकर सुरक्षित रहती हैं। इन देशों का अस्तित्व बने रहने का कारण उनका बफर राज्य होना ही था। द्वितीय विश्वयुद्ध की राजनीति के चलते जर्मनी का विभाजन हुआ, और एक ही राष्ट्र के दो मानचित्र बन गए। चेक और स्लोवाकों को मिलाकर एक देश कर दिया गया जिसका एक मानचित्र था, और सोवियत रूस ने पूरे मध्य एशिया का पृथक अस्तित्व मिटाते हुए सारे अलग–अलग राष्ट्रों को हड़पकर और आपस में मिलाकर एक इकाई बना दिया। अँग्रेजों ने बेलफोर घोषणा के द्वारा एक राजनैतिक निर्णय लेते हुए यहूदियों की मातृभूमि के रूप में इजरायल का सृजन किया। यहूदी प्राचीन अतीत में इजरायल छोड़कर चले गए थे और वहाँ अरबों का निवास हो गया था। उस क्षेत्र में इजरायल के मानचित्र के हकीकत बन जाने के बाद, अरबों ने इसका वर्णन अरब दिल में धँसे एक छुरे के रूप में किया। इस पूरे क्षेत्र में मौजूद सभी देशों के दिलों से बहुत समय से लहू बह रहा है।

औपनिवेशीकरण ने एक नया विश्व मानचित्र तैयार किया। अँग्रेजी साम्राज्य के मानचित्र पर कभी सूर्यास्त नहीं होता था। नई दुनिया में, यूरोपीय शक्तियों के बीच की प्रतिस्पर्धा शुरू से ही प्रचण्ड थी। कनाडा के नक्शे पर फ्राँसीसी प्रभुत्व के क्षेत्र और ब्रिटिश प्रभुत्व के क्षेत्र आसानी से देखे जा सकते हैं। अँग्रेजों ने, सम्भवतः भावनात्मक कारणों की वजह से, अपने देश के स्थानों के नाम संयुक्त राज्य अमेरिका के उत्तर पूर्वी राज्यों के मानचित्र पर प्रतिरोपित कर दिए। इंग्लैण्ड, न्यू इंग्लैण्ड के रूप में; हैंपशायर, न्यू हैंपशायर के रूप में; और यॉर्क, न्यूयॉर्क के रूप में अमेरिका में स्थापित हुए। इससे इंग्लैण्ड से आए आप्रवासियों को मानसिक संतोष मिला और निर्मूलता की भावना से पैदा होने वाले संताप भी इससे कम हुए।

राजनैतिक प्रक्रिया में हुए विपरीत परिवर्तन ने नए प्रकार के मानचित्र तैयार किए। उपनिवेशवाद का अन्त होने पर एक नई दुनिया का आविर्भाव हुआ जिसमें स्वतंत्र देशों के नए मानचित्र सामने आए। एशिया और अफ्रीका के मानचित्रों में बदलाव हुआ। अँग्रेजी साम्राज्य ने प्राचीन दुनिया और नई दुनिया, दोनों पर ही अपना नियंत्रण समान रूप से खो दिया। नए स्वतंत्र हुए राज्यों ने अपनी प्राचीन ऐतिहासिक जड़ों और मूल्यों को तलाशना और उनकी पुनर्स्थापना करना प्रारम्भ किया। राष्ट्रीय ध्वजों, राष्ट्रीय गानों और नवरचित मानचित्रों के रूप में नए प्रतीक सामने आए। विश्व मानचित्र को फिर से बनाने और नया आकार देने की प्रक्रिया जो उपनिवेशवाद के पतन के साथ शुरू हुई थी अभी तक थमी नहीं है। 1990 के दशक में दुनिया ने तात्कालिक सोवियत संघ के पतन के साथ ही एक अन्य प्रकार की राजनैतिक खलबली देखी, और एक बार फिर नए मानचित्र सामने आना शुरू हुए। यूरोप व मध्य एशिया में स्थित सोवियत संघ के गणराज्य स्वतंत्र देश बने और उनके पृथक मानचित्र अस्तित्व में आए। इस राजनैतिक प्रक्रम का असर यूरोपीय देशों पर भी पड़ा। दोनों जर्मनी एक हो गए। चेक और स्लोवाकों के बीच मखमली अलगाव हुआ। टीटो के युगोस्लाविया को रक्तरंजित विखण्डन झेलना पड़ा। विविध स्तरों पर हुए राजनैतिक निर्णयों के चलते हर जगह नए मानचित्र उभर कर आए।

मानचित्रों में सीमांकित किसी देश की सीमाएँ उस देश के नागरिकों के लिए बहुत पवित्र होती हैं क्योंकि ये उस राष्ट्र की अखण्डता और सम्प्रभुता का प्रतीक होती हैं और नागरिक उनकी सम्प्रभुता बनाए रखने के लिए अपनी जान भी न्यौछावर कर देते हैं। दुनियाभर में कई लड़ाइयाँ सीमा विवादों की वजह से ही भड़की हैं। राजनैतिक

भूगोलवेत्ता सरहद (बॉर्डर) को क्षेत्र की तरह से और सीमा (बाउन्ड्री) को रेखा की तरह से परिभाषित करते हैं। सीमाएँ भलीभाँति परिभाषित, निर्धारित और अंकित वास्तविकताएँ होती हैं और उनकी बड़े जतन के साथ रक्षा की जाती है। यदि किसी ज्यादा शक्तिशाली पड़ोसी द्वारा कुछ क्षेत्र हड़प लिया जाता है तो भी पराजित देश अपने मानचित्रों में मूल सीमा को ही दर्शाता है और छीन लिए गए क्षेत्र को न बचाया जा सका ज़बरिया अधिग्रहीत क्षेत्र माना जाता है। ये मानचित्र लेखागारों तक सीमित रह जाते हैं और नई पीढ़ियों को यह याद दिलाने के साथ–साथ उकसाते रहते हैं कि उन अधिग्रहीत क्षेत्रों को वापस हासिल करना है।

मनुष्य के चित्त के हिस्सों के रूप में मानचित्र

मानचित्रों को राष्ट्रीय प्रतीकों के रूप में भी देखा जाता है। प्रतीक पहचान देते हैं। राष्ट्रीय प्रतीकों के माध्यम से व्यक्त होने वाली पहचान मानव चित्त का हिस्सा बन जाती है। इससे मानचित्र रचना में कुछ हेराफेरी भी कर दी जाती है ताकि प्रतीकों (मानचित्र) से जुड़ी भावनाएँ तुष्ट हो सकें। चूँकि द्विआयामी मानचित्र दीवार पर टाँगे जा सकते हैं, इसलिए लोगों ने भ्रमवश यह धारणा बना ली है कि मानचित्र का ऊपरी छोर और, मानचित्र का निचला छोर जैसी चीजें होती हैं। हाँलाकि, पृथ्वी की सतह पर कोई ऊपरी छोर या कोई निचला छोर नहीं है, पर यह मनुष्य की भावनात्मक धारणा होती है, और इसे तब तक नहीं सुधारा जा सकता जब तक कि व्यक्ति मानचित्र के निहितार्थों को नहीं समझ लेता। ओ मानचित्र में टी नाम से जाने जाने वाले शुरुआती मानचित्र का ज़िक्र पहले ही किया जा चुका था। पहले पूर्व को मानचित्र में शीर्ष पर दिखाया जाता था। यूरोपीय मानचित्रकारों ने मानचित्रों को अपने अनुसार ढाल दिया और उत्तर को शीर्ष पर दिखाया गया जिसके कारण मानचित्र में यूरोप दुनिया के शीर्ष पर स्थापित हो गया। मर्केटर प्रक्षेप पर बनने वाले यूरोप के मानचित्र के द्वारा यूरोपीय लोग इस तथ्य के बावजूद, कि मर्केटर प्रक्षेप पर न तो यूरोप का आकार और न ही उसका क्षेत्रफल ही सही था, खुद को आकार में बहुत बड़ा महसूस करने लगे। मर्केटर प्रक्षेप पर तैयार किए गए मानचित्रों में केवल दिशाएँ सही होती हैं। पर लम्बे समय तक, यह यूरोप के मानचित्र के चरित्र को फुलाए रहा। अरब मानचित्रकारों के मन में भी यह विचार आया कि दक्षिण को दुनिया के नक्शे में शीर्ष पर दिखाया जाना चाहिए जिससे अरब क्षेत्र बाकी सभी देशों के ऊपर स्थित दिखाई देते। पर यह विचार आकार नहीं ले सका।

नागरिकों के लिए उनके देश पितृभूमि व मातृभूमि होते हैं। बच्चों और माता–पिता के बीच सबसे नजदीकी रिश्ता होता है। भारतीय लोकाचारों में, इस रिश्ते में भी माता का स्थान पहला होता है जिसे एक शब्द, अर्थात् ''माँ'' से व्यक्त किया जाता है। ऐसा कहा जाता है कि, ''माता पूर्व रूपम्, पिता उत्तर रूपम्, प्रेमो सन्धिः, प्रजनम् संधनम्''। (माँ पहला रूप है, पिता दूसरा, और उनका प्रेम उन्हें मिलाता है तथा बच्चे उन्हें जोड़े रखने वाली सामग्री सदृश होते हैं तथा उन्हें अलग होने से रोके रहते हैं।) हमारे देश के लोगों के मन में भारत के मानचित्र की भारत माता के रूप में छवि बहुत गहरे से बैठी हुई है। कलाकारों ने इस छवि को अपने चित्रों में और कला के अन्य रूपों में दर्शाया है। सारे जहाँ से अच्छा हिन्दोस्तां हमारा (उर्दू शायर इकबाल) और सुजलाम्, सुफलाम्, मलयज शीतलाम्, मातरम्, वन्दे मातरम्, (बन्किम चन्द्र चटर्जी द्वारा आनन्दमठ में रचित) में मातृभूमि के प्रति इसी समर्पण भाव को अभिव्यक्त किया गया है। राष्ट्रप्रेम और राष्ट्रीयता की भावना लोगों को एकजुट रखने वाली शक्ति बन जाती है और इससे देश के प्रति अपनत्व के गुणांक को बल मिलता है। भारतीय नागरिक का मन विभाजन को स्वीकार नहीं करता, और हम सभी को ज्ञात इस तथ्य के बावजूद, कि यथार्थ को बदला नहीं जा सकता, वह प्रबल भावनाओं के साथ अखण्ड भारत की बात करता है। अपनी पहचान के प्रतीकों द्वारा पैदा होने वाली भावनाएँ सूक्ष्म स्तरों पर भी देखी जा सकती हैं। भारत में प्रत्येक गाँव का, उसे उस गाँव के ग्राम देवता से मिलने वाली पहचान की वजह से अपने अस्तित्व का एक आधार होता है जो आमतौर पर बड़ी परम्परा की बजाय छोटी परम्परा के लिए होता है। लोग खुद को जगहों के इन नामों के साथ जुड़ा महसूस करते हैं क्योंकि उनकी जड़ें उन जगहों में होती हैं। दक्षिण भारत में, बहुत बार, लोगों के पहले नाम उनके गाँवों के नाम होते हैं। भारत में, लोगों के मानस में गर्व सूक्ष्म, मध्यम और बृहद् स्तरों पर काम करता है। हम अक्सर तमिल गौरव, मराठा गौरव, बंगाली गौरव, गुजराती गौरव आदि की बात करते हैं जिनकी परिणति भारतीय गौरव में होती है। कभी–कभी स्थानीय और क्षेत्रीय गौरव से जुड़ी भावनाएँ इतना प्रचण्ड रूप ले लेती हैं और बहुत ही संकीर्ण और विनाशकारी हो जाती हैं कि उनपर लगाम लगाना पड़ता है। यूरोप में पनपी राष्ट्र–राज्य की अवधारणा ही उसके बाल्कनीकरण (छोटे–छोटे खण्डों में बँटने) के लिए जिम्मेदार थी जिससे कुछ बहुत ही छोटे देशों का जन्म हुआ। इनमें से कुछ देश तो भारत के कुछ जिलों से भी छोटे हैं पर उग्र राष्ट्रवाद की भावना ने उनका अस्तित्व बचाए रखा है। जातीय श्रेष्ठता और गौरव की जर्मन अवधारणा ने ऐसे व्यक्तित्वों को जन्म दिया जिन्होंने पूरी दुनिया को संघर्ष में झोंक दिया और साथ ही साथ खुद का भी नुकसान किया।

चिरकाल से दुनिया के सभी देशों में मानचित्र हमारे अस्तित्व का एक अहम हिस्सा रहे हैं। चाहे हम इनकी कल्पना पृथ्वी के द्विआयामी निरूपण के रूप में करें, या इन्हें एक दिमागी रचना मानें,

निहित स्वार्थों को पूरा करने के लिए तोड़े–मरोड़े गए राजनैतिक उपकरण के रूप में देखें, या फिर एक राष्ट्र–राज्य का प्रतीकात्मक स्वरूप मानें; मानव समाज की बहुपक्षीय वास्तविकता को निरूपित करने के एक अहम उपकरण के रूप में मानचित्रों का अस्तित्व सदा बना रहेगा।

एमएच कुरैशी *सेन्टर फॉर स्टडीज़ इन रीजनल डैवलप्मैंट, जेएनयू के पूर्व प्राध्यापक हैं। उन्हें भारत सहित विदेशों के कई विश्वविद्यालयों और कॉलेजों में भूगोल पढ़ाने का 45 साल से भी ज्यादा का अनुभव है। वे 6 किताबें लिख चुके हैं। राष्ट्रीय व अन्तर्राष्ट्रीय जरनलों में उनके करीब 45 लेख प्रकाशित हुए हैं। प्रो. कुरैशी भारत के कई राज्यों में विभिन्न शैक्षणिक व सामाजिक संगठनों के बोर्डों के सदस्य रह चुके हैं। वर्तमान में वे यूजीसी, नई दिल्ली के लिए सलाहकार के रूप में कार्य कर रहे हैं। उनसे इस* mhqureshi@mail.jnu.ac.in *ईमेल पते पर सम्पर्क किया जा सकता है।*

12 दैनिक जीवन में भूगोल

तपस्या साहा

कभी–कभी मैं सोचती हूँ कि ओलम्पिक, फीफा और यहाँ तक कि आईपीएल भी भूगोल सिखाने का एक स्वाभाविक तरीका है।

एक दिन जब मैं पैदल अपने घर वापस जा रही थी तब मैंने एक युवा माँ और उसकी सात/आठ साल की बच्ची के बीच का संवाद सुना। उनके आगे दो अफ्रीकी युवक चल रहे थे, जिन्हें देख कर छोटी बच्ची ने अपनी माँ से पूछा, 'माँ इन आदमियों के बाल कुण्डलियों की तरह घुंघराले क्यों होते हैं, हमारे बाल तो ऐसे घुंघराले नहीं होते?' माँ ने बिना कुछ सोचे जवाब दिया, ''सभी अफ्रीकियों के बाल ऐसे ही होते हैं।'' उस माँ का उत्तर बच्चों द्वारा किए जाने वाले ऐसे सभी प्रश्नों, सभी चीज़ों पर जो वे अपने आस–पास देखते हैं तथा अपने स्वयं के मानसिक आकाश में अपने ढंगों से सीखते हैं, पर एक प्रहार था। मुझे उस लड़की को उत्तर देने का बहुत मन था क्योंकि वह प्रश्न एक भौगोलिक प्रश्न था।

भूगोल कहाँ है?

मेरे लिए भूगोल जीवन जीने का एक ढंग है; हम सभी के लिए दिन की यात्रा शुरू होती है पूर्व दिशा में सूर्य के उगने के साथ। बच्चा यह बात पहले से ही जानता है। उसे पता है कि सूर्य प्रतिदिन पश्चिम में अस्त होता है। इसी प्रकार वह सभी ऋतुओं, ओणम, पोंगल, वनस्पति, भूमि संरचनाओं, सुनामी, तापमान, भोजन की आदतों, संस्कृति, कपड़ों के प्रकार, कुछ बीमारियाँ जो स्थानीय तौर पर पाई जाती हैं और कुछ नहीं, इन सभी के बारे में जानता है लेकिन उसे इनके भौगोलिक सम्बन्ध ज्ञात नहीं हैं।

मेरा मानना है कि मातृभाषा के अलावा भूगोल ही ऐसा अन्य विषय है जिसे सीखने की बच्चे में स्वाभाविक क्षमता होती है। वह अपनी सारी जिन्दगी भूगोल को निरन्तर सीखता है। आइए हम कुछ ऐसे प्रश्नों को परखें जिन्हें चार वर्ष से चौदह वर्ष की आयु तक का कोई बच्चा पूछ सकता है।

- मम्मी, यदि पृथ्वी एक गोल गेंद के समान है तो हम उससे गिर क्यों नहीं जाते?
- क्या सान्ता ब्राजील में उतने ही आराम से रह सकता है जितना की मंगोल में?
- मम्मी, अरब लोग 'थूब' क्यों पहनते हैं, और पापा क्यों नहीं पहनते?
- यदि अप्रैल – मई इतना गर्म होता है, तो दिसम्बर गर्म क्यों नहीं होता?
- मैं केरल में सूती कपड़े क्यों पहनती हूँ, ऊनी फ्रॉक क्यों नहीं?
- पुणे की अपेक्षा दिल्ली में दोपहर के समय मुझे कोई परछाई थोड़ी लम्बी क्यों दिखाई देती है?
- लोग ऐसा क्यों कहते हैं कि मानसून आता और जाता है, तो वह रहता कहाँ है?
- क्या दिसम्बर में मेरे जन्म दिन के लिए कृपया हम कुछ आम बचा सकते हैं?
- चन्द्रमा कैसे बढ़ता और घटता, पूर्ण रूप से प्रकट होता और विलोपित हो सकता है?
- सूर्य सुबह से लेकर शाम तक घूमता रहता है, और फिर भी हमेशा वही का वही रहता है?
- चेन्नई में केवल ही एक ही मौसम क्यों रहता है, जबकि अगरतला में सभी चार मौसम होते हैं?
- हम गर्मियों में पहाड़ों पर, और सर्दियों में समुद्री तटों पर क्यों जाते हैं?
- कुछ लोगों को छोले–भटूरे और कुछ को इडली–साँभर क्यों अच्छे लगते हैं?
- अमेरिका में चिकन पॉक्स या यलो फीवर के बारे में क्यों नहीं सुना जाता है?
- क्या एक इन्द्र धनुष मेरी पहनने वाली चूड़ी की तरह कभी गोल हो सकता है?
- हिमपात देखने के लिए मुझे हिमालय क्यों जाना पड़ता है? उसे मैं हैदराबाद में क्यों नहीं देख सकती हूँ?
- सूर्य, सूर्यास्त के पश्चात पूर्व में उदित होने के लिए कितनी तेजी से दौड़ता है?
- क्या ठण्ड में कोहरा और धुन्ध बनाने के लिए बादल नीचे नहीं आते?
- नीम के पेड़ के बजाय देवदार के वृक्ष घण्टी के आकार के क्यों होते हैं?
- यहाँ पर हमें हिरण और बाघ देखने को मिलते हैं, पर क्रिल और किवी क्यों नहीं?
- विमान चालक आकाश में विमान कैसे उड़ाता है और कभी अपनी दिशा नहीं खोता?

- इन सभी प्रश्नों और ऐसे कई और प्रश्नों के उत्तर मुझे कहाँ मिलेंगे?

मुझे यकीन है कि दादा–दादी, माता–पिता और शिक्षक अपने अनुभवों के आधार पर इनमें से कई प्रश्नों के उत्तर दे सकते हैं। उनसे मिले उत्तर बच्चों के लिए बहुत विश्वसनीय और स्वीकार्य होते हैं। कुछ प्रश्नों को समझाने के लिए स्पष्टीकरण और अन्य चीजों के ज्ञान तथा अवधारणाओं की आवश्यकता हो सकती है। आइए हम कुछ उत्तर सुझाने वाले प्रश्न पूछें और बच्चे को अपने स्वयं के उत्तर ढूँढने में उनकी मदद करें।

हम पहले प्रश्न को लें, 'माँ यदि पृथ्वी एक गोल गेंद के समान है तो हम उससे गिरते क्यों नहीं?' वास्तव में हम एक फुटबॉल ले सकते हैं और उस पर एक चींटी को रख दें, उसे उस पर चारों ओर घूमने दें, इसे बच्ची को दिखाएँ और पूछें कि क्या चींटी उस पर से गिर जाएगी या उस पर आराम से रह सकती है; बच्ची को गेंद घुमा कर खुद देखने के लिए कहें।

दूसरा उदाहरण लें, 'मम्मी अरब लोग 'थूब' क्यों पहनते हैं और पापा क्यों नहीं पहनते?' उसे अपना उत्तर स्वयं ढूँढने में मदद करने के लिए हम उससे पूछ सकते हैं कि वह कपड़े, स्वेटर, जूते आदि क्यों पहने हुए है, या उसे गर्मी की दोपहर में छाते की जरूरत क्यों पड़ती है?उसका उत्तर हो सकता है – अच्छा दिखने के लिए, गर्म रहने के लिए, धूप से बचाव के लिए आदि। इसमें हम धूल या रेत से बचाव का विचार भी शामिल कर सकते हैं। मुझे यकीन है कि वह इससे सहमत होगी। इसमें हम और जोड़ सकते हैं कि अरेबिया एक धूल भरी, रेतीली और गर्म जगह है; फिर उससे पूछें कि क्या इस तरह की जगह में धूप में बाहर निकलते वक्त शरीर को सिर से पाँव तक ढँकना क्या एक अच्छा विचार नहीं होगा।

हम इस जगह पर रुक सकते हैं और बच्ची को अपना ज्ञानवर्धन स्वयं करने दें जो कि उम्र के अनुरूप तथा अर्थपूर्ण होता है। सबसे बड़ी बात यह कि इसमें किसी प्रकार के रटने की आवश्यकता नहीं होती।

मातृभाषा के समान ही बच्चा बिना किसी पक्षपात और बिना ज्यादा प्रयास के अपने इलाक़े के आसपास का भूगोल निर्मित करता है; यहाँ पर यदि किसी चेतन प्रयास की आवश्यकता है तो वह है मार्गदर्शन की। सहायक व्यक्ति उत्तर की ओर इशारा करने वाले प्रश्न पूछकर और उनके उचित उत्तरों को देकर बच्चे की सोच प्रक्रिया को तार्किक रूप से उसकी प्रारम्भिक कक्षाओं से आगे बढ़ा सकते हैं, जिससे कि वह चिन्तन, अवलोकन, पुष्टिकरण, वैधीकरण, समझ, सम्बन्ध स्थापित करने आदि की क्षमताएँ भी विकसित कर सके।

भूगोल की शिक्षक होने के कारण मैंने लगभग हमेशा पाठों को कक्षा में पाई जाने वाली सामग्री से, जैसे मेरी पहनी हुई साड़ी, विद्यार्थियों की ऊँचाई, त्वचा के रंग, उनके बस्ते में मौजूद चीजों, उनके द्वारा लाए गए भोजन तथा चॉक और बोर्ड आदि से जोड़ा है। मैं विशेष रूप से जलवायु के बारे में पढ़ाने के दौरान छात्रों को उस समय कक्षा से बाहर जैसा अनुभव हो रहा हो, उससे सम्बन्धित विषयों जैसे आकाश, वायु, तापमान, बादल, वर्षा को भी शामिल किया करती थी। भूगोल हमेशा रोजमर्रा के जीवन से जुड़ा रहता है; जीवन के अनुभवों और उनके पीछे की भौगोलिक अवधारणाओं के बीच मौजूद कड़ी या सम्बन्ध को पहचानने या देख पाने की बच्चे की मानसिक क्षमता को विकसित करने के लिए आवश्यक मदद या कौशल प्रदान करना ही शिक्षक का कार्य होता है ।

भूगोल की शिक्षक होने के कारण मैंने लगभग हमेशा पाठों को कक्षा में पाई जाने वाली सामग्री से, जैसे मेरी पहनी हुई साड़ी, विद्यार्थियों की ऊँचाई, त्वचा के रंग, उनके बस्ते में मौजूद चीज़ों, उनके द्वारा लाए गए भोजन तथा चॉक और बोर्ड आदि से जोड़ा है।

शिक्षाविद् कृष्णकुमार दृढ़तापूर्वक यह मानते हैं कि संवाद, बच्चों के बीच, सीखने के लिए बहुत ही प्रभावशाली औजार है। बच्चे जब कोई नई वस्तु देखते हैं, फिर चाहे वह एक इल्ली हो, एक पतंगा हो, या नई जगह हो, या वे कोई फिल्म देखते हैं या कोई पुस्तक पढ़ते हैं तो वे उसे दूसरों को बताते हैं। यहाँ पर दोनों ही पक्ष कुछ सीख रहे हैं। मित्रों की आपस में बातचीत बच्चों को सीखने में मदद करती है, विशेषकर जब संवाद छुट्टियों के बाद हो; क्योंकि हो सकता है कि बच्चे छुट्टियों में अलग–अलग जगहों पर घूमने गए हों और वहाँ से नए–नए अनुभवों और अवलोकनों के साथ लौटे हों, ये अनुभव जब उनमें आपस में बाँटे जाते हैं तो सुनने वालों को इन जगहों की कल्पना करने में मदद करते हैं और उन्हें अपने बल पर सीखने के लिए प्रेरित करते हैं। यहाँ पर शिक्षक बच्चों के द्वारा लाई गई तस्वीरों, नक्शों, चित्रों आदि का उपयोग करके उनके ज्ञान को मजबूत बना सकते हैं।

बड़े बच्चों के पास विचरण करने के लिए व्यापक मानसिक क्षेत्र होता है; उनके सामने ज्ञान बढ़ाने के कई साधन होते हैं जैसे अख़बार, टीवी चैनलें, फिल्में, गाने, कहानियों की किताबें, पर्यटन, लम्बी पैदल यात्राएँ आदि। जब प्रत्येक अनुभव को जोड़ा जाता है

तो एक विशाल संसाधन भण्डार उत्पन्न हो जाता है।

क्या जीवन को बेहतर तरीके से जीने के लिए भूगोल की अवधारणाओं को सीखने की वास्तव में जरूरत है? क्या ये अवधारणाएँ हमें हमारे दैनिक जीवन में मदद करती हैं? या इस तरह पूछा जाए कि क्या वे एक प्रकार का जीवन–कौशल हैं? क्या हमारे बच्चों को इस कौशल को पैना बनाने की आवश्यकता होती है?

क्या इन अनुभवों, जो वास्तविक जीवन में होने वाली घटनाओं पर आधारित, उनसे निकले या बँधे होते हैं, या व्यक्ति के जीवन को सीधे प्रभावित कर रहे होते हैं, को भी भौगोलिक अनुभव कहा जा सकता है? क्या जीवन के कौशल के रूप में, भौगोलिक अवधारणाओं के हमारे ज्ञान की जीवित रहने के लिए, जीवन का आनन्द उठाने के लिए, रोजमर्रा के जीवन की समस्याओं को सुलझाने के लिए, निर्णय लेने के लिए, अन्य विषयों को समझने के लिए, हमारे आसपास होने वाली घटनाओं को समझने के लिए, और उससे अपनी जीविका चलाने के लिए बहुत जरूरत नहीं होती? इनमें से अधिकांश प्रश्नों का उत्तर एक शब्द 'हाँ' में दिया जा सकता है।

यह लेख लिखते समय मैंने अपनी ननद से 'भूगोल' विषय के बारे में पूछा, नित्य प्रतिदिन के जीवन में भूगोल के महत्व के बारे में उसकी राय पूछी। हालाँकि वह एक बैंक कर्मचारी है और उसने गणित पढ़ा है, बैंक में जमा धनराशि में वृद्धि करवाने की तरकीबें तो उसके बायें हाथ का खेल हैं, लेकिन भूगोल में कतई उसकी गति नहीं है। मज़े की बात यह है कि जैसे ही मैंने उससे यह प्रश्न पूछा, उसने बिना किसी हिचकिचाहट के ऐसे जवाब दिया जैसे वह काफी समय से इस सवाल के पीछे पड़े हुई थी और पहले ही किसी निष्कर्ष पर पहुँच चुकी थी। उसने कहा, ''यदि मुझे पता होता कि आज की जीवनशैली, समस्याओं, संसार की स्थिति को समझने के लिए भौगोलिक अवधारणाओं को समझना इतना जरूरी होगा तो मैंने अपने स्कूल के दिनों में इसमें अधिक रुचि ली होती और निश्चित रूप से मैं आज ज्यादा काबिल होती। अब समस्या को ठीक ढंग से समझ पाना मेरे लिए कठिन कार्य होता है।''

इस संवाद से हम क्या निष्कर्ष निकालते हैं?

मेरे मित्र के बेटे को भूगोल रुचिकर लगता था और कई बार हमने भूगोल की विभिन्न अवधारणाओं पर चर्चा की और तर्क–वितर्क किया; एक बार यह चर्चा अक्षांश और देशान्तर तथा उसकी जरूरत पर हुई। कई वर्षों बाद वह एक सुन्दर नौजवान विमान चालक के रूप में मुझे मिला । जब हम साथ बिताए हुए समय की याद ताजा कर रहे थे तो उसने मुझे बताया कि किस प्रकार अक्षांश और देशान्तर की अवधारणा ने उड़ने के दौरान किसी जगह की स्थिति को समझने में उसकी मदद की। इससे मैंने खुद भी सबक सीखा कि किसी बच्चे को जिज्ञासु बनाना कितना जरूरी है।

क्या आजकल के भूगोल का पाठ्यक्रम बच्चे को सीखने में मदद करता है?

मेरे विचार से यहाँ हमें विशेष रूप से दो क्षेत्रों में कुछ बदलाव करने की आवश्यकता है.:

- विषयवस्तु
- उस विषयवस्तु को हम जिस तरीके से सुगम बनाते हैं

चलिए हम यह मान लेते हैं कि बच्चे पहले से ही बहुत सारी चीजें जानते हैं, और वे चीजों को विकसित करने, जोड़ने, परिवर्तित करने, परिष्कृत करने, अनुमान लगाने, समझने और कल्पना करने की स्थिति में होते हैं। तब सहायकों के रूप में हमें उनके मौजूदा मानसिक ढाँचे में और वृद्धि करने की जरूरत होती है। चलिए हम इससे शुरुआत करें कि वे क्या जानते हैं, और फिर उन्हें इस प्रकार के योगदान दें जो उन्हें अनुभवों के जरिए सीखने में मदद करें। उदाहरण के लिए, कक्षा 1,2,3,4 में ग्लोब की अमूर्त धारणा समझना तथा घूर्णन और परिक्रमण के सिद्धान्तों, और इन गतिविधियों के 'रात और दिन' के होने से, या 'मौसमों' के होने से सम्बन्ध को समझना कठिन होता है। इसके बजाय, हम उनसे उनके पहले से मौजूद ज्ञान, जैसे पूर्व और उगते सूर्य, पश्चिम और डूबते सूर्य, दिन के दौरान सूर्य की अलग–अलग स्थितियों और बच्चों की परछाईयों की विभिन्न लम्बाइयों, सूर्य की बदलती स्थिति के साथ तापमान में अन्तर आदि को ध्यान में रखने के लिए कह सकते हैं। और फिर बड़ी कक्षाओं में इसी जानकारी को ग्लोब, घूर्णन, परिक्रमण आदि के तथ्यों से जोड़ा जा सकता है।

आइए हम किसी बच्चे को दिए गए पते की सहायता से एक मकान ढूँढने में मदद करें:

मकान नं. 5 बी, फर्स्ट मेन, पाई लेआउट

आइए उससे पूछते हैं कि इस जानकारी के कौन से दो हिस्से डाकिए को घर ढूँढने के लिए दिए गए हैं। उसका उत्तर हो सकता है कि मकान का क्रमांक (5बी) और सड़क (फर्स्ट मेन, पाई लेआउट)। अब हम उससे पूछते हैं कि यदि वह डाकिया होती तो वह क्या करती? सड़क और मकान का क्रमांक दिखाने के लिए एक सरल चित्र बना कर उसकी सहायता करें। उन दो सन्दर्भों को रेखांकित करें जिनकी उस जगह को ढूँढने में जरूरत है। (यहाँ

सन्दर्भ मकान का क्रमांक और सड़क का नाम हैं)। फिर अगले सत्र में हम ऐसी दो सन्दर्भ रेखाओं को अक्षांश और देशान्तर के रूप में ग्लोब पर अंकित कर सकते हैं और फिर अक्षांश और देशान्तर की सहायता से किसी शहर की स्थिति बता सकते हैं।

नेत्रा और प्रीतम को त्रिकोण आकार के 'अलाइवा' बिस्किट खाना अच्छा लगता है; अब नेत्रा जब भी किसी त्रिकोणाकार वस्तु को देखती है तो वह उसे 'अलाइवा' बुलाती है और जब प्रीतम 'अलाइवा' बिस्किट को देखता है तो वह उसे 'त्रिकोण' कहता है। असल में दोनों ने आकार को पहचान लिया है भले ही उसका वर्णन करने के लिए सही नाम लिया हो या न लिया हो। दोनों ही के पास अपने वास्तविक अनुभवों के आधार पर त्रिकोण की धारणा थी, अतः जब बच्चा कहता है कि 'अलाइवा' एक 'त्रिकोण' है तो शिक्षक समझा सकता है कि 'हाँ अलाइवा एक त्रिकोणाकार बिस्किट है, और इसी प्रकार पहाड़ की चोटी या क्रिसमस का पेड़ भी, अतः वे सभी 'त्रिकोण' कहलाने वाली श्रेणी से सम्बन्ध रखते हैं।

कोई बच्चा अपने आसपास की चीजों या अपने चारों ओर के संसार के बारे में कैसे सीखता है?

बच्चे छूने, खाने, प्रयोग करने, अवलोकन करने, नकल करने, पूछने आदि गतिविधियों के द्वारा सीखते हैं। 'रचनात्मकतावाद' का सिद्धान्त कहता है कि ये आधार रूपरेखाएँ होती हैं; सीखने वाले व्यक्ति इन अनुभवों के आधार पर जिन्दगी भर अपने ज्ञान को बढ़ाते रहते हैं। शिक्षक को ऐसी परिस्थितियों का ध्यान रखने की आवश्यकता होती है जिनका वह अपने विद्यार्थियों को इसलिए अनुभव करवाना चाहता है कि वे अपना स्वयं का ज्ञान निर्मित कर पाएँ। राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा – 2005 ने इन उद्देश्यों को पहचाना है। अब सवाल यह है कि शिक्षक इसके लिए किस प्रकार काम करते हैं?

बच्चे अपना ज्ञान निर्मित कर पाएँ इसके लिए शिक्षक को क्या करना चाहिए?

'सवाल पूछना' एक बहुत ही मजबूत हथियार है जिसका इस्तेमाल शिक्षक द्वारा किया जा सकता है। 'क्यों' से पूछे जाने वाले सवाल सीखने वालों की ओर से किसी बात का 'कारण' या 'व्याख्या' जानने के लिए अनुरोध हो सकते हैं। कारण बताना और व्याख्या करना एक ही बात नहीं होती। कारण विश्वासों या धारणाओं को कायम रखने के लिए या किसी चीज को सत्य मानने के लिए दिए जाते हैं। व्याख्या प्रकृति के प्रवाह में होने वाली घटनाओं और प्रक्रियाओं को समझाने के लिए होती है, जैसे ''केवल कुछ पहाड़ की चोटियाँ ही क्यों बर्फ से ढँकी होती हैं सब नहीं?'' या ''हमें नामधपा, अरुणाचल में तब (स्थानीय समय प्रातः 5 बजे) सूर्योदय का अनुभव क्यों होता है जब द्वारिका, गुजरात में उस समय (स्थानीय समय प्रातः 3 बजे) बहुत अँधेरा होता है?''

यहाँ पर व्याख्या करने में सिद्धान्तों और नियमों दोनों का प्रयोग होता है। कभी–कभी शिक्षक को प्रक्रिया का संक्षिप्तीकरण करना पड़ता है, अर्थात पहले घटनाओं की व्याख्या करना और फिर उनके नियमों की व्याख्या करना। उदाहरण के लिए:

1. सवाना को 'पार्क लैण्ड' क्यों कहा जाता है?

   क्योंकि इस प्राकृतिक घास के मैदान में कहीं–कहीं कुछ पेड़ उगे रहते हैं जैसा एक बगीचे में होता है।

2. आर्टिसन कुओं की क्या खासियत है?

   आपको ऐसे कुएँ में से पानी निकालने की जरूरत नहीं होती, पानी अपने–आप बाहर आता है।

3. सहारा एक रेगिस्तान क्यों है?

   क्योंकि इस क्षेत्र में बहुत कम वर्षा होती है।

ये ऊपरी तौर पर दिखाई देने वाली व्याख्याएँ हैं। इनमें से किसी भी उत्तर में हम वास्तविक प्रश्न की जड़ में नहीं गए हैं, जैसेः सवाना को पार्क के मैदान जैसा दिखाई देने के लिए उसमें थोड़े से ही पेड़ क्यों उगते हैं, (पहले प्रश्न में); पानी बाहर निकाले जाने के बजाय क्यों अपने–आप बाहर आ जाता है, (दूसरे प्रश्न में); और सहारा में ज्यादा वर्षा क्यों नहीं होती (तीसरे प्रश्न में) इन प्रश्नों पर कभी ध्यान नहीं दिया गया है।

> *आजकल के जीवन को जीने में भूगोल एक धुरी का काम करता है; अब जीवन का अधिकांश भाग हम स्वयं के अनुभवों से सीखते हैं, अतः इसमें अधिक समय लगता है। काश कि स्कूल या शिक्षक हमारे भीतर इसका कौशल निर्मित कर सकते, तब अन्य चीजों के साथ–साथ हमारे लिए ऐसे निर्णय लेना, कि कहाँ रहना है, कहाँ घर निर्मित रहना है, कौन सा फ्लैट चुनना है, डीजल कार खरीदनी है या पेट्रोल कार, आदि भी आसान हो गया होता।*

शिक्षक को व्याख्यात्मक सिद्धान्त का इस प्रकार से इस्तेमाल करना चाहिए कि उसमें भविष्य में देखने की शक्ति हो ताकि बच्चे उसके आधार पर ठीक–ठीक पूर्वानुमान लगा पाएँ। यह जानते हुए कि

जमीन की तुलना में पानी धीमी गति से ठण्डा और गर्म होता है, बच्चे यह पूर्वानुमान लगा सकते हैं कि समुद्र तट पर जलवायु मध्यवर्ती रहेगी।

इसी प्रकार आर्टिसन कुएँ उस क्षेत्र में सीमित हैं जहाँ चट्टानी संरचनाएँ तश्तरी के आकार की हैं और उन पर जल का दबाव आसानी से पड़ता है। इस तरह छात्र यह समझ सकते हैं कि ऐसी संरचनाओं में खोदे गए कुओं से पानी स्वयं के दबाव के कारण बाहर निकल आएगा।

क्या हम भूगोल की ऐसी कक्षा के बारे में नहीं सोच सकते जो खुले में लगाई जाए? शिक्षक और स्कूल को इस बारे में पहले से ही योजना बनाना पड़ेगी जिसमें कुछ विषयों को एक साथ मिला दिया जाए (मिट्टी, मिट्टी का क्षरण, प्राकृतिक वनस्पति, कृषि, लोगों का व्यवसाय आदि), और कभी–कभी विज्ञान और भूगोल की कक्षाओं को (सौर मण्डल, खनिज) एक साथ मिला दिया जाए। कुछ विषयों जैसे मौसम और जलवायु को पूरे वर्ष के दौरान अलग–अलग ऋतुओं के अनुसार पढ़ाया जा सकता है, जल्दबाजी की जरूरत क्या है?या दो ऋतुओं को कक्षा 6 में और दो ऋतुओं को कक्षा 7 में पढ़ाया जा सकता है। इसके अलावा सामूहिक गतिविधियाँ भी हो सकती हैं, जैसे फिल्म देखना, यात्रा विवरण पढ़ना, अवधारणा का मानचित्रण। बच्चे जिन प्रसंगों (टॉपिक्स) को सीखना चाहते हों उनके आधार पर वे अपना पाठ्यक्रम खुद बना सकते हैं। कुछ प्रसंगों को वे खुद या उच्च कक्षा के विद्यार्थी पढ़ा सकते हैं। सम्बन्धित प्रसंगों पर नवीनतम पुस्तकों में से चुने गए पाठ्यांशों का कक्षा में, या पुस्तकालय की कक्षा में समावेश किया जा सकता है। सम्बन्धित प्रसंगों पर अखबार में से काटी गई जानकारियों का इस्तेमाल करते हुए एक संकलन पुस्तिका बनाना भी सीखने का अच्छा स्रोत हो सकता है।

आजकल के जीवन को जीने में भूगोल एक धुरी का काम करता है; अब जीवन का अधिकांश भाग हम स्वयं के अनुभवों से सीखते हैं अतः इसमें अधिक समय लगता है। काश कि स्कूल या शिक्षक हमारे भीतर इसका कौशल निर्मित कर सकते, तब अन्य चीजों के साथ–साथ हमारे लिए ऐसे निर्णय लेना, कि कहाँ रहना है, कहाँ घर निर्मित रहना है, कौन सा फ्लैट चुनना है, डीजल कार खरीदनी है या पेट्रोल कार, आदि भी आसान हो गया होता।

इन सभी के लिए तथा इस ग्रह पर 'जीवन' की धड़कन को बनाए रखने के लिए भूगोल की आवश्यकता होती है।

तपस्या साहा *औद्योगिक भूगोल में डॉक्टरेट हैं। वे बंगलौर व कोलकाता में भूगोल की अध्यापिका रही हैं। वे टाइम्स ऑफ़ इंडिया के 'न्यूज़ इन एजुकेशन' के एक खण्ड 'माइण्ड फील्ड' से भी जुड़ी हुई हैं। आजकल वे अकादमिक और अध्यापन कला के विशेषज्ञ के रूप में अज़ीम प्रेमजी फाउण्डेशन के साथ जुड़ी हुई हैं। उनसे इस* tapasya@azimpremjifoundation.org *ईमेल पते पर सम्पर्क किया जा सकता है।*

13 ओह! पंचायत : सामाजिक विज्ञान की पाठ्यपुस्तकें तैयार करने में मिले कुछ बिखरे सबक[1]

अलक्स एम. जॉर्ज

शिक्षा के समाजशास्त्र – एक ऐसा विषयक्षेत्र, जो लगता है कि मेरे पेशे का मुख्य कार्यक्षेत्र रहा है – के सम्बन्ध में शैक्षिक आलोचक पाठ्यपुस्तकों के बारे में जो बातें कहते हैं वे हमेशा मेरे दिमाग में कहीं रहती हैं। वे कहा करते हैं कि पाठ्यपुस्तकें:

- राज्य का एक ऐसा साधन जिसके द्वारा वह शिक्षक और उसके विद्यार्थियों के बीचे होने वाली अन्तर्क्रियाओं को नियंत्रित करता है ताकि उसका अस्तित्व स्थायी बना रहे;
- राज्य के हाथों में एक ऐसा उपकरण है जिसके द्वारा आधिकारिक ज्ञान का एक ऐसा तानाबाना रच दिया जाता है जिससे यह सुनिश्चित हो जाता है कि मध्यम वर्ग का अस्तित्व बना रहे;
- बच्चों को शिक्षा से दूर कर देने में सक्षम उपकरण; इत्यादि।

फिर भी, पिछले कई सालों से मैं अध्ययन सामग्री तैयार करने के काम में ही लगा रहा हूँ, जिसमें बार–बार मैंने इन सीमाओं को तोड़कर निकल भागने की कोशिश भी की!

यह लेख स्कूली पाठ्यपुस्तकों के एक पाठ – पंचायत – को तैयार करने (अक्सर दूसरों को तैयार करता देखने) से मैंने जो सीखा उसका सार है। दो कारणों की वजह से यह पाठ हाल के समय में मुझे फिर से याद आया, 1. हरियाणा की कुख्यात खाप पंचायतें और 2. कर्नाटक के चुनाव। पर मुझे कहानी शुरू से बताना पड़ेगी...।

मैं मानता हूँ कि मेरे मौजूदा पाठकों में से शायद किसी को भी विस्तार से यह समझाने की जरूरत नहीं है कि पंचायत क्या होती है। पर जल्दी से मैं पंचायत की पाठ्यपुस्तकीय व्याख्या दे दूँ कि ऐसे अध्याय में आपको मिलेगा : पंचायत की रचना, शक्तियों, और कार्यों का वर्णन। इसे आमतौर पर नियमपुस्तिका की बेहद साफ–सुथरी शब्दावली में लिखा जाता है। पिछले कुछ दशकों से बच्चों से मित्रवत व्यवहार के नाम पर, पाठ्यपुस्तकीय वर्णनों को अक्सर उनमें ऐसे किरदारों को लाकर बिगाड़ दिया गया है जो वही की वही जानकारी अक्सर दूसरों पर कृपा करने के भाव के साथ उंडेल देते हैं।[2]

सबक 1 : बुद्ध के हँसने (असल में रोने!) से कुछ दिन पहले

यह फुटबॉल के चौथे विश्वकप के पहले की बात है। बात शुरू होती है जयपुर के तब के बाहरी इलाके झालना डूँगरी में एक अतिथिगृह के पास एक ढाबे पर गरमागरम मसालेदार चाय का इन्तजार करते हुए। मुझे अभी भी पक्की तरह से यह अहसास नहीं हो पा रहा था कि मैं कक्षा 6 हिन्दी माध्यम के लिए एकलव्य की सामाजिक विज्ञान की किताबों में से सही ''अर्थों'' को समझ रहा था कि नहीं। मैंने अरविन्द के पंचायत अध्याय के वाचन को सुना। यह सम्भवतः पाँचवी मर्तबा था कि हमने यह अध्याय मिलकर पढ़ा था। और तब भी मैं आश्वस्त नहीं हो पाया क्योंकि पंचायत के तमाम कार्यों के आलोचनात्मक मूल्यांकन के बावजूद वह अध्याय ''और फिर वे लोग हमेशा खुशी–खुशी जीते रहे'' जैसी भावना के साथ समाप्त हो रहा था।

इस अध्याय का मुख्य कथानक एक स्त्री द्वारा उसकी कॉलोनी के निकट हैंडपम्प हेतु गड्ढा खुदवाने के लिए की गई जद्दोजेहद है। एकलव्य की पाठ्यपुस्तकों और सामान्य पाठ्यपुस्तकों के मौलिक भेदों में से एक यह है कि जहाँ सामान्य पाठ्यपुस्तकों में संस्थाओं के कार्यों और शक्तियों का अपेक्षा के मुताबिक 'पाठ्यपुस्तकीय' ढंग से वर्णन किया जाता है, वहीं इस अध्याय में संस्थाओं की अक्रियाशीलता को दर्शाया गया है और यह भी बताया गया है कि किस तरह से निर्णय प्रक्रियाओं में गाँवों की राजनीति महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती है, भ्रष्टाचार कितना बढ़ गया है, इत्यादि। फिर वास्तविक जीवन के इन चित्रणों का उपयोग आलोचनात्मक सोच विकसित करने के लिए किया गया है, एक ऐसा तत्व जो भारतीय सामाजिक विज्ञान पाठ्यपुस्तकों में नदारद था।

इसके बाद मैंने महमूद और सुधीर के साथ चर्चाएँ शुरू कीं। सन्दर्भ था कि राजस्थानी खुद को मध्य प्रदेश की तुलना में ज्यादा 'प्रगतिशील' मानते हैं; वहाँ का राजनैतिक परिदृश्य बहुत अलग था, क्योंकि नियम–कायदे एक राज्य से दूसरे राज्य में भिन्न–भिन्न हो जाते हैं। इस परिस्थिति के बावजूद मेरी नई–नई सीखी हुई हिन्दी शब्दावली को सुधारते हुए, वे लोग बार–बार इस बात पर जोर देते कि मैं देवास ''टेकरी'' की तराई में नहीं रहता था, जैसा कि मध्यप्रदेश वाले उसे कहते हैं, बल्कि असल में वह ''डूँगरी'' है, जैसा कि राजस्थानी लोग उसे कहते हैं। और मैं सोच में पड़ गया कि स्थानीय तड़का डालने से किस हद तक बच्चा पाठ्यपुस्तकों से जुड़ा महसूस करेगा। हालाँकि पाठ्यपुस्तकों में समीक्षात्मक सोच

पर सामान्यतया काफी जोर दिया जाता है, जैसा कि केरल राज्य की पाठ्यपुस्तकों के लिए मिले मेरे पिछले कार्य में हुआ, पर किसी के पास इतनी हिम्मत नहीं होगी कि राजनैतिक संस्थाओं के वर्णन को नकारात्मक ढंग से खत्म करे। क्या यह स्पष्ट नहीं है कि पाठ्यपुस्तकों में राजनैतिक दुनिया की वास्तविक घटनाओं को कक्षा में ''ले आने'' की क्षमता होती है?क्या इतना भरोसा रखना सम्भव नहीं है कि बच्चे पंचायत की कहानी को बहुत सकारात्मक ढंग से खत्म करने वाले अनपेक्षित सकारात्मक मोड़ के रहस्य को सुलझा लेंगे? हम किस तरह से स्कूली पाठ्यपुस्तकों में समीक्षात्मक सोच के लिए दी गई जगह के महत्व का समालोचनात्मक ढंग से मूल्यांकन कर सकेंगे?

पर फिर एक दिन भारत सरकार ने पोखरन 2 करने का निर्णय लिया, और धीरे–धीरे लोक जुम्बिश[3] को समेट दिया गया। और अब राजस्थान की मौजूदा पाठ्यपुस्तकें तो अस्पष्ट रूप से भी इसका कोई संकेत नहीं देतीं कि सुधार के कोई प्रयास हुए भी थे।

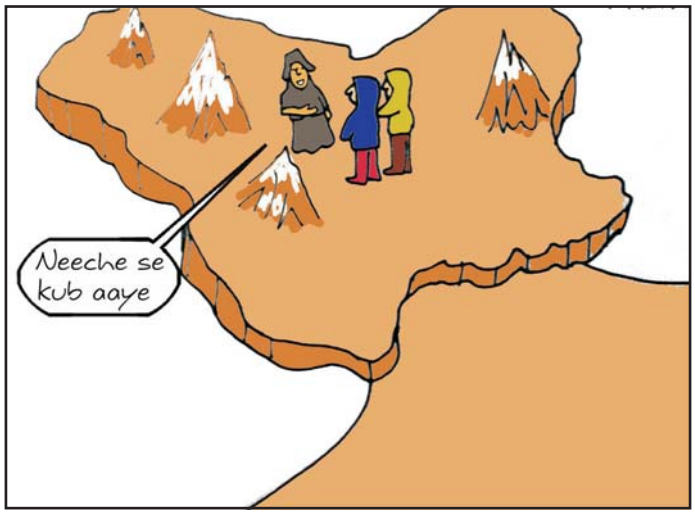

सबक 2 : क्या यह नीचे के लोगों का उपनिवेशवाद है?

नाम्ग्याल ने हमें गुर–गुर चाय पेश की। फिर उसने पूछा ''आप नीचे से कब आए ?'' कई लद्दाखियों द्वारा यही सवाल पूछे जाने का अनुभव हो चुका होने से हमने जोड़–तोड़ कर उसका उत्तर दिया। इसके बाद नाम्ग्याल सुजाता, विनीता, सुमति और मुझे यात्रा की योजना समझाने लगा। ''दिन में, लगभग 3 घण्टे चलने के बाद आप पहले गाँव पहुँचेंगे, जो कि एक छोटे से सोते के समीप स्थित है। वहाँ 4 घर हैं। आप अपना पैक किया हुआ दिन का भोजन वहाँ कर सकते हैं। फिर आप 4 घण्टे और चलकर दूसरे गाँव पहुँच जाएँगे। वहाँ 7 घर हैं। वे लोग आपको उनके घरों में ठहरने की जगह दे देंगे। अगले दिन करीब 4 या 5 घण्टे चलने के बाद आप उस दिन के पहले गाँव पहुँचेंगे, वहाँ एक ही घर है...।'' यह वर्णन इसी तरह चलता गया कि किस तरह से और किन–किन पड़ावों से गुजरकर हम अपने गंतव्य स्थान, लद्दाख के हिमतेंदुआ रिजर्व में दाखिल हो सकते थे। मेरे लिए मुद्दा यह नहीं था कि हम पहाड़ों पर इतना पैदल चल पाते या नहीं, बल्कि मेरे दिमाग में तो अभी भी पंचायत वाला अध्याय घूम रहा था। इतने कम घर होने पर वार्ड कैसे बन सकते हैं?पंचायत के अन्तर्गत आखिर कितना बड़ा क्षेत्र आएगा?पंचायतों की मेरी छवियाँ तो ऐसे गाँवों पर आधारित थीं जिनमें हजारों या कम से कम कई सौ लोग निवास करते थे! अतः मुझे अपनी काफी कुछ जानकारी को भूलने की जरूरत थी।

आपका ध्यान कक्षा 4 और 5 की पाठ्यपुस्तकों के उन नए सैटों पर जाता है जो 2003 में सैक्मोल (SECMOL) द्वारा निकाला गया था। इन्हें लद्दाख क्षेत्र में इस्तेमाल किया जाना था, जिसका अपने सामाजिक सम्बन्धों को संगठित करने का हमेशा से एक खास व अनोखा ढंग रहा था। पाठ्यपुस्तकें गोबा, लोरपा, चुरपोन आदि की पारम्परिक सामाजिक भूमिकाओं के बारे में बताकर बच्चों को पंचायत से परिचित करवाती हैं। लोरपा का काम यह सुनिश्चित करना होता था कि दूसरे लोगों के खेतों में घुस जाने वाले जानवरों को जब्त किया जाए; चुरपोन यह निर्णय लेता था कि किस खेत में किस दिन और कितनी बार पानी दिया जाएगा; और गोबा ग्राम प्रमुख हुआ करता था। पर राज्य के आधुनिक ढाँचे में पंचायत के भीतर विभिन्न पदों के लिए अब इन लद्दाखी शब्दों का प्रयोग नहीं किया जाता। अब वे ''नीचे'' से आयातित शब्द जैसे 'सरपंच', 'पंचायत' आदि का प्रयोग करने लगे हैं। और हाशिये में हम यह लिखने पर मजबूर हो जाते हैं कि 'क्या ये पाठ्यपुस्तकों के माध्यम से किए जा रहे सांस्कृतिक औपनिवेशीकरण के लम्बे हाथ तो नहीं हैं?'

लेकिन दो प्रश्न अभी भी अनसुलझे हैं। आखिर बच्चों की किताबों में क्यों पंचायत को लद्दाख के गाँवों का स्थानीय प्रशासन करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाने वाली संस्था के रूप में दर्शाया जाए? उत्तरपूर्वी राज्यों के कई जिलों की तरह लद्दाख का प्रशासन भी एक स्वायत्तशासी परिषद के हाथों में है। अतः यह एकदम स्पष्ट है कि पाठ्यक्रम को मुख्य रूप से ''नीचे के लोगों'' द्वारा तय किया जाता है, जो स्वायत्तशासी परिषद जैसी उन संस्थाओं से अपरिचित हैं जो देश के प्रधान रूप से जनजातीय प्रभुत्व वाले जिलों का संचालन करती हैं। ''नीचे के लोगों'' की पाठ्यपुस्तकों में हमें स्वायत्तशासी परिषदों के अस्तित्व की बात ही सुनने को नहीं मिलती। और जब सरकार के त्रि–स्तरीय ढाँचे की बात होती है तो क्या उसमें स्वायत्तशासी परिषदें सिर्फ एक अजीब विसंगति मात्र हैं? या क्या यह राज्य व्यवस्था का वह रवैया दर्शाता है जो जनजातीय समुदायों को हाशिये पर रहने वाले महत्वहीन समुदाय मानता है? इसलिए क्या इससे साफ जाहिर नहीं हो जाता कि यहाँ पढ़ाने योग्य चीजों को चुनने के लिए प्राथमिकता का पैमाना ही आड़ा–तिरछा है? या क्या अन्य प्रशासनिक ढाँचों, कुछ निश्चित संस्थाओं और लोगों की

मौजूदगी को नकारकर भारतीय राज्य इन लोगों को हाशिये पर ही रखना चाहता है? बड़ी विडम्बनापूर्ण बात है कि आखिर क्यों एक राज्य जो पाठ्यपुस्तकीय ज्ञान के माध्यम से अपने अस्तित्व को मजबूत बनाए रखना चाहता है, ऐसी संस्थाओं के अस्तित्व को नष्ट करता है, उसे टाल देता है और अनदेखा कर देता है?

एक अन्य प्रमुख दुविधा अतीत की यादों से उत्पन्न होती है। 'नीचे के लोगों' की पाठ्यपुस्तकों में पंचायत के वर्णन को इस तरह से प्रारम्भ करना बहुत प्रचलित है – 'पंच अर्थात पाँच, प्राचीन समय में हमारे गाँवों का प्रशासन पाँच बुद्धिमान लोगों के हाथों में होता था..।' एक आधुनिक संस्था को मान्यता दिलवाने के लिए हम अतीत की याद दिलाने लगते हैं। पाठ्यपुस्तकों में तो चीजों को बस बड़ी सरलता से लिख दिया जाता है कि 'पर उन दिनों में महिलाओं की बहुत अधिक भूमिका नहीं होती थी, और देखिए अब ''हमने'' इस चीज को सही कर दिया है।' पर पंचायत की चर्चा के सिलसिले में कभी–कभार किसी का ऐसा कह देना, 'क्या वैसी जैसी हरियाणा की खाप पंचायतें', अतीत की इन मधुर स्मृतियों को पंचर कर देता है और एकदम से आपके सामने उस जमाने से चली आ रही सामन्तवादी हकीकतें उजागर हो जाती हैं। अर्थात सामन्तवाद की प्रतिनिधित्व विहीन और अलोकतांत्रिक प्रकृति हमारे सामने आ जाती है। पर सोचने लायक सवाल यह है कि किसी 9 या 10 साल के बच्चे के लिए कथित रूप से किसी प्राचीन या आधुनिक संस्था को समझ पाने का क्या मतलब है? क्या यह मानना वाकई सम्भव है कि एक 10 वर्षीय बच्चा पाठ्यपुस्तकों के उदाहरणों द्वारा यह भेद दर्शाए जाने पर, कि तुम्हारे पिता खाप प्रमुख हैं और तुम्हारे पड़ोसी ग्राम पंचायत सदस्य हैं, इनके अलग–अलग अर्थों को समझ पाएगा?

सबक 3 : अकस्मात ही ब्रम्हपुत्र के पार जाना..

एक बार, अरविंद मुझे गुवाहाटी ले गया; वहाँ कक्षा 5 में पढ़ाई जा रही एक किताब पर तीन–दिवसीय कार्यशाला का आयोजन किया गया था। एक तरह से, मैंने यह आशा की थी कि फिर कभी मेरा पंचायतों से कोई वास्ता नहीं पड़ेगा। पर इससे भी ज्यादा उत्सुकता वाली एक और बात थी। मैंने कभी सोचा नहीं था कि ब्रम्हपुत्र के किनारों पर पानी के मुद्दे पर परिचर्चाएँ होंगी, क्योंकि इस राज्य के बारे में मेरा पाठ्यपुस्तकीय ज्ञान इसी तथ्य तक सीमित था कि वहाँ देश में सबसे ज्यादा बारिश होती है! मैं तो पानी को मध्यप्रदेश या राजस्थान की समस्या के रूप में देखता था। लेकिन वहाँ यह तय किया गया कि इस अध्याय में साझा प्राकृतिक संसाधनों की चर्चा की जा सकती है। और ऐसे संसाधनों में से तालाबों (पानी!) को सबसे महत्वपूर्ण माना गया। जहाँ राजस्थान और मध्यप्रदेश की पाठ्यपुस्तकों में यह चर्चा की जाती है कि किसी कार्यक्रम को लागू करने के लिये कौन सी कॉलोनी को किस तरह चुना जाए, वहीं असम के लिए तालाबों के रखरखाव व उनकी सुरक्षा से जुड़ा विषय महत्वपूर्ण था। इसलिए, यह तय किया कि स्कूल आने वाले बच्चों के दैनिक अनुभवों में आने वाली जरूरत से जोड़कर उन्हें पंचायतों की धारणा/भूमिका का महत्व समझाया जा सकता था। पर इस साझी समस्या के अलावा मैं एक नए सबक के बारे में भी बताना चाहूँगा।

> *इसी प्रकार, सामाजिक विज्ञान एक ऐसा विषय है जिसपर नागरिकों और पाठकों (इस मामले में बच्चे) को भविष्य के मतदाता के तौर पर तैयार करने का बोझ होता है. ध्यान दें 'मतदाता', न कि 'जुझारु व्यक्ति' या 'लड़ाकू महिला प्रतिनिधि'। क्या यहीं पर मध्यमवर्गीय मूल्यों का इस धारणा से टकराव होता है जिसके परिणामस्वरूप राज्य का अस्तित्व जस का तस बना रहता है?*

आपने ध्यान दिया होगा कि तीनों कड़ियों में पंचायत के अध्याय पर कक्षा 4, कक्षा 5 व कक्षा 6 में चर्चा की जा रही है। क्या आपने सोचा कि इसका क्या औचित्य है? यह बात अंशतः शैक्षिक ढाँचे के उन पेचीदा अनुक्रमों से उभरकर आती है जो हमारे देश के विभिन्न भागों में प्रचलित हैं। तथाकथित राष्ट्रीय पाठ्यक्रम (जैसे कि सीबीएसई और आईएसई) और कई हिंदीभाषी क्षेत्र कक्षा 6 से 8 को माध्यमिक स्कूल के रूप में परिभाषित करते हैं। जबकि देश की परिधि पर स्थित अधिकांश राज्यों में माध्यमिक स्कूल कक्षा 5 से 7 को माना जाता है। इन राज्यों में अक्सर राष्ट्रीय स्तर तक पहुँचने या 'उसके जैसा होने' की आकांक्षा देखने को मिलती है (हालाँकि, राष्ट्रीय स्तर के संभ्रांत राज्यों/लोगों की सोच पहले ही आगे बढ़ चुकी होती है और वे आईबी के बारे में सोचने लगते हैं, जहाँ शायद पंचायतों का कोई अस्तितत्व ही नहीं होता)। क्या यह सम्भव है कि इन स्थितियों में शिक्षा संवर्ती विषय बना रहे जबकि पाठ्यचर्या, पाठ्यक्रम, पाठ्यपुस्तकें, सभी एक राष्ट्रीय प्रतिरूप से बन्धे हुए प्रतीत होते हैं?

और कुछ दिलचस्प शिक्षाशास्त्रीय रिवाजों के चलते प्रशासनिक ढाँचों की चर्चा में ''सर्पिलाकार ढंग से ऊपर चढ़ते हुए'' और ''स्थानीय से दूरवर्ती'' तो जैसे पाठ्यपुस्तकीय लेखकों के नारे ही हो गए हैं। इसलिए राष्ट्रीय स्तर पर पंचायत कक्षा 3 में प्रगट हुई थी (भूतकाल इसलिए क्योंकि अब हम इस दिमागी जिद से छुटकारा पा गए हैं) राज्य सरकार कक्षा 4 में प्रगट हुई थी और केन्द्र सरकार से लेकर संयुक्त राष्ट्र कक्षा 5 में। तथाकथित ''सर्पिलाकार ढंग से ऊपर चढ़ते हुए क्रम'' की दृष्टि इसे कक्षा 6, 7, 8 में ले आई और एक बार फिर स्थानीय सरकारों और राज्य सरकारों को कक्षा 9 व

कक्षा 10 में मिला दिया गया। पर फिर, चूँकि विभिन्न राज्यों की स्कूली व्यवस्थाओं में प्राथमिक स्कूल के खत्म होने और उच्च/माध्यमिक स्कूल के शुरू होने की परिभाषाएँ अलग–अलग थीं, अतः पाठ्यपुस्तकीय विषयवस्तु को अक्सर तोड़ा–मरोड़ा जाता रहा। मुझे यह एहसास हुआ कि यह मनोवैज्ञानिक नियतिवाद–कि एक परिकल्पना या विषयवस्तु को सिर्फ एक खास स्तर पर ही पढ़ाया जा सकता है–एक मिथ्या उद्धात राष्ट्रवादी मान्यता है जिसे व्यवहार में लाना हमें नहीं आता। सर्पिलाकार ढंग से ऊपर चढ़ते हुए क्रम के नाम पर क्या हम बच्चों से सिर्फ पंचायतों के स्वरूप को लेकर वही की वही जानकारी उनके स्कूली जीवन के दौरान 3–3 बार याद करने को नहीं कह रहे थे?

सबक 4 : अपूर्ण अध्याय

इस तथ्य के बावजूद कि अब तक मेरी आधी जिन्दगी मेरे तथाकथित गृहराज्य के बाहर गुजरी है, लोग अब भी मुझसे यह अपेक्षा करते हैं कि मुझे केरल के बारे में बहुत सारी चीजें पता होंगी। स्थिति और भी मुश्किल हो जाती है क्योंकि पाठ्यपुस्तकीय लेखक अक्सर तथाकथित सहभागिता– आधारित लोकतंत्र के बारे में बात करना चाहते हैं जो, यह माना जाता है कि, उस राज्य में व्यावहारिक रूप में मौजूद है। और मेरी जड़ें उन कई गाँवों में से एक – चप्पारापडावु पंचायत – में है, जो इस परिवर्तन का आदर्श प्रतिरूप बन गया था। जिस साल मैंने पाठ्यपुस्तकों और पंचायत का काम करना शुरू किया, वह वही समय था जब तथाकथित सहभागिता–आधारित योजना वहाँ शुरू हुई थी, जो कि लाल लैतिनी अमेरिकी आयात था। तब तक कई राज्य 'नए' सुधार के अन्तर्गत पंचायती राज संस्थाओं को नूतन रूप में सामने ले आए थे और इस प्रकार उन्होंने अनिवार्यतः इस पुराने विचार को फिर से स्थापित किया कि ''लोगों के हाथों में शक्ति'' के विचार को पाठ्यपुस्तकों में भी परिलक्षित होना चाहिए। इसके अलावा, वर्ल्ड बैंक द्वारा सहायता प्राप्त डीपीईपी ने चुनिंदा तौर पर कोठारी आयोग की उस रिपोर्ट का प्रयोग करके देखने पर जोर दिया था जिसमें पंचायती राज संस्था को शिक्षा प्रणाली की समस्याओं के हल के रूप में पेश किया गया था। पूरी चर्चा के दौरान यदा–कदा गाँधी जी की याद को ताजा कर देने के कारण सभी राजनैतिक रंगों वाले लोग पंचायती राज को बढ़ावा देने के लिए प्रस्तुत प्रतीत होने लगे। इन सारी आवाजों के बीच में प्रासंगिक पाठ्यसामग्री का चुनाव किस तरह किया जा सकता है? अक्सर ऐसा क्यों होता है कि वयस्क लोग उन्हें आकर्षक लगने वाले हर नए विचार को खुद तो भूल जाते हैं पर उस नए विचार को बच्चों के लिए उपयोगी व सीखा जाने योग्य मानकर उसे उनपर लाद देते हैं।

इस प्रकार, यह पता लगाना मुश्किल काम है, कि किस प्रकार अध्यायों को पंचायती प्रशिक्षण के लिए बनाई जाने वाली एनजीओ नियमपुस्तिकाएँ बनने से रोका जाए। इसी प्रकार, सामाजिक विज्ञान एक ऐसा विषय है जिसपर नागरिकों और पाठकों (इस मामले में बच्चे) को भविष्य के मतदाता के तौर पर तैयार करने का बोझ होता है . ध्यान दें 'मतदाता', न कि 'जुझारु व्यक्ति' या 'लड़ाकू महिला प्रतिनिधि'। क्या यहीं पर मध्यमवर्गीय मूल्यों का इस धारणा से टकराव होता है जिसके परिणामस्वरूप राज्य का अस्तित्व जस का तस बना रहता है? लोकतंत्र में सशक्त विश्वास को स्कूली शिक्षा का महत्वपूर्ण, अपरिहार्य अंग माना गया था। अब पीछे देखने पर लगता है कि स्थानीय स्वशासन – सहभागिता–आधारित योजना – में दिखाया गया भरोसा एक बुलबुले जैसा ही था। वर्ल्ड बैंक से निधि प्राप्त करने वाली एसएसए इन्हें त्यागने की प्रक्रिया में है।[4] केरल में वामपंथ चौथी दुनिया के विचार को अपने दिमाग से दूर रखता है। फिर भी, अधिकांश लोग इस बात से सहमत होंगे कि कक्षा 6 सहभागिता–आधारित प्रजातंत्र पर सार्थक चर्चा करने के लिए जरा 'ज्यादा ही छोटी' उम्र होती है। यह तय किया जा सकता है कि ऐसी चर्चाएँ ऊँची कक्षाओं में की जा सकती हैं। और इस प्रकार, पंचायत पर अभी भी कई अपूर्ण अध्याय रह गए हैं, क्योंकि पढ़ाने योग्य समझी जाने वाली बातों को निर्धारित करने में संस्थाओं और प्रशासनिक प्रक्रियाओं का ही बोलबाला है। क्या मैं इसे कभी पूरा कर पाऊँगा?

उपसंहार – किसी भी बात के प्रति कभी आश्वस्त न हों

देश के कई कोनों में कुछ तोड़–मरोड़ कर चुकने के बाद आराम से अपनी आरामकुर्सी पर हाथ में अखबार और कॉफी का प्याला लिए मैं रंजन से दक्षिण कन्नड़ा के एक गाँव में पिछले महीने हुए चुनाव में उसके वोट के बारे में पूछ रहा था। उसने कहा कि उसने अपने वार्ड के लिए 5 सदस्य चुने हैं। वहाँ 14 पंचायत सदस्य और 5 वार्ड हैं। मैं उसकी इस बात का विश्वास नहीं कर पा रहा था। मुझे एहसास हुआ कि एनसीईआरटी की कक्षा 6 की ''नई'' पाठ्यपुस्तक गलत है। मेरे लिए पाठ्यपुस्तकों का लोकतंत्र एक व्यक्ति – एक वोट – एक प्रतिनिधि वाला होता है! पंचायत के चुनाव के सम्बन्ध में पाठ्यपुस्तक के वर्णन कहते हैं कि मतदाता की हैसियत से मैं अपने पंचायत वार्ड के लिए एक प्रतिनिधि चुनता हूँ। पर यह एक ऐसा राज्य है जहाँ बहुसदस्यी चुनाव–क्षेत्र हैं – एक पूरे वार्ड के लिए एक से ज्यादा प्रतिनिधि उत्तरदायी है। मैं तो उससे बहस भी नहीं कर सकता क्योंकि उसने मुझे याद दिलाया कि ''आपने तो सिर्फ कुछ राज्यों की पाठ्यपुस्तकें और नियमपुस्तकें ही देखी हैं जबकि मैंने असली में वोट डाला है''। ओफ्फो! मुझे उसकी बीच की उंगली पर लगी अमिट काली स्याही देखकर कितनी खीझ आ रही थी!

सन्दर्भ

1. इस लेख में कई वास्तविक लोगों का उल्लेख किया गया है, पर यह कोई निष्पक्ष अन्तःप्रेरित प्रक्रिया नहीं है। यह अवचेतन के धुएँ से भरा जैविक जातिगत वर्णन है जो कल्पनामिश्रित स्मृतियों पर निर्भर है। यह सत्य को खोजने वालों के लिए नहीं लिखा गया है, हालाँकि इसमें पेय पदार्थों के नाम ''शैक्षिक शिष्टाचार'' का ख्याल रखते हुए बदल दिए गए हैं। प्रयास किया गया है कि पाठों को विचारणीय प्रश्नों के साथ समाप्त किया जाए। यह उस पारम्परिक भारतीय शैक्षणिक विश्वास के विपरीत है जो यह मानता है कि हर बात एक साफ–सुथरी 'कहानी की सीख' के साथ समाप्त होना चाहिए।
2. यह लेख समाज के कुछ लोगों को हाशिये पर धकेल दिए जाने के स्वरूपों और मुद्दों का उल्लेख नहीं करता। इसके लिए आप इस लिंक पर 'इफ ईव कुड बी स्टीव' शीर्षक का लेख पढ़ सकते हैं : http://expressbuzz.com/magazine/if-eve-could-be-steve/84204.html
3. लोक जुम्बिश 1989 में शुरु हुआ एक आन्दोलन था जिसका मकसद था राजस्थान में ''सभी के लिए शिक्षा'' कार्यक्रम को गतिशीलता प्रदान करना। यह आन्दोलन शिक्षा के लिए सामुदायिक लामबन्दी करने, अध्ययन–अध्यापन प्रक्रिया की गुणवत्ता को सुधारने, सेवारत शिक्षकों को प्रशिक्षित करने, लैंगिक समानता पर जोर देने आदि कामों में शामिल रहा। 1992 में यह एक वृहद–स्तरीय कार्यक्रम बन गया। 1997 में लोक जुम्बिश ने मिडिल स्कूल की कक्षाओं के लिए पाठ्यपुस्तकीय सुधार का कार्य करना शुरू किया था।
4. प्रियंका पाण्डे, संगीता गोयल, वैंकटेश सुन्दररमन द्वारा लिखा गया ईपीडब्ल्यू का लेख ''पब्लिक पार्टिसिपेशन, टीचर एकाउण्टेबिलिटी एण्ड स्कूल आउटकम्स इन थ्री स्टेटस'' पढ़ें। ता. जून 12, 2010, अंक 14, पेज नं 24 75

अलक्स एम. जॉर्ज *इस बात की खैर मनाते हैं कि कभी कोई प्रबन्धकीय कार्य किए बिना केवल शैक्षणिक कार्य करते हुए ही एनजीओ सेक्टर में बचे रह पाए हैं। अब उनका एक धुँधला सा उद्देश्य है कि वे ''एकेडमिक्स'' में आ जाएँ क्योंकि वे ''सभी को शिक्षा देना चाहते हैं''!, प्रतीकात्मक रूप से! खैर, सितम्बर, 2010 से वे फिर से घुमक्कड़ी के एक और दौर में प्रवेश करने जा रहे हैं। उनसे इस* alexmgeorge@gmail.com *ईमेल पते पर सम्पर्क किया जा सकता है।*

14 21 वीं सदी के लिए भूगोल की शिक्षा

चन्द्रशेखर बालचन्द्रन

शुक्रवार, 3 दिसम्बर 1971 को पाकिस्तानी वायुसेना द्वारा भारतीय वायु क्षेत्र में की गई घुसपैठ से भारत और पाकिस्तान के बीच पूरी तरह से लड़ाई छिड़ गई। शनिवार, 4 दिसम्बर को, नेशनल हाईस्कूल, बंगलौर की कक्षा 8 'बी' के सामाजिक अध्ययन के शिक्षक नरसन्ना जी कक्षा में आए; पहला पीरियड था, सुबह–सुबह का वक्त था।

उन्होंने घोषणा की, ''आज, हम विश्व समाचारों पर पाँच मिनिट चर्चा करेंगे।'' हम लोग हल्के–हल्के रोमांचित हुए... अगर नीरस पाठ्यपुस्तक पढ़ने से बचा जा सके तो हम कुछ भी और करने के लिए प्रस्तुत रहते थे। वे दीवार–मानचित्र के लिए इधर–उधर देखने लगे। पर कक्षा में कोई मानचित्र नहीं था। बयासी बच्चे बुद्धुओं की तरह बिना किसी खास दिलचस्पी या भाव के उन्हें देख रहे थे।

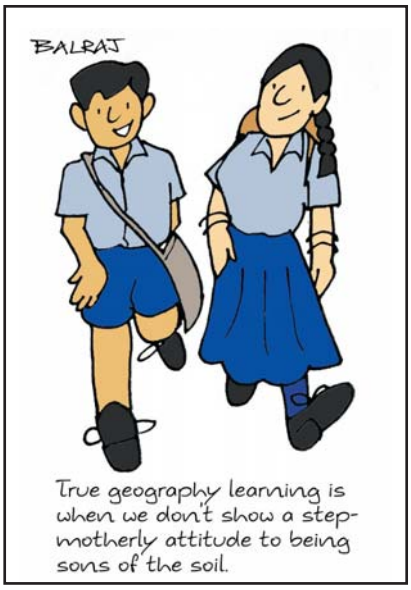

फिर उन्होंने हमारे मन में बिजली–सी दौड़ा दी। उन्होंने ब्लैकबोर्ड साफ किया और महाद्वीपीय सीमाओं वाला दुनिया का नक्शा बनाना शुरू कर दिया। पूरी कक्षा की, एक साथ, आश्चर्य भरी आवाज निकल गई और कमरे में महसूस किया जा सकने वाला रोमांच भर गया। उन्होंने आगे आने वाले अनेकों ''शिक्षक क्षणों'' (जैसा कि मैं आज उन्हें कहता हूँ) – जब बच्चों के दिमाग का 'बल्ब' जल जाता है – में से पहला हासिल कर लिया था। मेरा तो अधिक से अधिक दो वॉट का था। पर वह भी जल गया था!

इसके बाद उन्होंने हमें भारत–पाक लड़ाई के इतिहास का विस्तृत ब्यौरा दिया। 1947 से लेकर जल्दी–जल्दी बताते हुए 1971 तक की घटनाओं तक। पूर्वी पाकिस्तानियों पर किए गए अत्याचारों से लेकर उनकी प्रतिक्रियाएँ, पश्चिमी पाकिस्तान द्वारा किया गया सैनिक दमन, इस मामले में चीन की भागीदारी, इन्दिरा गाँधी की यह समझाने के लिए की गईं कई पश्चिमी देशों की यात्राएँ कि भारत युद्ध नहीं करेगा (जबकि असल में वह इसकी तैयारी कर रहा था)। इन सभी बातों को नाटकीय ढंग से बच्चों द्वारा बोली जाने वाली कन्नड़ में बताया गया। नरसन्ना जी अद्भुत व्यंग्य चित्रकार भी थे। इन्दिरा और रिचर्ड (निक्सन) अपनी–अपनी उभरी हुई नाकों के साथ ब्लैकबोर्ड पर एक दूसरे के सामने थे। टिक्का खान भारत द्वारा किए जा रहे अन्याय के विरोध में अल्पभाषी चाऊ एन लाई से चिल्लाते हुए शिकायत कर रहा था। पाँच मिनिट की चर्चा इतनी फैली कि उसमें युद्ध के पूरे दौर (जो कि गुरुवार, 16 दिसम्बर को समाप्त हुआ) में पड़ने वाली सामाजिक अध्ययन की सभी कक्षाएँ लग गईं। उन्होंने इस दौर में भूराजनीति, राजनैतिक इतिहास, और राजनैतिक तथा ऐतिहासिक भूगोल से मेरा परिचय करवा दिया था।

इसके 22 साल बाद, 1993 में, मैंने भूगोल में पी. एच.डी. प्राप्त की और अपना शोध–प्रबन्ध श्री नरसन्ना की स्मृति को समर्पित कर दिया। आज 2010 में, 39 साल बाद भी मुझे उस शनिवार सुबह हुई हर अनुभूति की जीवन्त याद है।

यही शिक्षक की ताकत है। यह घटना हमें आज के वक्त के लिए कई चीजें सिखाती है। मैं यहाँ कुछ का वर्णन करूँगा।

शिक्षक की ताकत

श्री नरसन्ना बहुत ही ऊँचे दर्जे के शिक्षक थे – अपने विषय से बहुत गहरे जुड़ाव और उस विषय की व्याख्यात्मक शक्ति से सराबोर। जिस बात को सरकार द्वारा बनाई गई भूगोल की किताबें कभी जागृत नहीं कर पाईं, उन्होंने कर दिया: भौगोलिक कल्पनाशीलता!

उनका पढ़ाना ऐसा था कि मैं सेना की चालों तथा जवाबी चालों की कल्पना कर सकता था। उस समय टीवी, इन्टरनेट, समाचार चलचित्र (वे तो हमेशा ही काफी बाद में आते थे), कुछ नहीं था। बस नरसन्ना जी का वृतान्त, उनके नक्शे, व्यंग्यचित्र, स्वाँग और अखबार थे। मैंने 4 दिसम्बर 1971 से अखबार पढ़ना शुरू किया। तब से ही, मैंने हमेशा भूगोल को समसामयिक घटनाओं से जोड़कर देखा है, और मुझे यह समझ में आया है कि दुनिया की सही समझ हासिल करने के लिए भूगोल का ज्ञान आवश्यक है।

प्रायद्वीपीय भारत के आकार का महत्व, हिमालय की स्थिति, बँटवारे की वजह से संसाधनों का पुनर्आबँटन, जलवायु की विविधताएँ, सांस्कृतिक भूगोल, और बाँग्लादेश के उद्भव के बारे में असंख्य अन्य कारक मेरे समक्ष जीवन्त हो गए थे।

प्रासंगिकता की प्रासंगिकता

दक्षिण एशिया के भूगोल से मेरा परिचय पहले से चल रही एक ऐसी प्रक्रिया के द्वारा कराया गया जिसका मैं हिस्सा था – राशन, हमारे

जवानों के लिए राशि जुटाना, रात में सुरक्षा कारणों से किए जाने वाले प्रकाश–रोधन के लिए घर की खिड़कियों के शीशों पर कत्थई कागज लगाना आदि। उस कक्षा में जो उन्होंने पढ़ाया उसकी तात्कालिक प्रासंगिकता थी। मैं बंगलौर में होने वाले रात्रिकालीन प्रकाश–रोधन की भौगोलिक वजह को समझ गया था। मैं दुबले–पतले छोटे–छोटे बच्चों के उस दल का सदस्य था जो लोगों को यह याद दिलाने के लिए सड़क पर यहाँ से वहाँ घूमता रहता था कि सीटी बजने तक सारी लाइटें बन्द रखें!

अभी की बात करें – हाल ही में मैंने कन्नड़ माध्यम के एक सरकारी स्कूल की सातवीं कक्षा की सामाजिक विज्ञान की कक्षा का दौरा किया। उस कक्षा के विद्यार्थियों ने मुझे बताया कि वे यूरोप कि प्राकृतिक विशेषताएँ पढ़ रहे थे। क्या शानदार बात थी!

मैंने एक गोला खींचा, प्रमुख अक्षांश बनाए, बच्चों से उनकी पहचान करवाई, और फिर मैंने उनसे आग्रह किया कि कोई भी एक बच्चा बोर्ड पर आकर यह दर्शाए कि पृथ्वी पर यूरोप कहाँ स्थित है। कोई भी नहीं बता सका। उन्हें यह भी नहीं पता था कि यूरोप क्या है। और जब मैंने किसी से यह बताने को कहा कि भारत कहाँ है तब भी यही नतीजा सामने आया।

मैंने उन लोगों से पूछा कि वे ऐसी पढ़ाई का अपने जीवन में क्या उपयोग देखते हैं। कोई उत्तर नहीं मिला। निश्चित ही ढेर सारे उपयोग हैं। आइए हम ऐसी उपयोगिता को सन्दर्भ के दायरे में रखकर देखें। मैंने उनसे पूछा कि क्या वे अपने रोजमर्रा के जीवन में भूगोल का किसी जाहिर ढंग से उपयोग करते हैं। फिर कोई उत्तर नहीं। मैंने उनसे पूछा कि वे रोज स्कूल कैसे आते हैं और उन्हें घर से स्कूल तक का और स्कूल से वापस घर तक का रास्ता कैसे पता है। ''यहीं पर आप भौगोलिक ज्ञान का उपयोग करते हो।'' बच्चों ने काफी कुछ ज्ञानियों के माफिक सिर हिलाया।

इसके बाद, मैंने उनसे पूछा कि उनमें से कितने लोग खेती करने वाले परिवारों से हैं। लगभग सभी थे। हमने सभी बच्चों की पारिवारिक भूमियों पर उगाई जाने वाली फसलों के बारे में एक झटपट सर्वेक्षण किया। फिर मैंने उनसे पूछा कि क्यों कुछ खास फसलें ही उगाई जाती हैं और बाकी नहीं। और इस चर्चा से जल्दी ही मिट्टी, जलवायु, पानी, बाजार, आहार–सम्बन्धी प्राथमिकताओं, और पीढ़ियों से चली आ रही कार्यप्रणालियों और दस्तूरों का महत्व सामने आया। मैंने उन्हें बताया कि उनके माता–पिता व्यावहारिक भूगोलज्ञ हैं और यहीं पर, रोजमर्रा के जीवन में, भूगोल का उपयोग होता है। ठीक लोगों के घरों में।

हमें ठीक हमारे पैरों के नीचे मौजूद भूगोल के साथ रिश्ता जोड़े बगैर दूरस्थ स्थलों के बारे में पढ़ाई करने की उपयोगिता पर सवाल खड़े करना चाहिए। विद्यार्थियों के जीवन के लिए प्रासंगिक होने वाला कोई भी विषय उन्हें आकर्षक लगेगा।

विषय, अध्ययन–विधा, एकीकरण

विषयों को इस तरह से पढ़ाया जाता है जैसे कि वे अलग–थलग जलरोधी डिब्बे हों। अधिकांश विद्यार्थियों को यह नहीं सिखाया जाता कि भूगोल किस तरह भौतिकी, रसायनशास्त्र, जीवविज्ञान, रेखागणित, अर्थशास्त्र, मानवशास्त्र, समाजशास्त्र, भाषा, और कलाओं को एक साथ लाकर हमारी दुनिया को समझ में आने लायक बना सकता है। भूगोल की शक्ति दोहरी होती है: (अ) वह हमारी दुनिया को अर्थपूर्ण करने के लिए एक अनोखा ढाँचा – भौगोलिक या स्थानिक ढाँचा – प्रदान करता है, और (ब) इससे, सभी विषयों को इस ढाँचे के साथ एकीकृत करने के बारे में दिमाग खुल जाता है जिससे घटनाओं और वस्तुओं की अन्तर्सम्बद्धता स्पष्ट हो जाती है। जब हम यह तरीका अपनाते हैं, तो हम भूगोल को एक अध्ययन–विधा के रूप में पढ़ाते हैं, न कि सिर्फ एक विषय की तरह से।

यह केवल एक बौद्धिक कसरत नहीं है। हमारी दुनिया की एक समेकित ('अखण्ड') समझ होने से हम समस्याओं को विश्लेषित करने व सुलझाने के लिए, योजना बनाने के लिए, और सामाजिक न्याय हेतु काम करने के लिए बेहतर ढंग से तैयार हो पाते हैं। भूगोल, इस 'क्षैतिज एकीकरण' (विभिन्न विषयों को एक ही स्तर के अन्तर्गत जोड़ना) के कार्य में बहुत महत्वपूर्ण ढंग से सशक्त भूमिका निभाता है। मैं दक्षिण–पश्चिमी मानसूनों के उदाहरण की मदद से शिक्षकों और बच्चों की यह समझने में मदद करता हूँ कि किस तरह भूगोल अपने साथ अन्य विषयों को जोड़ने में मदद करता है। आपको भौतिकी, रसायनशास्त्र, भूगोल, संस्कृति, जीवविज्ञान, गणित, ललित कलाओं, भाषाओं, आदि का उपयोग किए बगैर दक्षिण–पश्चिमी मानसूनों की भव्यता का पूरा बोध नहीं हो सकता। इस तरह की कार्यशाला के बाद मेरे पास भूगोल के शिक्षक तक आकर कहते हैं, ''मैंने भूगोल को लेकर इस तरह से कभी सोचा ही नहीं था!'' यह पद्धति आकर्षक है, मजेदार है और सीखने–सिखाने का सशक्त ढंग है। बस जरूरत है एक सहयोगपूर्ण प्रक्रिया की, जिसमें उन्हें अपनी कक्षाओं में विभिन्न प्रसंगों (टॉपिक्स) को पढ़ाने की समय–सारिणी तैयार करके उन्हें वापस दक्षिण–पश्चिमी मानसूनों से जोड़ देना है; अक्सर, ऐसा सम्बन्ध जोड़ने के लिए अन्य उदाहरणों के बजाय मानसून के उदाहरणों का उपयोग करना काफी होता है। यह पद्धति बच्चों को भूगोल के सामर्थ्य से परिचित कराती है और यह समझने में उनकी मदद करती है कि कैसे भूगोल अन्तर्विषयक सोच को प्रोत्साहित करता है।

> *भूगोल की शक्ति दोहरी होती है: (अ) वह हमारी दुनिया को अर्थपूर्ण करने के लिए एक अनोखा ढाँचा – भौगोलिक या स्थानिक ढाँचा – प्रदान करता है, और (ब) इससे, सभी विषयों को इस ढाँचे के साथ एकीकृत करने के बारे में दिमाग खुल जाता है जिससे घटनाओं और वस्तुओं की अन्तर्सम्बद्धता स्पष्ट हो जाती है।*

विद्यार्थियों के कक्षा–दर–कक्षा आगे बढ़ने के साथ–साथ, उनका भूगोल का ज्ञान स्पष्ट और काम में आने लायक ढाँचों तथा कौशल–समूहों ('ऊर्ध्वाधर एकीकरण') के रूप में विकसित होना चाहिए। दक्षिण–पश्चिमी मानसून का उदाहरण यहाँ भी लागू हो सकता है। शुरुआत हो सकती है मानसूनों के साथ जुड़ी सामान्य बातों – मूसलाधार बारिश, बारिश में खेलना, बारिश में खेलने को लेकर लोगों के डर, बरसाती मौसम के दौरान हमें किस तरह की चीजें खाना पसन्द होती हैं, इत्यादि – पर ध्यान देने से। हर आने वाले वर्ष के साथ इसमें कुछ बातों को जोड़ा जा सकता है जैसे कि मानसूनी तंत्र की पेचीदगी पर विचार करना, हम उसे किस तरह समझने की कोशिश करते हैं, उसके व्यवहार को निर्धारित करने वाले कारक कौन से हैं, इत्यादि। इस प्रकार, भूगोल का विद्यार्थी उत्तरोत्तर वर्षों में संरचनाओं की समरूपता से शुरू करके उनके उत्पादक कारकों और संरचनाओं के विश्लेषणों से होते हुए, प्रभावों और फिर अन्ततः उपयोग पर पहुँचने की प्रक्रिया में विविध कौशल विकसित कर लेगा।

21वीं सदी में भूगोल की शिक्षा की पुनर्कल्पना

21वीं सदी में, और 21वीं सदी के लिए, भूगोल की शिक्षा के सिद्धान्तों और उसके व्यावहारिक स्वरूप में सुधार करने की जबरदस्त जरूरत है ताकि शिक्षकों और विद्यार्थियों, दोनों को ज्यादा समर्थ बनाया जा सके। हमें शुरुआत इस बुनियादी स्वीकृति के साथ करना होगी कि मानव जाति के विकास के लिए सामाजिक विज्ञान की शिक्षा उतनी ही महत्वपूर्ण है जितनी कि 'प्राकृतिक' विज्ञानों की। यह शिक्षकों को शिक्षित किए बगैर सम्भव नहीं होगा।

हमें एक साथ त्रिमार्गी पद्धति अपनाने की जरूरत है

1. पाठ्यचर्या आधारित विकास

पाठ्यचर्या, पाठ्यक्रम परीक्षाएँ, और उत्तीर्ण होने का प्रतिशत, ये सब जीवन की वास्तविकताएँ हैं। लेकिन, एक समर्थ शिक्षक अवधारणात्मक समझ और उसकी उपयोगिता को स्पष्ट करने के लिए बस थोड़ा–सा अतिरिक्त प्रयास करके भूगोल की कक्षा को आकर्षक बना सकता है।

भौगोलिक अवधारणाओं को समझाने के लिए वर्तमान घटनाओं और अन्य जानी–पहचानी गतिविधियों का उपयोग करना एक प्रभावशाली तरीका है। उदाहरण के लिए, बच्चों को अक्षांश और देशान्तर पढ़ाना भूगोल के किसी मिडिल स्कूल शिक्षक के लिए सबसे कठिन चीजों में से एक होता है। कैलेण्डर के दो पर्वों – क्रिसमस और नववर्ष – का उपयोग करके इन दोनों चीजों को प्रभावशाली ढंग से पढ़ाया जा सकता है। बच्चों को कूदकर खाने पार करने के खेल (हॉपस्काच) में बहुत मजा आता है। उन्हें स्थानिक संरचना का बुनियादी सिद्धान्त सिखाने का यह बहुत अच्छा तरीका है। (आप इस गतिविधि में बन्धी– बन्धायी लैंगिक धारणाओं को भी तोड़ सकते हैं)।

समसामयिक घटनाओं का शिक्षण में उपयोग करने के लिए शिक्षक को थोड़ा शोध करना जरूरी होता है। विद्यार्थियों का अखबार पढ़ना भी जरूरी होगा। इसके लिए, कई अखबारों के सामान्यतया कम उपयोग किए जाने वाले न्यूज़पेपर्स इन एजुकेशन (एनआईई) कार्यक्रम उपयोगी हो सकते हैं।

अधिकांश मामलों में, शिक्षक–विद्यार्थी अनुपात बहुत–सी गतिविधि–आधारित शिक्षण विधियों के हिसाब से प्रतिकूल होता है। कोई कहानी सुनाना, कोई कविता याद करना, कोई फिल्मी गीत.... ये सभी तरीके टॉपिक्स को प्रासंगिक और आनन्ददायी बना देते हैं। आनन्दपूर्ण होने से उनकी समझ और अधिक स्पष्ट होगी और, यदि अच्छे सम्प्रेषण कौशल विकसित किए जाएँ, तो परीक्षाओं में बच्चों का प्रदर्शन भी बेहतर हो सकेगा।

2. सह–पाठ्यचर्या विकास

पाठ्यचर्या से जुड़ी अतिरिक्त पढ़ाई सहयोगात्मक होती है और पाठ्यपुस्तक के विषय–प्रसंगों से सम्बद्धित रहती है, पर जरूरी नहीं कि इसका सीधा–सीधा लक्ष्य परीक्षा परिणामों को बेहतर बनाना हो। विद्यार्थी किसी विषय–प्रसंग को बेहतर ढंग से समझ पाते हैं, उसका व्यावहारिक रूप से उपयोग कर पाते हैं, और इसलिए परीक्षा में कुछ प्रश्नों का बेहतर उत्तर दे पाते हैं (यह अन्तिम बात तो कई फायदों में से सिर्फ एक है)। जरूरी नहीं कि ये गतिविधियाँ अंक/क्रेडिटों में तब्दील हों। उदाहरणः जलवायु/मौसम के अध्याय के हिस्से के तौर पर एक अखबार का उपयोग करते हुए किसी जगह के दैनिक तापमानों में होने वाले उतार–चढ़ावों को समझना। भले ही सीधे तौर पर यह परीक्षा में आनेवाला सवाल न हो, पर इससे विद्यार्थियों को यह समझने में

मदद मिलती है कि जीवन के परिवेश में भूगोल किस तरह से काम कर रहा होता है।

3. पाठ्येत्तर विकास

भूगोल के सही अध्ययन के लिए यह सबसे महत्वपूर्ण विधि है। इससे विद्यार्थियों के मन में भूगोल के प्रति और दिलचस्पी पैदा करने में मदद मिलती है और पाठ्यचर्या–आधारित विकास को और बेहतर करने में भी मदद मिलती है। यह भूगोल की सर्वश्रेष्ठ मूल्य–सम्वर्धित शिक्षा है। यहीं पर नागरिक–सामाजिक ढाँचों को बहुमूल्य भूमिका निभाना होती है ताकि वे शिक्षकों और विद्यार्थियों, दोनों को सशक्त व समर्थ बनाएँ। इस तरीके में कम से कम निम्नलिखित अंग शामिल होंगेः

अ. जमीनी–प्रायोगिक कार्य – जमीनी–प्रायोगिक कार्य के माध्यम से भूगोल को समझना जैसे टहलते हुए, लोगों से बात करके, सर्वेक्षण इत्यादि के द्वारा भूदृश्य का विश्लेषण।

हम किस तरह पर्यावरण में मानव भूगोल की रचना करते हैं, इसे समझने का एक आसान ढंग है यह देखना कि हम किस तरह वाहनों के यातायात को पैदल यातायात (जो भारत में एक गम्भीर शहरी समस्या है) की तुलना में विशेष सुविधाएँ देते हैं; अपने भौगोलिक विस्तार में हम बहुत छोटे और बहुत वृद्ध लोगों की सुरक्षा चिन्ताओं पर किस तरह ध्यान देते हैं; शारीरिक रूप से अक्षम लोगों को हम किस तरह भौगोलिक पहुँचमार्ग मुहैया कराते हैं या उससे वंचित करते हैं।

एक बहुत दिलचस्प और शिक्षाप्रद अभ्यास होगा कि बच्चे अलग–अलग तरीकों (मौखिक रूप से, शाब्दिक रूप से, लिखित रूप से, मानचित्रों द्वारा, आदि) से दिशानिर्देश दें और उन दिशानिर्देशों का अनुसरण करें। इससे भूगोल से सम्बन्धित उनकी मानसिक कुशाग्रता और प्रखर होगी और वे उसे बहुत बेहतर ढंग से सम्प्रेषित कर पाएँगे क्योंकि वे पहले तो इसके के प्रति सचेत होंगे और फिर समय के साथ उसमें 'सहज निष्णात' हो जाएँगे।

> *भौगोलिक अवधारणाओं को समझाने के लिए वर्तमान घटनाओं और अन्य जानी–पहचानी गतिविधियों का उपयोग करना एक प्रभावशाली तरीका है। उदाहरण के लिए, बच्चों को अक्षांश और देशान्तर पढ़ाना भूगोल के किसी मिडिल स्कूल शिक्षक के लिए सबसे कठिन चीजों में से एक होता है। कैलेण्डर के दो पर्वों – क्रिसमस और नववर्ष – का उपयोग करके इन दोनों चीजों को प्रभावशाली ढंग से पढ़ाया जा सकता है।*

प्रायोगिक कार्य की तकनीकें विद्यार्थियों को सम्प्रेषण के बहुत से कौशल भी सिखा सकती हैं। यदि उन्हें यह पता लगाना हो कि उनके अपने पड़ोस में सार्वजनिक वृक्षों का लोगों के लिए क्या महत्व है, तो ऐसे में उन्हें कौन से सवाल पूछना चाहिए, उन्हें कैसे पूछा जाना होगा, वे यह कैसे जानेंगे कि जिन उत्तरों की उन्हें तलाश है वे उनके प्रश्नों से उन्हें मिलेंगे कि नहीं, आदि।

मैंने एक बार विद्यार्थियों से स्कूल के भीतर ही सर्वेक्षण करने को कहा। उन्होंने तुरन्त ही कहा, ''सर, हो सकता है कुछ लोग हमसे बात न करें।'' ढेर सारे मजेदार सवाल और एक–दूसरे की हँसी उड़ाते विनोदपूर्ण वातावरण में मैंने उन्हें यह समझा दिया कि लोगों से भूगोल सम्बन्धी जानकारी हासिल करने हेतु किए जाने वाले संवाद में शारीरिक भाषा का कितना महत्व होता है। ''तुम लोग बच्चे हो। अगर तुम 'कुत्तों के बच्चों जैसा प्यारा' चेहरा बनाकर कोई बात पूछोगे तो कोई भी तुम्हें न नहीं कह पाएगा।'' केवल कुछ ही बच्चों को इस तरीके का उपयोग करना पड़ा पर उनके मुताबिक उन्हें सफलता हासिल हुई।

ब. केस स्टडीज़ (वास्तविक मामलों के अध्ययन)– वास्तविक जीवन से जुड़ी केस स्टडीज़ लेना, वास्तविक आँकड़े इकट्ठे करना और जीवन की अव्यवस्था को समझना और वास्तविक मुद्दों जैसे सामाजिक न्याय, पर्यावरण संरक्षण, आपदा प्रबन्धन, सुरक्षा, सेवाओं की उपलब्धता, वाणिज्य, इत्यादि के समाधानों के बारे में सोचने के लिए शोध करना। मैंने भूगोल–सम्बन्धी शहरी मुद्दों के बारे में बच्चों को सिखाने के लिए सामाजिक मुद्दों (उदाहरण के लिएः बंगलौर में वेश्यावृति में लिप्त लड़कियों की केस स्टडी) पर गैर सरकारी संगठनों द्वारा किए गए कार्यों के आँकड़ों का उपयोग किया और पाया कि विद्यार्थी सामाजिक न्याय के मुद्दों के प्रति बहुत बुद्धिमत्तापूर्वक और संवेदनशीलता से प्रतिक्रिया देते हैं।

स. आईटी (सूचना–प्रौद्योगिकी) समर्थ भूगोल शिक्षा– भौगोलिक आँकड़ों को संसाधित करने के आधुनिक तकनीकी उपकरणों जैसे जीपीएस, जीआईएस, इंटरनेट, आदि का उपयोग करना सीखने से विद्यार्थियों को महत्वपूर्ण विश्लेषणात्मक और समस्या–निवारक योग्यताएँ हासिल होती हैं जिनसे उन्हें 21वीं सदी में विचारों और नौकरियों के बाजार में प्रतिस्पर्धा करने में मदद मिलती है।

दुर्भाग्यवश, अधिकांश पाठ्यक्रम इस बात की ओर गम्भीरता से ध्यान नहीं देते। इस कमी को नागरिक–सामाजिक संस्थाओं को ही पूरा करना होगा। इस लेख को लिखते वक्त, द इण्डियन इन्सटीट्यूट ऑफ ज्योग्राफिकल स्टडीज़ द्वारा बंगलौर के एक स्कूल के परिसर में जिओविद्या ज्यॉग्रफी सेंटर फॉर ऐक्सीलेंस की

स्थापना की जा रही है ताकि निकट भविष्य में इस दिशा में सघन कार्य करने के लिए छोटे–छोटे समूह शुरू किए जा सकें।

कम्प्यूटरों की बुनियादी जानकारी, और भूगोल की बुनियादी अवधारणाओं की गहरी समझ रखने वाले विद्यार्थी इन उपकरणों को समझ पाएँगे और काफी जल्दी ही वे उनका उपयोग करना भी सीख जाएँगे। आठवीं कक्षा से लेकर आगे तक के सभी विद्यार्थियों को इन प्रौद्योगिकियों और तकनीकों की समझ हासिल होना चाहिए। गूगल अर्थ और ऐसे ही अन्य मंच अच्छी–खासी शुरुआत हैं पर वे भौगोलिक ज्ञान की उत्पत्ति और उपयोग के लिए जरूरी प्रखर योग्यताएँ प्रदान नहीं करते। लेकिन, शुरुआत तो कहीं से की ही जाना चाहिए।

तो सार रूप में मैं यही कहना चाहूँगा कि हमारे विद्यार्थियों के स्थानिक बोध के सभी आयामों को विकसित करने के लिए भूगोल की शिक्षा बेहद महत्वपूर्ण है। भूगोल को सामाजिक और प्राकृतिक विज्ञानों के बीच एक पुल के रूप में देखा जाना चाहिए। भारत में 60 साल से भी ज्यादा समय से हम शिक्षा में 'बुनियादी बातों' की जरूरत पर ज़ोर देते रहे हैं। और यह बिलकुल सही है।

लेकिन, अगर हम चाहते हैं कि एक नई साहसी दुनिया के उद्भव की प्रक्रिया में ज्यादा से ज्यादा लोगों की भागीदारी सुनिश्चित करने में हम मदद कर सकें तो हमें तुरन्त ही सतत प्रयास करके शिक्षा में 'मूल्य संवर्धन' को जगह देने पर जोर देना होगा।

इससे कम में काम नहीं चलेगा।

इन मुद्दों के बारे में दो ब्लॉग हैं जो बड़े उपयोगी साबित हो सकते हैं। पर इस लेख को लिखते वक्त नेट पर उनका स्थान बदला जा रहा है। उनके यूआरएल जानने के लिए कृपया मुझसे बाद में सम्पर्क करें।

चन्द्रशेखर बालचन्द्रन *बंगलौर के निवासी हैं। उन्होंने लगभग 25 सालों तक अमेरिका और भारत में स्कूली तथा विश्वविद्यालयीन स्तर पर भूगोल शिक्षा के क्षेत्र में काम किया है। वे द इण्डियन इंस्टीट्यूट ऑफ ज्यॉग्रॉफिकल स्टडीज़ (http://tiigs.org), बंगलौर, के संस्थापक व निदेशक हैं, जिसका काम है शिक्षकों और विद्यार्थियों को नूतन व प्रासंगिक भूगोल शिक्षा देने व ग्रहण करने के लिए समर्थ बनाना। वे द हिन्दु के परिशिष्ट ''यंग वर्ल्ड'' में युवा लोगों के लिए भूगोल–सम्बन्धी लेख अक्सर ही लिखते हैं। उनसे इस* balachandran@tiigs.org *ईमेल पते पर सम्पर्क किया जा सकता है।*

15 इतिहास की शिक्षा से जुड़े मुद्दे : इंग्लैण्ड और अमेरिका के दृष्टिकोण

लिज़ डॉज़ दुरईसिंह

इस लेख में मैं इतिहास की शिक्षा को लेकर इंग्लैण्ड और अमेरिका में पहले से मौजूद व नए उभर रहे कुछ मुद्दों का चुनिन्दा विवरण प्रस्तुत कर रही हूँ। मैं यह भी समझाने की कोशिश करूँगी कि इन दोनों देशों की इतिहास पढ़ाने की पद्धतियाँ बहुत भिन्न क्यों हैं।

थोड़ी सी पृष्ठभूमि

अमेरिका में, जहाँ शिक्षा विकेन्द्रीत है, अलग–अलग राज्य इतिहास पढ़ाने के लिए अपने–अपने मानक और दिशा–निर्देश तय करते हैं; लेकिन, देशभर के शिक्षक सामान्यतः उन्हीं पाठ्यपुस्तकों का प्रयोग करते हैं जो बड़ी–बड़ी प्रकाशन कम्पनियों द्वारा प्रकाशित की जाती हैं। विद्यार्थियों को हाईस्कूल (14–18 वर्ष) के दौरान आमतौर पर अमेरिकी इतिहास और विश्व इतिहास, दोनों एक साथ पढ़ना पढ़ते हैं, हालाँकि अन्तिम वर्ष के दौरान इतिहास पढ़ना ऐच्छिक होता है। प्राथमिक और मिडिल स्कूलों में इतिहास सामान्यतः एक बृहत सामाजिक अध्ययन पाठ्यचर्या में सम्मिलित रहता है।

इंग्लैण्ड में, राष्ट्रीय पाठ्यचर्या 1988 से लागू है। यहाँ मैं सिर्फ इंग्लैण्ड की बात कर रही हूँ, क्योंकि इंग्लैण्ड, वेल्स और उत्तरी आयरलैण्ड में इतिहास की पाठ्यचर्या में अन्तर हैं; जबकि स्कॉटिश शिक्षा तंत्र काफी अलग है। 14 साल की उम्र तक अँग्रेज़ विद्यार्थी जिस अध्ययन कार्यक्रम का अनुसरण करते हैं उसमें इतिहास की विषयवस्तु, अवधारणाएँ और उनसे जुड़े कौशल, और साथ ही उनमें विद्यार्थियों की उपलब्धि के अपेक्षित स्तर निर्धारित रहते हैं। 14 साल की उम्र के बाद इतिहास पढ़ना अनिवार्य नहीं रह जाता; जो विद्यार्थी इतिहास की पढ़ाई जारी रखना चाहते हैं वे जीसीएसई और उच्च स्तरीय इतिहास पाठ्यक्रम चुनते हैं जो सरकार के दिशानिर्देशों के अनुसार काम करने वाले विभिन्न परीक्षा बोर्डों द्वारा संचालित किए जाते हैं।

किसका इतिहास? विषयवस्तु को लेकर विवाद

दुनियाभर में इतिहास, स्कूली पाठ्यचर्या का सर्वाधिक विवादित विषय होता है। क्योंकि इतिहास का राष्ट्रीय, नस्लीय, धार्मिक व राजनैतिक पहचान और सत्ता के साथ इतना अन्तरंग जुड़ाव होता है, कि अलग–अलग समूहों में अक्सर इस बात की प्रतिस्पर्धा मची रहती है कि इतिहास की स्कूली किताबों व पाठ्यचर्या में अतीत के उनके 'संस्करण' को स्थान मिले। भारत तो खुद भी हाल के वर्षों में इस तरह के संघर्षों से बच नहीं पाया है।

राजनैतिक खींचतान के अलावा भी, विद्यार्थियों में राष्ट्रीय गौरव व देश के प्रति निजता की भावना को बढ़ावा देने के लिए अमेरिका में बिना किसी संकोच के इतिहास की शिक्षा का प्रयोग किया गया है; उदाहरण के लिए, जब अमेरिकी स्वतंत्रता संघर्ष की बात होती है तो अमेरिकी विद्यार्थी यही कहेंगे ''हम अँग्रेजों के कब्जे से आजादी चाहते थे'', भले ही उनका व्यक्तिगत पारिवारिक इतिहास जो भी हो।

अमेरिका में, सामाजिक अध्ययन पाठ्यचर्या की समीक्षा को लेकर टैक्सस में हुए हालिया विवाद ने फिर यह बात साबित कर दी कि किस प्रकार इतिहास की शिक्षा इस देश में भिन्न–भिन्न राजनैतिक एजेंडों के लिए लड़ाई का अखाड़ा बनी हुई है। दाँव काफी बड़ा था क्योंकि टैक्सस का शिक्षा बजट अमेरिका के सबसे बड़े शिक्षा बजटों में से एक है; पाठ्यपुस्तक प्रकाशक सामान्यतः टैक्सस के पाठ्यचर्या की विशिष्टताओं का ध्यान रखते हैं जिनकी हर दस वर्ष बाद समीक्षा की जाती है। इस बार, रूढ़िवादी पक्ष के समर्थकों ने सफलतापूर्वक ऐसे संशोधनों के लिए दबाव बनाया जो अमेरिका के संस्थापक पूर्वजों के एक धर्मनिरपेक्ष सरकार बनाने के उद्देश्य को कमजोर करने वाले थे; उन्होंने अपने नायक रॉनल्ड रीगन के लिए भी पाठ्यक्रम में ज्यादा प्रतिष्ठित भूमिका सुनिश्चित करवा ली। इसके विपरीत, कहीं ज्यादा सकारात्मक रुख वाले अनुकरणीय लातिनी अमेरिकी व्यक्तियों को पाठ्यक्रम में शामिल करवाने के लिए अन्य समूहों के प्रयासों में अड़ंगा लगा दिया गया।

राजनैतिक खींचतान के अलावा भी, विद्यार्थियों में राष्ट्रीय गौरव व देश के प्रति निजता की भावना को बढ़ावा देने के लिए अमेरिका में बिना किसी संकोच के इतिहास की शिक्षा का प्रयोग किया गया है; उदाहरण के लिए, जब अमेरिकी स्वतंत्रता संघर्ष की बात होती है तो अमेरिकी विद्यार्थी यही कहेंगे ''हम अँग्रेजों के कब्जे से आजादी चाहते थे'', भले ही उनका व्यक्तिगत पारिवारिक इतिहास जो भी

हो। अमेरिकी पाठ्यपुस्तकों द्वारा कुल मिलाकर जो कहानी बताई जाती है वह अमेरिकी असाधारणता की, और उसके नागरिकों के लगातार बढ़ते हुए अधिकारों और स्वतंत्रताओं की होती है जिसकी पुष्टि के रूप में दास प्रथा के खात्मे और नागरिक अधिकार आन्दोलन का जिक्र किया जा सकता है। आज की इतिहास की पाठ्यपुस्तकें कम से कम ऐसे कई समूहों में से कुछ के दृष्टिकोणों को शामिल तो करती हैं जिन्हें एक समय अमेरिका के अतीत के आधिकारिक वर्णनों से बिलकुल ही अलग–थलग कर दिया गया था; फिर भी, पारम्परिक राष्ट्रीय आख्यान वैसे का वैसा ही है।

इंग्लैण्ड में पढ़ी जाने वाली इतिहास की विषयवस्तु काफी भिन्न प्रकार की है, हालाँकि विशेष रूप से 1980 के दशक के दौरान, दक्षिणपंथी सोच रखने वाले कई लोगों – जिनमें मार्गरेट थैचर भी शामिल थीं – ने जोरदार ढंग से यह तर्क सामने रखा कि विद्यार्थियों को ब्रिटिश इतिहास की घटनाओं और उसकी उपलब्धियों के सीधे–सटीक वर्णन का अध्ययन करना चाहिए। वर्तमान में, यह बहस फिर छिड़ गई है कि क्या स्कूलों में इस स्पष्ट उद्देश्य के साथ और ज्यादा ब्रिटिश इतिहास पढ़ाया जाना चाहिए कि विद्यार्थियों में ''बर्तानियत'' (जिसे ''अँग्रेजियत'' और ''वैल्शियत'' की तुलना में ज्यादा व्यापक माना जाता है) की और प्रगाढ़ भावना को प्रोत्साहन मिले। कई प्रख्यात इतिहासकारों ने सीधे तौर पर राष्ट्रीय महत्व के मुद्दों की बजाय नाजी जर्मनी और अमेरिका की महामन्दी को दिए गए अपेक्षाकृत ज्यादा महत्व की आलोचना की है। उन्होंने पाठ्यचर्या के टुकड़ों–टुकड़ों में बँटे स्वरूप की भी आलोचना की है जो विद्यार्थियों को अतीत के बारे में एक सुसम्बद्ध और समग्र वृत्तान्त विकसित करने का मौका नहीं देती।

''अध्ययन–विधा'' के रूप में इतिहास बनाम ''विषयवस्तु'' के रूप में इतिहासः इतिहास को पढ़ाए जाने के ढंग के बारे में विवाद

इंग्लैण्ड में विद्यार्थियों के अपेक्षाकृत कम ब्रिटिश इतिहास पढ़ने की एक वजह यह है कि अतीत का अध्ययन करने का प्रमुख उद्देश्य देशभक्ति को बढ़ावा देना नहीं माना जाता। 1960 के दशक से आंग्ल शिक्षा विशेषज्ञों और शिक्षकों के बीच 'नया' इतिहास लोकप्रियता हासिल करने लगा। अगर संक्षेप में कहूँ तो 'नया' इतिहास, उस 'परम्परागत' इतिहास का जवाब था जो समालोचकों के मुताबिक विद्यार्थियों को सोचने के बजाय केवल याद करना या रटना सिखाता था। 'नए' इतिहास के हिमायतियों ने राष्ट्रीय राजनीति और सैनिक अभियानों के बजाय '(निचले स्तर से)' आम आदमी के इतिहास' पर कहीं ज्यादा जोर दिया; और वे लोग यह भी चाहते थे कि पाठ्यक्रम में और अधिक गैर–ब्रिटिश इतिहास का समावेश हो तथा घटनाओं के विभिन्न भागीदारों के दृष्टिकोणों पर भी और ज्यादा ध्यान दिया जाए। उन्होंने अतीत के कालक्रमानुसार विस्तृत फैले दौरों के अध्ययन की बजाय इतिहास के किन्ही खास प्रसंगों और लम्हों का गहराई से अध्ययन करने की वकालत की। 1972 में शुरू किया गया स्कूल्स हिस्ट्री प्रॉजेक्ट (एसएचपी) 'नए' इतिहास के तरीके का एक प्रमुख समर्थक था और इसकी पाठ्यचर्याएँ शिक्षकों के बीच (जो कि राष्ट्रीय पाठ्यचर्या के लागू होने से पहले अपना खुद का पाठ्यक्रम चुनने के लिए स्वतंत्र थे) खासी लोकप्रिय थीं; आज के वक्त की बात करें तो एसएचपी अभी भी प्रभावशाली है, खासतौर पर इसलिए क्योंकि, दक्षिणपंथी सोच वाले लोगों के प्रचण्ड विरोध के बावजूद भी राष्ट्रीय पाठ्यचर्या में 'नए' इतिहास के कई पहलुओं को शामिल किया गया है।

हालाँकि इंग्लैण्ड में, इतिहास पढ़ाने को लेकर 'नई' और 'परम्परागत' पद्धतियों के बारे में होने वाली बहसें सामान्यतः राजनैतिक दृष्टियों के अनुरूप ही चलती रही हैं, पर 'नया' इतिहास अनिवार्य रूप से वामपंथी या जनवादी एजेंडे को बढ़ावा देने के लिए नहीं है। बल्कि, उसका सरोकार इतिहास को ठोस और बंजर तथ्यों का संग्रह बना देने के बजाय उसे दुनिया के बारे में एक गतिशील अध्ययनविधा या जानने के ढंग के रूप में देखने से है। अतीत को समझने के लिए, विद्यार्थियों को इतिहासकारों की तरह से सोचने के लिए प्रोत्साहित किया जाता हैः ऐतिहासिक साक्ष्यों का विश्लेषण करना; विभिन्न ऐतिहासिक विवेचनाओं पर विचार करना; कोई चीज क्यों बदली या फिर वैसी की वैसी क्यों रही, इसे लेकर अपने तर्क तैयार करना; और/या किन्ही खास घटनाओं या परिवर्तनों के महत्व पर विचार करना। इस बात पर गौर करना जरूरी है कि अतीत के बारे में ठोस ज्ञान – या 'विषयवस्तु'. अध्ययन–विधा की तरह इतिहास की समझ विकसित करने के लिए बेहद आवश्यक होता है; परन्तु मात्र यही इतिहास का आदि और अन्त नहीं होता। जहाँ कुछ समालोचकों ने बाल इतिहासकार बनाने की कोशिश करने के विचार की जमकर आलोचना की है क्योंकि अधिकाँश विद्यार्थी पेशेवर रूप से इतिहासकार नहीं बनेंगे, वहीं कुछ दूसरों ने यह तर्क दिया है कि अतीत के बारे में समीक्षात्मक ढंग से सोचना सीखना और यह कि हम इसके बारे में कैसे जानते हैं, सभी विद्यार्थियों के लिए मूल्यवान साबित होता है। निश्चित ही, इतिहास को एक अध्ययन–विधा के रूप में पढ़ाने की आकांक्षा पश्चिम के ऐसे कई प्रख्यात शिक्षकों व शिक्षाशास्त्रियों की उस अपील के अनुरूप है जिसमें इन लोगों ने बच्चों में स्कूली पाठ्यचर्या के सभी पहलुओं की गहरी समझ विकसित करने के लिए पढ़ाने की बात कही थी।

> *हालाँकि इंग्लैण्ड में, इतिहास पढ़ाने को लेकर 'नई' और 'परम्परागत' पद्धतियों के बारे में होने वाली बहसें सामान्यतः राजनैतिक दृष्टियों के अनुरूप ही चलती रही हैं, पर 'नया' इतिहास अनिवार्य रूप से वामपंथी या जनवादी एजेंडे को बढ़ावा देने के लिए नहीं है। बल्कि, उसका सरोकार इतिहास को ठोस और बंजर तथ्यों का संग्रह बना देने के बजाय उसे दुनिया के बारे में एक गतिशील अध्ययनविधा या जानने के ढंग के रूप में देखने से है।*

हालाँकि, इतिहास को एक अध्ययन–विधा के रूप में पढ़ाने का विचार धीरे–धीरे अमेरिका में भी थोड़ी पैठ बनाने लगा है (और कुछ कक्षाओं में तो यह विचार वर्षों से मौजूद है), अधिकांश शिक्षक व प्रशासक इतिहास शिक्षा के लिए अभी भी पाठ्यपुस्तक का पूर्णरूपेण अनुसरण करने के 'परम्परागत' तरीके को ही अपनाए जा रहे हैं। उत्तरी अमेरिका के प्रख्यात इतिहास शिक्षा विशेषज्ञ – जैसे सैम वाइनबर्ग (अमेरिका) और पीटर सीक्सज़ (कनाडा) – इतिहास शिक्षा के लिए 'पूछताछ–आधारित' या अध्ययन–विधा रूपी पद्धति अपनाने की वकालत करते हुए यह तर्क देते हैं कि यह पद्धति इतिहास की परिष्कृत समझ विकसित करने में विद्यार्थियों को समर्थ बनाती है और साथ ही उनमें इतिहास के प्रति एक गहरी दिलचस्पी भी पैदा करती है। अँग्रेज शोधकर्ताओं (उदाहरण के लिए, पीटर ली, डैनिस शैमिल्ट और रॉस ऐशबाई) के समानान्तर किए गए उनके शोधकार्य में इस बात को भी रेखांकित किया गया है कि इतिहास को लेकर विद्यार्थी की सोच अक्सर सहजज्ञान के उलट होती है और इतिहास के बारे में सशक्त और फलप्रद विचार विकसित करने के लिए विद्यार्थियों को सहयोग देने के साथ–साथ इसे उनके समक्ष एक चुनौती के रूप में रखा जाना चाहिए। उदाहरण के लिए, शुरुआत में कई विद्यार्थी मानते हैं कि इतिहास तो पहले से ही 'बना–बनाया' होता है और उसे ऐतिहासिक स्रोतों से निर्मित करने की कोई जरूरत नहीं होती या, कि घटनाओं के घटने के पीछे बस ऐतिहासिक पात्रों की वैसा करने की इच्छा होती है: अध्ययन–विधा के रूप में इतिहास पढ़ाना आसान काम नहीं है।

आगे की ओर देखना: इतिहास की शिक्षा से जुड़े उभरते विचार

मीडिया में अक्सर यह बताया जाता है कि सालों की इतिहास शिक्षा के बावजूद अमेरिकी और इंग्लिश विद्यार्थी अतीत के बारे में बहुत कम जानते हैं। हालाँकि इस तरह की चिन्ताएँ दशकों पुरानी हैं और बड़े सरलीकृत ढंग से गढ़ ली जाती हैं, लेकिन कुछ तो है जो गड़बड़ कहा जा सकता है। इंग्लैण्ड में, चिन्ता यह है कि विद्यार्थी अतीत की एक सुसम्बद्ध तस्वीर नहीं गढ़ पाते क्योंकि वे ऐतिहासिक सोच के अपने 'कौशलों' को इधर–उधर बिखरे प्रसंगों पर लगाए रहने में ही बहुत व्यस्त रहते हैं। अमेरिका में, जहाँ तथ्यों का कालक्रम में अध्ययन करने पर ज्यादा जोर दिया जाता है, विद्यार्थी उन बातों–तथ्यों को सीखने–समझने और आत्मसात करने में असमर्थ – या उदासीन – मालूम पड़ते हैं जो उन्हें पढ़ाया जा चुका होता है।

हाल में, इतिहास को एक अध्ययन–विधा के रूप में पढ़ाने के विचार की पुनर्कल्पना किए जाने के उपाय के तौर पर ''ऐतिहासिक चेतना'' की अवधारणा में दिलचस्पी बढ़ी है। ऐतिहासिक चेतना मोटे तौर पर इस बात को इंगित करती है कि मनुष्यों के रूप में हम किस तरह खुद को समय में स्थित करते हैं और किस तरह अपनी जिन्दगी को अतीत और भविष्य के साथ जोड़ते हैं; इसका प्रयोजन यह समझने के लिए अतीत का उपयोग करना है कि हम लोग कौन हैं और हम कैसी जिन्दगी जी रहे हैं तथा किस तरह जीने की अपेक्षा कर सकते हैं। उदाहरण के लिए, पीटर ली जैसे विशेषज्ञ वर्तमान में 'उपयोगी ऐतिहासिक रूपरेखाओं' को विकसित करने में दिलचस्पी ले रहे हैं जो अतीत के बारे में विद्यार्थियों की समझ को गढ़ने में मदद करेंगी; ये रूपरेखाएँ नए ज्ञान का समावेश करने और उसे संगठित करने में विद्यार्थियों की मदद करेंगी लेकिन यह प्रक्रिया 'परम्परागत' शिक्षा के गैरलचीले या हठधर्मी तरीके से अलग होगी। ऐसी रूपरेखाएँ, जो पूरी मनुष्य जाति के इतिहास को समाहित करेंगी, शुरुआत में तेजी से पढ़ाई जाएँगी, पर विद्यार्थियों के इस विधा के ज्ञान के ज्यादा परिष्कृत होते जाने के साथ उनकी लगातार समीक्षा की जाती रहेगी और उसे समय व परिस्थिति के अनुकूल ढाला जाता रहेगा। विद्यार्थियों को वर्तमान व अतीत के बीच सम्बन्ध बनाने के लिए भी प्रोत्साहित किया जाएगा।

इतिहास की शिक्षा में हुए कई सुधार व परिवर्तन शोध के परिणामस्वरूप हुए हैं। लेकिन, क्या पढ़ाया जाना चाहिए और कैसे पढ़ाया जाना चाहिए, इसको लेकर होने वाले कई निर्णय इस बड़े सवाल पर लाकर खड़ा कर देते हैं कि इतिहास पढ़ाया क्यों जाना चाहिए? उदाहरण के लिए, यह जाहिर सी बात है कि वे लोग, जो यह मानते हैं कि इतिहास पढ़ाने का सबसे महत्वपूर्ण कारण युवा लोगों को अपने राष्ट्र के अतीत के बारे में गर्व महसूस करवाना है वे पढ़ाई जाने वाली विषयवस्तु और उसे पढ़ाने के ढंग के बारे में अलग विचार रखते होंगे। बजाय उन लोगों के जिनको ज्यादा चिन्ता

इतिहास के बारे में विद्यार्थियों की इस विधा की समझ को लेकर रहती है। जिसमें इन बातों का शुमार भी रहता है कि अतीत के बारे में हमें जानकारी ही कैसे होती है, और क्यों एक ही घटना के अलग–अलग अर्थ हो सकते हैं। इसके अलावा, उन शिक्षकों की पद्धतियाँ थोड़ी और अलग होगी जिनका प्रमुख उद्देश्य विद्यार्थियों की यह समझने में मदद करना होता है कि मानव इतिहास की बड़ी तस्वीर में स्वयं उन लोगों की जगह कहाँ बनती है। और किस तरह वे अतीत का इस्तेमाल अपनी खुद की जिन्दगी को सार्थक दिशा देने के लिए कर सकते हैं। निश्चित ही, इतिहास की शिक्षा के अन्य सम्भावित उद्देश्य भी हैं जिनका यहाँ मैंने जिक्र नहीं किया है। जैसे कि विद्यार्थियों को नैतिक या धार्मिक पाठ पढ़ाना, और/या उनको राजनैतिक या सामाजिक रूप से सक्रिय भूमिका निभाने के लिए प्रेरित करना; लेकिन फिर, इन बातों को प्राथमिकताएँ मानने से पढ़ाने की पद्धति प्रभावित होगी। यह देखते हुए कि इतिहास की शिक्षा का उद्देश्य अपनी–अपनी समझ की बात है, इतिहास की शिक्षा को लेकर बहसें सम्भवत : बहुत लम्बे समय तक चलती रहेंगी – और ऐसा सिर्फ अमेरिका और इंग्लैण्ड में ही नहीं होगा।

कुछ प्रस्तावित स्रोत

1. बैंचमार्क्स ऑफ हिस्टॉरिकल थिंकिंग वैबसाइट, सेन्टर फॉर द स्टडी ऑफ हिस्टॉरिकल कॉन्शसनैस, कनाडा : http://www.histori.ca/benchmarks/
2. इंग्लिश नेशनल करीकुलमः http://curriculum.qcda.gov.uk/key-stages-3-and-4/subjects/key-stage-3/history/index.aspx
3. हिस्ट्री थिंकिंग मैटर्स, रिसोर्सेज़ फॉर हिस्ट्री टीचर्स : http://historicalthinkingmatters.org/

लिज़ डॉज़ दुरईसिंह *हार्वर्ड ग्रैजुएट स्कूल ऑफ ऐजुकेशन से पीएचडी कर रही हैं। उनके शोध का विषय है कि 'युवा लोग अपने बारे में सोचने के लिए इतिहास का उपयोग किस तरह करते हैं।' उन्होंने इससे पहले इंग्लैण्ड और ऑस्ट्रेलिया में इतिहास पढ़ाया है।*

16 स्कूली अर्थशास्त्र की दुविधा और चुनौती

अरविन्द सरदाना

इस पर अभी भी विवाद है कि स्कूली स्तर पर अर्थशास्त्र पढ़ाया जाना चाहिए या नहीं। अनेक लोगों को लगता है कि गणित, इतिहास या भूगोल के समान एक विशेष विषय की तरह अर्थशास्त्र पाठ्यचर्या में स्थान पाने की पात्रता नहीं रखता। स्कूली पाठ्यचर्या को बुनियादी योग्यताओं और कौशलों को विकसित करने पर ही केन्द्रित बने रहना चाहिए। उन्हें लगता है कि अर्थशास्त्र पढ़ाने के लिए दिए जाने वाले समय का बेहतर इस्तेमाल गणित तथा भाषा जैसे कौशल हासिल करने और उनमें पारंगत बनने के लिए किया जा सकता है। दूसरों को लगता है कि अर्थशास्त्र का आधुनिक संसार को समझने में बहुत योगदान हो सकता है, और इसे एक नागरिक के प्रशिक्षण का अंग होना चाहिए। इसके अलावा, यह तार्किक ढंग से विचार करने के प्रशिक्षण में भी सहयोग देता है। पर, आलोचक यह भी कहते हैं कि आर्थिक प्रतिरूपों का अमूर्त स्वरूप और उनकी मान्यताओं का फिसलन भरा आधार स्कूली स्तर पर यह परिचय करवाए जाने के लिए उपयुक्त नहीं है। दोनों ही तरफ की बातों में थोड़ी सच्चाई है। इसलिए, बहस स्कूलों के लिए अर्थशास्त्र की प्रकृति पर होना चाहिए।

उच्च–प्राथमिक स्तर

जब एकलव्य ने उच्च–प्राथमिक स्तर (अपर–प्राइमरी स्टेज–यूपीएस) के लिए पाठ्यपुस्तकें विकसित कीं तो उनमें नागरिक शास्त्र की पाठ्यचर्या के एक अंश की तरह अर्थशास्त्र शामिल था। इसे इस सोच के आधार पर शामिल किया गया था कि सभी विद्यार्थियों को प्रारम्भिक आर्थिक और सामाजिक समझ के लिए आवश्यक बुनियादी सिद्धान्तों को हासिल करने का अवसर मिलना चाहिए। अनेक ऐसे विषयसूत्र थे जो सामाजिक और आर्थिक जीवन पर प्रकाश डालने के लिए आर्थिक अध्ययनक्षेत्र से मदद ले सकते थे। परन्तु, आमराय अर्थशास्त्र को अलग से पढ़ाने के पक्ष में नहीं थी।

> *इस पर अभी भी विवाद है कि स्कूली स्तर पर अर्थशास्त्र पढ़ाया जाना चाहिए या नहीं। अनेक लोगों को लगता है कि गणित, इतिहास या भूगोल के समान एक विशेष विषय की तरह अर्थशास्त्र पाठ्यचर्या में स्थान पाने की पात्रता नहीं रखता।*

यह समझ परीक्षणों और स्रोत–व्यक्तियों से चर्चा करने तथा उच्च–प्राथमिक स्तर पर सामाजिक विज्ञानों के बारे में सही दृष्टिकोण तलाशने के प्रयासों से निकली। डॉ.पूनम बत्रा द्वारा सम्पादित पुस्तक 'सोशल साइंस लर्निंग इन स्कूल्स, पर्सपैक्टिव एण्ड चैलेंज़ेज', ऐसे कई अध्यायों को, जो कारगर नहीं हुए, दस्तावेजों की तरह देती है और इस अनुभव पर मनन करती है। इस कार्यक्रम से मिली समझ बीते वर्षों में कुछ शासकीय स्कूलों में वास्तविक अध्यापन और नियमित शिक्षक–प्रशिक्षणों के द्वारा समृद्ध बनी।

एनसीएफ 2005 ने नागरिकशास्त्र के पाठ्यक्रम–जो पहले आई यशपाल कमेटी की रिपोर्ट (1992–1993) के अनुसार अर्थहीन विधिविधान पढ़ाने तक सिमट गया था, और जो उस समय भी लोगों को 'निष्ठावान नागरिकों' में बदलने का औपनिवेशिक ढाँचा दर्शाता था–के उद्देश्य पर बहस छेड़ी। इन विचार विमर्शों से निकली अवधारणात्मक दृष्टि इस परम्परा से अलग होने का प्रयास करती है। नागरिक शास्त्र को यूपीएस में सामाजिक और राजनैतिक जीवन (और ऊपर के स्तरों पर राजनीति विज्ञान) का नाम दिया गया है। सामाजिक और राजनैतिक जीवन के अपने नए अवतार में नागरिक शास्त्र,लिंग,संचार माध्यम और अधीनस्थ अध्ययनों तथा अर्थशास्त्र से भी अनेक प्रसंग लिए गए हैं।' सामाजिक और राजनीतिक जीवन' की पाठ्यपुस्तकों का अर्थशास्त्र वाला भाग यद्यपि छोटा है पर महत्वपूर्ण है।

कक्षा 6 के लिए एनसीईआरटी की नई पाठ्यपुस्तक में ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों में विविध प्रकार की जीविकाओं से विद्यार्थियों का परिचय करवाया गया है। फिर कृषि और गैर–कृषि गतिविधियों,स्वरोजगारी और वेतन भोगियों, औपचारिक और अनौपचारिक कामगारों के बीच अन्तर को दर्शाने के लिए और ऐसे मुद्दों, जैसे काम का अभाव, काम की भिन्न–भिन्न शर्तों और स्थितियों आदि की चर्चा करने के लिए विविध प्रकार के सन्दर्भों का अर्थपूर्ण ढंग से उपयोग किया गया है।

यूपीएस के अगले दो वर्ष हमारी अर्थव्यवस्था के दो प्रमुख संघटक सिद्धान्तों,बाजार और सरकार, को समसामयिक पृष्ठभूमि में समझने के लिए दिए गए हैं। विनिमय के स्थान की तरह बाजार की भौतिक धारणा (उदाहरण के लिए हाट,मण्डी, स्थानीय दुकानें,मॉल) से आरम्भ करके,बाजारों का परिच्छेद आगे इस बात की चर्चा करता है कि बाजार किस तरह एक ओर दूर–दूर के उत्पादकों और खरीदारों को जोड़ते हैं,वहीं दूसरी ओर उनके लिए व्यापक रूप से भिन्न अवसर भी पैदा करते हैं।

कक्षा 8 में सरकार की चर्चा कुछ ऐसी महत्वपूर्ण भूमिकाओं–जिनको निभाने की जिम्मेदारी सरकार की मानी जाती है,जैसे सर्वशिक्षा,सार्वजनिक सुविधाएँ और आर्थिक गतिविधियों का नियमन–में सरकार की विफलता पर गौर करती है,साथ ही इस बात पर जोर देती है कि सबके लिए जीवन की बेहतर गुणवत्ता हासिल करने के लिए इन भूमिकाओं का निर्वाह करने के लिए सरकार संवैधानिक रूप से बाध्य है।

समग्र रूप से इन पाठ्यपुस्तकों में अर्थशास्त्र के खण्डों के लिए एक राजनैतिक अर्थव्यवस्था का दृष्टिकोण अपनाया गया है। यह स्वीकार करना पड़ेगा कि यहाँ उपयोग की गई विश्लेषणात्मक श्रेणियाँ हमेशा सरल नहीं हैं, लेकिन व्यापकीकरण करने के पहले विभिन्न प्रकार के मामलों के उपयोग, और औपचारिक विशिष्ट शब्दावली के करीब–करीब अनुपस्थित रहने से यह माना गया है कि ये प्रसंग विद्यार्थियों के लिए रोचक और समझ में आने वाले होंगे।

विषय की प्रस्तुति वास्तविक उदाहरणों और वास्तविक जीवन की परिस्थितियों (परिचित से प्रारम्भ करके अधिक जटिल परिस्थितियों तक) पर केन्द्रित है। इन्हें फिर सामाजिक नैतिकता के ऐसे प्रश्नों से जोड़ा गया है जैसे 'क्या आप इसे उचित कीमत मानेंगे?' 'क्या लोगों को इस मामले में न्याय मिला?' एक अन्य दृष्टिकोण से देखें तो लोकतंत्र,बराबरी,धर्मनिरपेक्षता और सामाजिक न्याय के विचारों की चर्चा करने के बजाय (भारत में नागरिक शास्त्र के पाठ्यक्रम की सामान्य प्रवृति) रोजमर्रा की स्थितियों में साधारण लोगों के जीवन–अनुभवों में इनके अर्थों की छानबीन की गई है।

माध्यमिक स्तर पर दृष्टिकोण क्या होना चाहिए?

संयुक्त राज्य अमेरिका में महाविद्यालय से नीचे के स्कूलों में अर्थशास्त्र पढ़ाने के लिए वहाँ की नेशनल काउंसिल ऑन इकॉनॉमिक्स एजूकेशन अवधारणाओं का एक समूह प्रदान करती है। इसमें आलोचनात्मक सोच और निर्णय लेने के कौशलों को जल्दी विकसित करने के लिए महत्वपूर्ण अवधारणाओं,जैसे अवसर की लागत, मार्जिनल (लाभांश का) विश्लेषण,विनिमय, उत्पादकता, धन,बाजार और कीमतों की सूची होती है। व्यापक अर्थशास्त्र के प्रसंगों का परिचय बाद में दिया जाता है। इस ढाँचे में आर्थिक स्वतंत्रता और आर्थिक कार्यकुशलता को किसी अर्थव्यवस्था के लिए दो सबसे महत्वपूर्ण सामाजिक लक्ष्य माना गया है।

इसके विपरीत,1977 में उसकी शुरुआत से ही एनसीईआरटी द्वारा निकाली गई माध्यमिक स्तर की अर्थशास्त्र की पाठ्यपुस्तक में एक मौलिक दृष्टिकोण अपनाया गया है,जो उपरोक्त उपयोगितावादी ढाँचे से काफी भिन्न है। विकास की एक व्यापक दृष्टि, जिसका आशय केवल वृद्धि न होकर सामाजिक न्याय भी हो, अपनाते हुए अर्थव्यवस्था की संस्थानिक और संरचनात्मक रूपरेखाओं को सावधानीपूर्वक निरूपित किया गया और विकास की अवरोधक सीमाओं से उनका सम्बन्ध जोड़ा गया। रोजगार (या उसके अभाव) के मुद्दे पर पर्याप्त जोर दिया गया, और विमर्शों में बाजार के द्वारा निभाई जाने वाली भूमिका के साथ ही सार्वजनिक नीतिगत हस्तक्षेप को महत्वपूर्ण स्थान मिला है। अवर इकॉनोमी : एन इन्ट्रोडक्शन ने निश्चित ही भारत में हाईस्कूल अर्थशास्त्र का लहजा तय कर दिया और बाद के पाठ्यपुस्तक लेखन के सभी प्रयासों ने इस पुस्तक में प्रस्तावित समग्र रूपरेखा का ही अनुसरण किया।

पर अपनी सारी खूबियों के बावजूद, यह किताब सबसे रूढ़िवादी शैक्षणिक मानदण्डों के अनुसार भी प्रारम्भिक पाठ्यपुस्तक नहीं कही जा सकती। सभी आयुवर्गों के बच्चों को सीखने के लिए ढेर सारा अनुभव और वास्तविक स्थूल परिस्थितियों पर पूरी तरह विचार करना आवश्यक होता है,ताकि वे जीवन के उन तथ्यों तथा घटनाओं को समझ सकें जिन पर अवधारणाएँ और सिद्धान्त आधारित होते हैं। कम आयु वाले समूहों के लिए आर्थिक जीवन के स्थूल बोध की जरूरत और भी अधिक है। 'अवर इकॉनामी' में एक साथ जरूरत से कहीं ज्यादा अवधारणाएँ प्रस्तुत कर दी गईं थीं, और उनके उदाहरण और उपयोग नगण्य थे। उसकी भाषा रूखी और तकनीकी थी। इसका निहितार्थ यह था कि इस किताब को पढ़ाने वाले शिक्षक,जिनमें से अधिकांश अर्थशास्त्र के शिक्षक नहीं थे, पाठ्यसामग्री को संक्षेप करके पढ़ाएंगे और विद्यार्थी उसे परीक्षाओं के लिए याद कर लेंगे। यदि लेखक का जोर अवधारणात्मक समझ पर था, तो इससे ठीक उल्टा परिणाम हासिल हुआ।

> *इसके बजाय, अब उद्देश्य अर्थशास्त्र में अपनाए जाने वाले वैचारिक तरीकों से विद्यार्थियों को परिचित कराना है।*

इसलिए एनसीएफ 2005 (जो एनसीईआरटी की पाठ्यपुस्तकों के नए समूह के लिए मार्गदर्शक दस्तावेज था) द्वारा आवश्यक समझे गए शैक्षणिक दिशा परिवर्तन बहुप्रतीक्षित और बहुत स्वागत योग्य थे। एकलव्य सहित अनेक समूहों ने इसका अन्वेषण किया था। इसके अनुसार यह जरूरी माना गया था कि पाठ्यपुस्तकों की प्रकृति रटकर सीखने से हटकर बुनियादी बदलाव करते हुए विद्यार्थियों में अवधारणात्मक विकास और आलोचनात्मक सोच की ओर उन्मुख हो। पाठ्यपुस्तक लिखने की प्रक्रिया भी अधिक

लोकतांत्रिक हो गई थी क्योंकि पाठ्यचर्या की रूपरेखा बनाने, लिखने और पुनरीक्षण करने का काम एक व्यक्ति के बजाय विभिन्न दलों को सौंपा गया।

यदि हम उच्च–प्राथमिक स्तर पर प्रस्तुत किए गए विषयसूत्रों के साथ हाईस्कूल अर्थशास्त्र के पाठ्यक्रम को देखें तो पाएँगे कि अवधारणात्मक भागों को विस्तार दिया गया है और कुछ औपचारिक आर्थिक उपयोगों से भी परिचय कराया गया है, ताकि विद्यार्थी इस ज्ञान को उस सबसे जोड़ सकें जो वे संचार माध्यमों में वयस्कों की बातचीत में सुनते हैं। लेकिन अमूर्तिकरण अभी भी बहुत थोड़े हैं, औपचारिक सिद्धान्त नहीं हैं और सभी विषयसूत्रों की व्यावहारिक प्रासंगिकता बरकरार है। इसका उद्देश्य सामान्य शिक्षा है। हमें यह ध्यान रखना जरूरी है कि अर्थशास्त्र सामाजिक विज्ञान पाठ्यक्रम का एक अंग है जिसे इस विषय में इतिहास,भूगोल और राजनीति विज्ञान से साझेदारी करना है।

पहले वाली एनसीईआरटी की पाठ्यपुस्तक के उस स्तर को सीखने वालों के लिए उपयुक्त न होने का एक कारण यह था कि उस पुस्तक ने विद्यार्थियों को अर्थशास्त्र का प्रमुख ज्ञान प्रदान करने की (यद्यपि मोटे तौर पर इस उद्देश्य को स्पष्ट रूप से व्यक्त नहीं किया गया था) कोशिश की। यह एक महत्वपूर्ण परिवर्तन है कि एनसीईआरटी के हाईस्कूल अर्थशास्त्र के नए पाठ्यक्रम ने इस आकांक्षा को त्याग दिया है। इसके बजाय, अब उद्देश्य अर्थशास्त्र में अपनाए जाने वाले वैचारिक तरीकों से विद्यार्थियों को परिचित कराना है।

> *अक्सर पाठ्यपुस्तकें नई श्रेणियाँ और नई जानकारी प्रस्तुत करने पर केन्द्रित रही हैं,परन्तु अवधारणात्मक ढाँचे के भीतरी तार्किक संरचना पर जोर देने में असफल रही हैं, जिसके परिणामस्वरूप विद्यार्थी की हानि हुई है। यह खासतौर से भारतीय अर्थव्यवस्था के (विभिन्न स्तरों पर) पाठ्यक्रम की खामी रही है और इसके चंगुल से बचने की जरूरत है।*

शिक्षाशास्त्री जिसे प्रसंग–आधारित पद्धति कहते हैं,उसी ढंग से पाठ्यक्रम को ऐसे विषय–प्रसंगों के इर्द–गिर्द व्यवस्थित किया गया है जो अवधारणात्मक श्रेणियों को सीखने के वास्तविक प्रसंगों को जोड़ते हैं। पहले, विद्यार्थी किसी ऐसे वास्तविक सन्दर्भ स्थिति से शुरू करता है जो उसके अपने कई अनुभवों को प्रतिबिम्बित करती है, और इसलिए किसी विशेष–प्रसंग में प्रवेश करने के लिए सुविधाजनक (और बहुत रोचक) बिन्दु प्रदान करता है। दूसरे,अवधारणात्मक क्षेत्रों को पहले से तय करने के बजाय हम आर्थिक वास्तविकता के जिस पक्ष पर विचार कर रहे हैं,उसके आधार पर अवधारणात्मक क्षेत्र निर्धारित किए जा सकते हैं। इस दृष्टिकोण के फलस्वरूप अर्थशास्त्र की नई पाठ्यपुस्तकों में अवधारणात्मक बोझ घट गया है और वास्तविक सन्दर्भों और स्थितियों का उपयोग बढ़ गया है।

विद्यार्थियों और शिक्षकों को व्यापक तस्वीर के साथ काम करने में कुछ प्रारम्भिक हिचकिचाहट और कठिनाई होती है,पर वे अंततः संख्याओं और लेखाचित्रों तथा आर्थिक तर्क के माध्यम से काम करना सीख ही लेते हैं। इसलिए व्यापक तस्वीर और विशिष्ट उदाहरणों के बीच सन्तुलन आवश्यक है और वह विद्यार्थियों को रोजमर्रा की आर्थिक गतिविधि को अर्थव्यवस्था की कार्यप्रणाली से जोड़ने के काबिल बनाएगा। इसे कैसे हासिल किया जाए यही बड़ी चुनौती है। बृहद दृष्टिकोण आसानी से उपलब्ध नहीं होता। उदाहरण के लिए, अनेक विद्यार्थियों और शिक्षकों को श्रमिकों की कमी के व्यक्तिगत अनुभव होते हैं। उन्हें भारतीय अर्थव्यवस्था में श्रमिकों के आधिक्य और बेराजगारी को ही अर्थव्यवस्था के सामने 'एकमात्र' प्रमुख समस्या बताए जाने की बात स्वीकार करने में कठिनाई होती है। एक और उदाहरण लें, जहाँ बैंकों का वित्तीय बिचौलियों की तरह काम करना विद्यार्थियों को आसानी से समझ में आ जाता है,वहीं वे यह समझने में असमर्थ रहते हैं कि डिमांड डिपॉजिट्स भी धन का एक प्रकार होते हैं। ऐसे कई उदाहरण हैं जहाँ बृहद दृष्टिकोण सहज ज्ञान से एकदम भिन्न हो सकता है। पाठ्यपुस्तकें रचने वालों के लिए यह एक अन्य चुनौती है।

काफी लम्बे समय से शिक्षाविद् यह मानते रहे हैं कि जो हम पढ़ाते हैं, उसके बुनियादी ढाँचे की समझ विद्यार्थियों को देना महत्वपूर्ण है। इसके पीछे क्या तर्क है और वह विभिन्न परिस्थितियों में कैसे लागू होता है? अर्थशास्त्र से एक उदाहरण दें तो ऐसी शब्दावली को समझने,जैसे क्रैडिट (उधार) और यह भी समझने कि किस प्रकार इसका अर्थ विभिन्न वर्गों के उधार लेने वालों की सामाजिक–आर्थिक हैसियत के अनुसार बदलता रहता है, का मतलब होगा एक ढाँचे को सीखना। इसे बाद के प्रशिक्षण में कई अन्य स्थितियों,जैसे कि किसानों की आत्महत्या की समस्या और ग्रामीण कर्जदारी से लेकर आपस में जुड़े बाजारों और कृषि सम्बन्धों के अध्ययन तक भी फैलाया जा सकता है।

अक्सर पाठ्यपुस्तकें नई श्रेणियाँ और नई जानकारी प्रस्तुत करने पर केन्द्रित रही हैं,परन्तु अवधारणात्मक ढाँचे के भीतरी तार्किक संरचना पर जोर देने में असफल रही हैं, जिसके परिणामस्वरूप

विद्यार्थी की हानि हुई है। यह खासतौर से भारतीय अर्थव्यवस्था के (विभिन्न स्तरों पर) पाठ्यक्रम की खामी रही है और इसके चंगुल से बचने की जरूरत है। अतः हमारे सामने विश्लेषणात्मक विवरण,ढाँचे और अवधारणा बनाने की प्रक्रिया को अनुभवजन्य प्रमाणों से जोड़ने की और इसके द्वारा भारतीय आर्थिक समस्याओं को हल करने की एक सामान्य विधि प्रदान करने की चुनौती है।

सामाजिक विज्ञान पाठ्यक्रम केप्रमुख उद्देश्य की प्रकृति उपयोगितावादी ही रही है। यह विकासात्मक मुद्दों पर अधिक जोर देता है, महत्वपूर्ण तो हैं पर आदर्शात्मक आयामों–समता,न्याय और गरिमा के मुद्दों–को समझने के लिए पर्याप्त नहीं हैं। यह आलोचना का एक प्रमुख कारण रहा है। आर्थिक विमर्श की प्रकृति के बारे में विषय के बाहर और भीतर, दोनों ओर से काफी समय से चिन्ताएँ व्यक्त की जा रही हैं। सामाजिक नैतिकता के मुद्दों को विषय में कैसे लाया जाए? इसके लिए एक बहुविषयी दृष्टिकोण भी जरूरी है,ताकि सामाजिक विज्ञान की समग्र पाठ्यचर्या में इतिहास, राजनीति विज्ञान, भूगोल और अर्थशास्त्र में मजबूत गठजोड़ बने। इस दिशा में और काम किया जा सकता है।

पाठ्यपुस्तकों, शिक्षक–प्रशिक्षण और परीक्षाओं को जोड़ना

यह मानते हुए कि कक्षा में पढ़ाने और सीखने की प्रक्रियाएँ अन्य बातों के साथ शिक्षकों को दिए गए प्रशिक्षण और मूल्यांकन की अपनाई गई पद्धति पर निर्भर करती हैं, हमने दुर्भाग्य से ऐसी संस्कृति निर्मित की है जिसमें शिक्षकों के लगाव का अभाव है। अकादमिक स्तर पर शिक्षकों को सामाजिक विज्ञान के वर्तमान शोध के योगदान से प्रभावित दृष्टिकोण को समझने का अधिक अवसर नहीं मिलता। इसलिए,वर्तमान परिस्थितियों से प्रभावित दृष्टिकोण के साथ उनके काम करने की कल्पना नहीं की जा सकती। इसके साथ–साथ, चूँकि मूल्यांकन का तरीका अभी भी याददाश्त पर और अध्यायों के लिए निर्धारित अंकों पर निर्भर है, अवधारणात्मक समझ का महत्व एक तरह से गौण हो गया है।

उच्चतर–माध्यमिक स्तर पर विवाद

मिडिल और सेकेण्डरी स्तर पर अर्थशास्त्र को सामाजिक विज्ञान पाठ्यक्रम के हिस्से की तरह पढ़ाया जाता है। उच्चर माध्यमिक स्तर पर विशेषज्ञतापूर्ण ज्ञान हासिल करने का अवसर होता है, और इसलिए विद्यार्थियों को एक अधिक औपचारिक पाठ्यक्रम से परिचित कराए जाने की जरूरत है। लेकिन इसके बारे में किस तरह विचार किया जाना चाहिए?

हाल ही के एक विवाद में कक्षा 12 को पढ़ाने वाले अर्थशास्त्र के शिक्षकों ने सूक्ष्म और बृहद के नए प्रतिरूपों पर ऐतराज किया है, और सीबीएसई को एनसीईआरटी द्वारा प्रकाशित पुस्तकों के अलावा अन्य पुस्तकों को स्कूलों में अधिकारिक रूप से (निर्धारित पाठ्यक्रम के भीतर) पढ़ाए जाने की अनुमति देने के लिए बाध्य किया है। व्यवहारिक रूप से इसका मतलब नई पाठ्यपुस्तकों को खारिज करना हुआ। इस मामले को देख रही एक समिति ने फिर से इन किताबों को स्वीकार करने की इच्छा जाहिर की है। अकादमिक विद्वानों ने प्रतिक्रिया में कहा है कि शिक्षक मेहनत से बारीकियों पर ध्यान देने वाला दृष्टिकोण नहीं अपनाना चाहते। महाविद्यालयों के कुछ शिक्षकों ने टिप्पणी की है कि हम गणित की ही तरह अर्थशास्त्र के प्रति एक भय को स्थापित कर रहे हैं।

पर यह कहने के बाद, यह भी कहना होगा कि उच्चतर– माध्यमिक पाठ्यक्रम केवल स्नातक स्तर के पाठ्यक्रम– जैसा वह अभी है, जिसमें चार अलग–अलग प्रश्नपत्र हैं (सांख्यिकी,भारतीय अर्थशास्त्र, सूक्ष्म और बृहद) और इन विषयों के बीच में न के बराबर अन्तर्सम्बन्ध हैं–का सरलीकृत रूप मात्र नहीं हो सकता। इस पर नए सिरे से सोचने की जरूरत है। अर्थशास्त्र का अध्ययन करने की प्रेरणा क्या है? पूछने के लिए यह एक प्रासंगिक प्रश्न हो सकता है–किसी शुरुआती या युवा विद्यार्थी के लिए और भी ज्यादा। हमें विवाद का उपयोग इस मुद्दे पर रचनात्मक ढंग से काम करने के लिए एक अवसर की तरह करना चाहिए। वास्तव में ,युवा विद्यार्थियों को इसके प्रति आश्वस्त करने के लिए कि अर्थशास्त्र छोटी उम्र से पढ़ने लायक विषय है, अभी बहुत कुछ किए जाने की जरूरत है।

(यह लेख सुकन्या बोस एवं अरविन्द सरदाना के लेख 'टीचिंग इकोनॉमिक्स इन स्कूल्स', ईपीडब्ल्यू,अगस्त 9,2008 का संशोधित एवं परिवर्द्धित रूप है।)

अरविन्द सरदाना *की पृष्ठभूमि अर्थशास्त्र की है। वे 1986 से एकलव्य में सामाजिक विज्ञान में नए पाठ्यक्रम के विकास पर काम कर रहे हैं। वे पाठ्यक्रम और पाठ्यपुस्तकें विकसित करने में विभिन्न शासकीय और अशासकीय संगठनों से सम्बद्ध रहे हैं। साथ ही वे सामाजिक विज्ञान तथा अर्थशास्त्र की शिक्षा पर शोधकार्य में भी संलग्न हैं। उनसे इस anuarvindbali@gmail.com ईमेल पर सम्पर्क किया जा सकता है।*

खण्ड - स

कक्षा में

17 एनसीईआरटी की सामाजिक विज्ञान की नई पाठ्यपुस्तकें

सम्पूर्णा बिस्वास

सामाजिक अध्ययन की नई किताबों में पिछली किताबों की तुलना में निश्चित ही सुधार हुआ है। मैं अभी दसवीं कक्षा में हूँ और मुझे इस कक्षा में तथा इसके पूर्व नवमीं में इन नवीनीकृत किताबों को इस्तेमाल करने का मौका मिला। सबसे बड़ा अन्तर किताब की गुणवत्ता और उसके रूपरंग में आया है। ज्यादा रंग इस्तेमाल किए गए हैं, चित्र और कार्टून भी ज्यादा हैं और रेखाचित्र भी बेहतर कोटि के हैं। यह सब करते हुए किताब की अन्तर्वस्तु की गुणवत्ता में कोई कमी नहीं आने दी गई है।

किताब के स्वरूप में हुआ यह परिवर्तन सतही कतई नहीं है। यह ज्ञात तथ्य है कि ज्यादा लेखाचित्रों और रंगों से बेहतर समझ बनने में मदद मिलती है क्योंकि ये दिमाग के अधिक हिस्सों को उद्दीपित करते हैं। इसके अलावा इनसे किताब ज्यादा आकर्षक भी हो जाती है और लोग ऐसी किताबों का इस्तेमाल करना कहीं ज्यादा पसन्द करते हैं जिनका स्वरूप उन्हें अच्छा लगता है।

इतिहास

आठवीं कक्षा की इतिहास की किताब वाकई उबाऊ थी। उसमें सिर्फ दो ही रंग इस्तेमाल किए गए थे – काला और सफेद। और इनके बीच पड़ने वाले धूसर रंग की अनेक छटाएँ थीं। नवमीं और दसवीं की इतिहास की नई किताबें इससे बहुत अलग हैं। इनके बारे में जो पहली बात आप गौर करते हैं कि, अब इतिहास की किताब पहले के समान खुद इतिहास की किसी वस्तु जैसी नहीं दिखती। ऐसे रोचक अभ्यास–कार्य दिए गए हैं जिनमें पाठक को चित्रित किए गए काल विशेष की दृष्टि से सोचना और लिखना आवश्यक हो जाता है (उदाहरण के लिए पृष्ठ क्रं. 144 (एनसीईआरटी, कक्षा 10) पर यह प्रश्न दिया गया है : ''कल्पना कीजिए कि आप किसी चाल में रह रहे युवा व्यक्ति हैं। अपनी जिन्दगी के एक दिन का वर्णन कीजिए।''), या फिर विकल्प के रूप में पाठक को तथ्यों की अपने ढ़ंग से व्याख्या करने को कहा जाता है (उदाहरण के लिए पृष्ठ क्रं.24 (एनसीईआरटी कक्षा 10) पर दिया गया यह प्रश्न : ''आरेख क्रं. 17 में आप क्या देखते हैं? वर्णन करें। राष्ट्र को इस रूपक की तरह निरूपित करते हुए हबनर किन ऐतिहासिक घटनाओं की ओर संकेत कर रहे हैं?'')। इसके अलावा, विषय में आगे बढ़ने पर अतिरिक्त जानकारियाँ – जैसे उस काल के चित्र और उनमें हुआ चित्रण, या फिर तत्कालीन पत्र एवं अन्य स्रोत – आपकी रुचि जगाने में मदद करती हैं।

हालाँकि इन स्रोतों और वर्गों में दी गई जानकारियों पर परीक्षा में प्रश्न नहीं पूछे जाते, तथापि इनसे हमें वर्णित समय की बेहतर

तस्वीर बनाने में मदद मिलती है। सच तो यह है कि परीक्षा में शामिल न किए जाने के कारण इन्हें मैं मजे के लिए ही पढ़ जाती हूँ न कि याद करने के लिए। आठवीं और उसके बाद की किताबों में एक अन्य मूलभूत अन्तर जो मैंने पाया, वह किताबों की भाषा में था। नई किताबों की भाषा–शैली अधिक बोधगम्य है। करीब–करीब कहानी कहने की शैली का इस्तेमाल किया गया है। उदाहरण के लिए पृष्ठ 36 पर छपे (एनसीईआरटी कक्षा 10), दूसरे अध्याय 'हिन्द–चीन में राष्ट्रीय आन्दोलन' का यह गद्यांश देखें : ''1926 में साइगॉन राष्ट्रीय कन्या विद्यालय में एक बड़ा विरोध फूट पड़ा। सामने की किसी सीट पर बैठी हुई एक वियतनामी लड़की को पीछे जाने के लिए कहा गया ताकि एक स्थानीय फ्रांसीसी छात्रा उस सीट पर बैठ सके। उस वियतनामी लड़की ने ऐसा करने से मना कर दिया। इस पर प्राचार्य ने, जो खुद भी कोलोन (उपनिवेशों में रहने वाले फ्रांसीसी लोग) था, उसे विद्यालय से निकाल दिया। जब नाराज विद्यार्थियों ने इसका विरोध किया तो उन्हें भी निष्कासित कर दिया गया, जिससे जगह–जगह खुले तौर पर विरोध प्रदर्शन होने लगे। स्थिति को नियंत्रण से बाहर जाता देख सरकार ने निष्कासित विद्यार्थियों को वापस लेने के लिए विद्यालय पर दबाव डाला। अनिच्छा के बावजूद प्राचार्य ने यह बात मान तो ली पर विद्यार्थियों को चेतावनी दी, ''मैं सभी वियतनामियों को अपने पैरों तले कुचल दूँगा। आह! तुम लोग चाहते हो कि मुझे निर्वासित कर दिया जाए। अच्छी तरह जान लो कि मैं तभी जाऊँगा जब मुझे यकीन हो जाएगा कि अब कोचिनचाइना में वियतनामी नही रहते।'' यह, ज्यादा से ज्यादा, एक कहानी है। इसमें ऐसा कुछ नहीं है कि कोई परीक्षा के दृष्टिकोण से इसे पढ़े। लेकिन इससे वियतनाम की स्थिति को बहुत अच्छी तरह से समझने में मदद मिलती है।

दूसरी ओर, आठवीं की किताब तथ्यों का संकलन ज्यादा थी। यदि आप ब्रिटिश शासन के बारे में हर बात विस्तार से बताने वाली किताब चाहते थे तब तो वह निश्चत ही अच्छी थी, पर अगर आप ऐसी रोचक सामग्री चाहते थे जो आप को इस विषय के बारे में आगे और जानने के लिए उत्सुक करे तो इसके लिए वह आदर्श साधन नहीं थी। कुल मिलाकर, नई किताबों से सीखना सुगम हो गया है क्योंकि वे विषय में दिलचस्पी जगा देती हैं, परन्तु यदि आप विषय के प्रति गम्भीर थे और आपको किसी परीक्षा के लिए रटना था तो पिछली किताब अच्छी थी।

राजनीति विज्ञान

इन किताबों की सबसे अच्छी विशेषता है कार्टून!! उन्नी और मुन्नी, तथा राजनीति वाले। इनसे पाठ्य सामग्री के बीच में अच्छी राहत मिलती है। अध्याय के साथ–साथ चलने वाले ये दो कार्टून किरदार, उन्नी और मुन्नी मुझे खासतौर पर अच्छे लगते हैं क्योंकि वे हमें अलग ढंग से सोचने और सवाल करने के लिए प्रेरित करते हैं। जब आप इन्हें पढ़ते हैं तो कभी–कभी ये बेतुके लगते हैं पर यदि उस बारे में गौर करें तो वे सचमुच आपको सोचने पर मजबूर कर देते हैं। उदाहरण के लिए यह प्रश्न देखें, ''यदि जातिवाद और साम्प्रदायिकता बुरे हैं, तो नारीवाद को किस आधार पर अच्छा कहा जा सकता है? हम उन सभी का विरोध क्यों नहीं करते जो समाज को जाति, धर्म या लिंग किसी भी आधार पर बाँटते हैं?'' और ''क्या आप यह सुझा रहे हैं, कि हड़ताल, धरना, बन्द और प्रदर्शन अच्छी चीजें हैं? मुझे लगा कि यह सिर्फ हमारे देश में होता है क्योंकि हम अब तक एक परिपक्व लोकतंत्र नहीं बने हैं।'' या ''क्या इसका यह मतलब है कि, जो भी पक्ष अपने साथ ज्यादा बड़ी भीड़ जुटा लेता है, वह जो चाहे कर सकता है? क्या हम यह कह रहे हैं कि लोकतंत्र में 'जिसकी लाठी उसी की भैंस' होती है?'' (एनसीईआरटी, कक्षा 10)। चलो अखबार पढ़ें/रेडियो सुनें/टीवी देखें/ वाले रूपकों के अन्तर्गत दी गई सामग्री भी अच्छी है। हालाँकि, विद्यालय में (खासतौर पर दसवीं में) तो शिक्षक पाठ्यक्रम को निपटाने में ही इतने व्यस्त रहते हैं कि उन्हें ऐसी सामग्री को ढ़ंग से पढ़ाने की परेशानी उठाने की फुर्सत नहीं रहती। फिर भी यह अच्छी है क्योंकि सिर्फ प्रजातंत्र की सैद्धान्तिक समझ का क्या फायदा यदि हम इसे वास्तव में घट रही घटनाओं से नहीं जोड़ते?

दसवीं की एनसीईआरटी की किताब में एक त्रुटि है जो मैं बताना चाहूँगी। पहले अध्याय में श्रीलंका और बेल्जियम में अलग–अलग सांस्कृतिक समूहों से मिलकर बनी आबादी से जुड़ी समस्याओं की चर्चा की गई है। किताब में यह कहा गया है कि जहाँ समस्या सुलझाने का श्रीलंकाई तरीका – बहुसंख्यकों (सिंहलियों) की सरकार का शासन और अल्पसंख्यकों (तमिल लोग) के अधिकारों का दमन करना – असफल हो गया है, वहीं बेल्जियम द्वारा अपनाए गए तरीके – डच और फ्रांसीसी लोगों की सांस्कृतिक स्वतंत्रताओं में सामंजस्य स्थापित करना – ने ''दोनों प्रमुख समुदायों के बीच नागरिक संघर्ष टालने में मदद की और भाषाई आधार पर देश के सम्भावित बटवारे को रोका।'' पर, यह बहुत सही नहीं है, क्योंकि बेल्जियम में आज भी नागरिक संघर्ष की स्थिति बनी हुई है और इसी भाषाई आधार पर देश राजनैतिक रूप से विभाजित होने की कगार पर है।

हाँ, एनसीईआरटी के बचाव में आप यह जरूर कह सकते हैं कि शायद इस पुस्तक के प्रकाशन के वक्त वहाँ ये समस्याएँ न रही हों। फिर भी एनसीईआरटी को ऐसा वर्णन करने से बचना चाहिए। शायद, यह एक ऐसा समाधान था जो कारगर हो सकता था परन्तु ऐसा हुआ नहीं। पर हकीकत यही है, कि ऐसा मान लेने से बेल्जियम की स्थितियों में कोई वास्तविक सुधार नहीं हुआ है। एनसीईआरटी ने यह दर्शाने के लिए, कि सत्ता में सहभागिता अच्छी बात होती है, इस व्यवस्था को उदाहरण के रूप में पेश किया है। तो आखिर में इससे कुछ भी सिद्ध नहीं होता।

आठवीं कक्षा में राजनीति विज्ञान पृथक विषय नहीं था और न ही उसकी अलग से कोई किताब थी। पर आठवीं की किताब में जो नागरिक शास्त्र का खण्ड था, उसकी तुलना में इन नई किताबों का रूपरंग काफी बेहतर है। ज्यादा रंगों का प्रयोग किया गया है, विशेषकर मानचित्रों में। नई किताबों में चित्र और पोस्टर भी निश्चित रूप से ज्यादा हैं। विभिन्न विषयबिन्दुओं को स्पष्ट करने के लिए असल जिन्दगी के अनेक उदाहरण इस्तेमाल किए गए हैं जिनसे प्रजातंत्र के बारे में हमारी समझ एक प्रकार से ज़्यादा ''वास्तविक'' हो जाती है। हमें जो बताया जाता है, वे केवल याद कर लिए जाने वाले तथ्य भर नहीं हैं; उनका आधार सफल व्यवस्थाएँ और असफल व्यवस्थाएँ हैं। वे वास्तविकता पर आधारित हैं। पाठों को ऐसे प्रत्यक्ष उदाहरणों द्वारा समझाया गया है जिनसे हम खुद को जोड़ पाएँ। चूँकि इसमें बहुत कुछ ऐसा है जो कक्षा से बाहर की दुनिया पर आधारित है और 'अभी घट रहा है', अतः इससे कक्षा में बहस का सूत्रपात भी होता है। मैं समझता हूँ कि यह सचमुच जरूरी है, विशेषकर राजनीति विज्ञान जैसे विषयों में, क्योंकि किसी मुद्दे पर बहस करने से हमें उसकी सार–वस्तु को कहीं बेहतर ढ़ंग से समझने में मदद मिलती है।

भूगोल

आठवीं कक्षा में राजनीति विज्ञान की भाँति भूगोल की भी अलग से कोई किताब नहीं थी। अतः सारी तुलनाएँ आठवीं की सामाजिक अध्ययन की द्वितीय किताब में दिए गए भूगोल के हिस्से के सापेक्ष की गई हैं।

एक बार फिर, किताब के बारे में जो पहली बात आपके दिमाग में आती है वह है उसका स्वरूप। पाई–चार्ट और मानचित्र ज्यादा आकर्षक हो गए हैं। नई सामग्री जैसे ''क्या आप जानते थे/क्या आप को पता था?'' बहुत दिलचस्प है। आलेखों में, और चित्रों के स्तर में भी सुधार हुआ है। किताब को और बेहतर बनाने के लिए उसमें पुनर्रचित अभ्यास और वर्ग–पहलियों का समावेश जैसे नए

प्रयास देखे जा सकते हैं। (कुछ वर्ग–पहेलियों में थोड़े सुधार की आवश्यकता है और मुझे अच्छा लगेगा यदि किताब में इनकी संख्या और अधिक हो ।)

एक दिन कक्षा में एक शंका उभरी जो मेरे विचार में आपको जानना चाहिए। किसी ने कहा कि कई अध्यायों में दी गई जानकारियाँ कभी–कभी एक–दूसरे से मेल नहीं खातीं। शिक्षक का कहना था कि सम्भवतः पुस्तक का सम्पादन कुछ हड़बड़ी से किया गया था।

भूगोल की किताबों में निश्चित ही सुधार की गुंजाइश है। कुछ वर्ग पहेलियों (अध्याय के अन्त में दी गईं) में काट–छाँट की जरूरत है। सम्भवतः कुछ जगहों पर अतिशय गद्य सामग्री को घटाकर उसकी जगह कुछ और चार्ट और आलेख देकर नीरसता से बचा जा सकता है। यह सचमुच और भी बढ़िया होगा यदि पाठ्यक्रम में प्रायोगिक भूगोल, जैसे स्थानों का भ्रमण करना जैसी गतिविधियों को भी शामिल किया जाए।

सम्पूर्णा बिस्वास *ने हाल ही में 12वीं पास की है। वे शुरुआत से ही दिल्ली में रही हैं और फिर भी वहाँ से उनका चित्त नहीं उचटा है। उन्हें पढ़ना, ब्लॉग लिखना, तैरना तस्वीरें खींचना अच्छा लगता है। इसके अलावा, लोगों से सवाल पूछना, बास्केटबॉल खेलना, कार्यक्रम तैयार करना, संगीत और डार्क चॉकलेट भी उनकी पसन्द हैं। उनसे इस sampoorna1992@yahoo.com ईमेल पते पर सम्पर्क किया जा सकता है।*

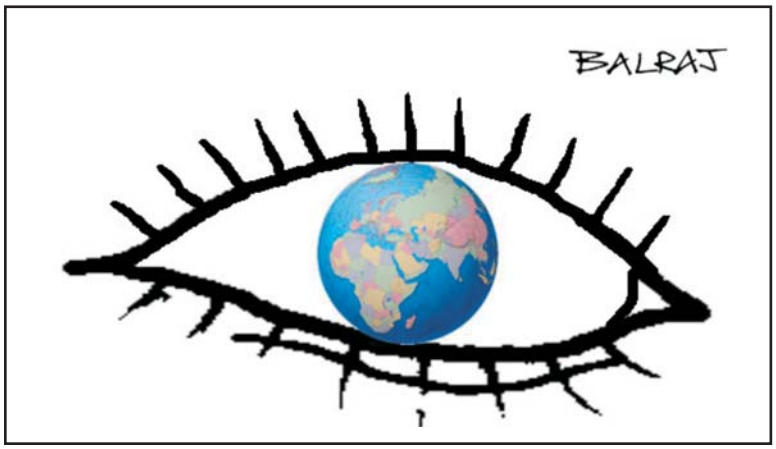

18 भूगोल को दिल में बसाना

मारिया अथायडे

युवा विद्यार्थी के रूप में मैं किसी ऐसी कहानी की किताब में डूबे रहना पसन्द करती थी जो मुझे विचित्र और रोमांचक स्थानों पर ले जाती, जैसे 'नेवर–नेवर लैण्ड' जहाँ पीटर पैन बड़ा होने से मना कर देता है। मेरा काल्पनिक संसार जोनाथन स्विफ्ट और डैनियल डेफो द्वारा रचे गए तूफानों से तबाह हुए जहाजों और बच गए लोगों की कहानियों से भरा हुआ था। मैं एनिड ब्लाइटन्स की मैजिक फारअवे ट्री से भी उतनी ही मंत्रमुग्ध थी। हाँ, वे सब उन जगहों के बारे में थीं जो कभी भी मेरे स्कूल के एटलस में नहीं रहीं जिसे मैं बड़ी ही निष्ठापूर्वक लिए घूमती थी। क्या यही कारण था जिसकी वजह से मुझे कभी भी भूगोल में मजा नहीं आया?नहीं।

पीछे मुड़ कर देखती हूँ तो यह विषय मुझे अणुओं और कीटाणुओं से ज्यादा लुभा सकता था और इसे लुभाना चाहिए था, पर ऐसा न हो पाने का दोष इसके शिक्षक और पाठ्यपुस्तक को जाता है। लेकिन उन दिनों में हम अपने शिक्षक के बारे में अच्छा सोचते थे और पाठ्यपुस्तक का ध्यान रखते थे क्योंकि उसने हमारी जिन्दगी को आसान बना दिया था। उसने हमारी स्मरण शक्ति को भी बहुत फुर्तीला और तेज बनाए रखा। परीक्षा और कूट प्रश्न प्रतियोगिताओं में जीतने या प्रथम स्थान हासिल करने के लिए वह सबसे अच्छी तकनीक साबित हुई। इस बात से ज्यादा फर्क नहीं पड़ता था कि हम मौसम और जलवायु में भेद नहीं कर पाते थे, न ही हम आलेखों को अंकित करने और ग्लोब को चारों ओर से एक जाल में बाँधने वाली उन खड़ी और आड़ी रेखाओं के आस–पास की जगहों को ढूँढने के बीच के सम्बन्ध को देख पाते थे। कम से कम हमें इतना पता था कि पृथ्वी गोल है न कि चपटी! और जब हमारी कक्षा का मसखरा लड़का भूमध्यरेखा का वर्णन 'पृथ्वी के चारों ओर अफ्रीका से दौड़ रहा अजायबघर के एक शेर' के रूप में करता था तो हम हँसते–हँसते लोटपोट हो जाते थे।

> *यदि भूगोल का उद्देश्य वैश्विक नागरिकों को पोषित करना है तब : क्या हम विद्यार्थियों को ज्ञान के जटिल मार्गों में से ले जा सकते हैं और उन्हें उन तमाम चुनौतियों की समझ प्रदान कर सकते हैं जो आज दुनिया के सामने हैं?*

वर्षों बाद जब मेरे कन्धों पर अध्यापकों के प्रशिक्षण की कठिन जिम्मेदारी आई तो मुझे भूगोल में मेरी कमजोरी का एहसास हुआ। मुझे कुछ करना था और शुरुआत में प्रारम्भ करने का सबसे अच्छा तरीका था प्रश्नों को पूछना। पहला प्रश्न था : 'भूगोल क्या है?' मैंने कई परिभाषाएँ पढ़ीं। विकीपीडिया ने उसका वर्णन इस प्रकार किया है : सब कुछ समाहित करनेवाली ऐसी अध्ययन–विधा जो संसार को – उसकी मानवीय और भौतिक विशेषताओं को – स्थान और स्थिति की समझ के जरिए समझने की कोशिश करती है। दूसरी परिभाषा इस प्रकार से थी : भूगोल पृथ्वी के भूदृश्यों, लोगों, जगहों और पर्यावरणों का अध्ययन है। इसे सरलता से कहा जाए तो भूगोल उस संसार के बारे में है जिसमें हम रहते हैं।

अगला प्रश्न : हम अपने विद्यार्थियों से भूगोल सीख कर क्या हासिल करने की उम्मीद करते हैं जो वे पाठ्यक्रम के अन्य क्षेत्रों से प्राप्त नहीं कर सकते? जीए (1999) के द्वारा दिए गए इसके उत्तर के अनुसार, ''भूगोल का उद्देश्य हमारे चारों ओर के संसार के लिए जागरूक चिन्ता, तथा स्थानीय और वैश्विक दोनों स्तरों पर सकारात्मक कार्य करने की इच्छा और काबिलियत विकसित करना है।'' एक दूसरा स्रोत जैसे ऑक्सफेम मानता है कि भूगोल युवा लोगों की चिन्ताओं के आधार पर निर्मित होना चाहिए जिससे वे 'वैश्विक नागरिक' बनने में समर्थ हों। और विस्तार में समझाएँ तो – 'वैश्विक नागरिक एक ऐसा व्यक्ति है जो व्यापक संसार की परवाह करता है, जो जानता है कि संसार किस प्रकार से कार्य करता है, जो गरीबी और अन्याय से आक्रोशित होता है और चीजों को बेहतर बनाने के लिए सक्रिय रहता है।' (गार्लेक 2000)

यदि भूगोल का उद्देश्य वैश्विक नागरिकों को पोषित करना है तब : क्या हम विद्यार्थियों को ज्ञान के जटिल मार्गों में से ले जा सकते हैं और उन्हें उन तमाम चुनौतियों की समझ प्रदान कर सकते हैं जो आज दुनिया के सामने हैं? वैश्विक गर्माहट और ग्रीन हाऊस गैसों के हानिकारक उत्सर्जन को कम करने की आवश्यकता, सीमित संसाधनों और ऊर्जा का ज्यादा दीर्घकाल तक चल सकने वाले तरीकों से उपयोग, प्रदूषण को कम करने की आवश्यकता, सामाजिक न्याय को बनाए रखना और पूर्वाग्रह और असमानता को दूर करना। संक्षेप में कहा जाए तो स्कूलों में भूगोल का कार्य है भावी नागरिकों को विश्व के विराट मंच की परिस्थितियों की ठीक–ठीक कल्पना करने में प्रशिक्षित करना और उनके आस–पास के संसार की राजनैतिक और सामाजिक समस्याओं के बारे में विवेकपूर्वक सोचने में मदद करना। इसलिए भूगोल और नागरिकता के बीच की कड़ियाँ सहज और प्रत्यक्ष हैं। क्या हमारे स्कूलों में इस सम्बन्ध को पोषित करना सम्भव है?

एक पर्यावरण त्रासदी ध्यान में आती है। वह 26 जुलाई 2005 का दिन था जब 24 घण्टे तक हुई 994 मिलीमीटर मूसलाधार वर्षा ने मुम्बई को अस्त–व्यस्त कर दिया था और भारत की आर्थिक शक्ति दो दिनों के लिए ''ख़त्म'' हो गई थी। जीवन और धन–सम्पदा का इतना नुकसान हुआ था जिसे बताया नहीं जा सकता। वह 'भयावह मंगलवार' इतिहास में कहीं दफन हो जाएगा लेकिन उससे पहले कोई उत्साही शिक्षक अपनी भूगोल की शिक्षा में उसका इस्तेमाल कर लेगा। रानी कक्षा 9 के अपने विद्यार्थियों के साथ स्थिति को आँकने के लिए उत्सुक थी। वे दत्तचित्त बच्चे थे, बारिश के अपने अनुभवों को बाँटने के लिए उतावले थे। रानी ने इस सवाल को पूछ कर उन्हें धीरे से एक चर्चा में धकेल दिया : क्या बाढ़ भगवान का एक कार्य है?उत्तर पर कक्षा का मत विभाजित था और वे एक आम राय कायम करने में नाकाम रहे। इसलिए उसने उन्हें संसार भर में अलग–अलग स्थानों पर बाढ़ आने के कारणों और उसके प्रभावों पर नजर डालने के लिए कहा। कक्षा ने कठिन परिश्रम से ग्लोब की छान–बीन की और इसी प्रकार की घटनाओं की तलाश में टेढ़े–मेढ़े रास्तों से मिसीसिपी के ऊपर के और नील के नीचे के हिस्सों में गए। पहली बार उन्हें अपने घर के पास मीठी नाम की नदी के बारे में पता चला। वे यह जानकर अचम्भित थे कि उनकी पाठ्यपुस्तकों में इसका कोई जिक्र नहीं था। उन्होंने दैनिक अखबारों को बहुत ध्यान से देखा और अभिलेखों में खोजबीन की और तब जाकर अन्त में उन्होंने तय किया कि भगवान को इन सभी विपत्तियों के लिए दोष–मुक्त किया जाए। लेकिन फिर मुम्बई त्रासदी के लिए किसे दोषी ठहराया जाए? उनकी उँगलियाँ खट से नेताओं, नगर निगम, झुग्गी–झोपड़ी वाले, निर्माण व्यवसायियों और प्रवासी जनसंख्या की ओर उठीं। प्रायः सभी लोग दोषी थे। इस मोड़ पर रानी ने विद्यार्थियों को हर उस दोषी व्यक्ति की भूमिका अदा करने के लिए फुसलाया जिसका उन्होंने नाम लिया था। उनकी प्रतिक्रिया नाटकीय थी और जल्दी ही दोषारोपण का खेल शुरू हो गया। यह सहज ही देखा जा सकता था कि किस प्रकार पर्यावरण के इस मुद्दे ने तीव्र भावनाएँ पैदा कर दी थीं। इस सारे शोरगुल के बीच रानी धैर्यपूर्वक अपने विद्यार्थियों के व्यवहार पर नजर रखे रही। वह इस कोलाहल में क्या हासिल करने की कोशिश कर रही थी?

रानी भूगोल के साथ–साथ नागरिकता सिखाने की कोशिश कर रही थी। उसके पाठ के उद्देश्य थे : (1) हमारे आस–पास के संसार के बारे में एक जागरूक चिन्ता विकसित करना और, (2) दूसरों के अनुभवों में भाग लेने की कला विकसित करना।

यहाँ मुख्य घटक हैं:

- बाढ़ का ज्ञान
- बाढ़ के कारणों की समझ
- समीक्षात्मक सोच
- सामाजिक क्षमताएँ

रानी ने अपनी कक्षा को जगहों, लोगों और मुद्दों की छान–बीन करने के लिए प्रोत्साहित किया था। उन्हें निष्कर्ष निकालने से पहले समीक्षात्मक और तर्कसंगत ढंग से सोचने के लिए प्रोत्साहित किया गया। अन्त में उसने उन्हें स्थान, अन्तरिक्ष और पर्यावरण के बारे में अपनी भावनाओं की जाँच करने में मदद की। रानी का दृढ़तापूर्वक यह मानना था कि विद्यार्थियों के दिमागों को केवल तथ्यों से भर देना ही काफी नहीं था, वह अपने विद्यार्थियों की अपनी भावनाओं को संभालने, मतभेदों को अहिंसात्मक रूप से हल करने और जिम्मेदारी भरे निर्णय लेने के कौशलों को विकसित करने में उनकी मदद करना चाहती थी। इस स्वाँग ने उन सामाजिक क्षमताओं को प्रकट किया जो भूगोल की इस शिक्षिका के लिए सीखने की महत्वपूर्ण उपलब्धियाँ थीं। रानी एसईएल (सोशल एण्ड इमोशनल लर्निंग) . सामाजिक और भावनात्मक ज्ञान – कहलाने वाली एक पद्धति का इस्तेमाल कर रही थी।

एसईएल क्या है और हमें आजकल के संसार में इस प्रकार की क्षमताओं की आवश्यकता क्यों है?

इसके कई सिद्धान्त हैं लेकिन सबसे अच्छी व्याख्या देते हैं मनोवैज्ञानिक डैनियल गोलमैन जो 1995 में बेशुमार बिकने वाली अपनी किताब ''इमोशनल इंटैलीजेन्स : व्हाई इट कैन मैटर मोर द आईक्यू'' (भावनात्मक बौद्धिकता : यह बुद्धि सूचकांक से अधिक महत्वपूर्ण क्यों हो सकती है) में भावनात्मक बौद्धिकता की वकालत करते हैं। उनके शोध ने यह साबित किया कि उच्च भावनात्मक बुद्धि वाले लोग उच्च बुद्धि सूचकांक वाले लोगों की तुलना में जीवन में अधिक सफल होते हैं। अन्य शोध अध्ययनों ने दर्शाया कि सामाजिक और भावनात्मक कौशलों को बढ़ावा देने से बच्चों में हिंसा और आक्रामकता में कमी आती है, तथा उच्च शैक्षिक उपलब्धियाँ, और स्कूलों और कार्यस्थलों में कार्य करने की बेहतर क्षमता हासिल होती है। वे विद्यार्थी, जो अन्य लोगों का सम्मान करते हैं और उनसे सकारात्मक व्यवहार करते हैं और जिनके आदरपूर्ण रवैयों और संवाद के उत्पादक कौशलों को पहचाना और पुरस्कृत किया जाता है, आगे भी इस तरह का व्यवहार करना जारी रखते हैं। जो विद्यार्थी अपने को सुरक्षित और सम्मानित महसूस करते हैं, वे ज्ञान अर्जन करने के लिए अपने–आप को बेहतर रूप से समर्पित कर सकते हैं और शैक्षणिक वातावरणों और व्यापक संसार में उन्नति करने में उन्हें आसानी होती है।

> *अन्य शोध अध्ययनों ने दर्शाया कि सामाजिक और भावनात्मक कौशलों को बढ़ावा देने से बच्चों में हिंसा और आक्रामकता में कमी आती है, तथा उच्च शैक्षिक उपलब्धियाँ, और स्कूलों और कार्यस्थलों में कार्य करने की बेहतर क्षमता हासिल होती है। वे विद्यार्थी, जो अन्य लोगों का सम्मान करते हैं और उनसे सकारात्मक व्यवहार करते हैं और जिनके आदरपूर्ण रवैयों और संवाद के उत्पादक कौशलों को पहचाना और पुरस्कृत किया जाता है, आगे भी इस तरह का व्यवहार करना जारी रखते हैं।*

क्या भावनात्मक बुद्धि को सिखाया जा सकता है?

भावनाएँ हमारे अस्तित्व का एक महत्वपूर्ण हिस्सा होती हैं, और ऐसी बुद्धि हासिल करने के प्रयास में भूगोल का विशेष स्थान है क्योंकि वास्तविक जगहों, वास्तविक लोगों और वास्तविक जीवन के मुद्दों का अध्ययन ही उसका सार है। समसामयिक मुद्दों का समाधान करने के लिए अनेक भौगोलिक अवधारणाएँ विशेष रूप से उपयोगी ज्ञान प्रदान करती हैं। ये हैं स्थान, स्थानिक–विस्तार, पारस्परिक निर्भरता, पर्यावरण के साथ क्रियाकलाप, दूरी, सम्बन्धगत दृष्टिकोण, भौगोलिक कल्पनाएँ, सांस्कृतिक समझ और विविधता। केरेन स्टोन मैकाऊन (1998) के अनुसार ''भावनाएँ हमारे आस–पास के संसार के प्रति हमारी प्रतिक्रियाएँ हैं और वे हमारे विचारों, भावनाओं और क्रियाओं के संयोजन द्वारा पैदा होती हैं।'' उदाहरण के लिए स्लेटर (2001) कहती हैं कि 'नागरिकों को भूगोल और भौगोलिक समझ की जरूरत होती है।' वे मानती हैं कि भूगोल का पूरा सरोकार इसी से है कि हमारे परिवेश के प्रति हमारा दृष्टिकोण क्या है और उसमें हम भौगोलिक और राजनैतिक दृष्टि से जागरूक नागरिकों की तरह कैसे रहते हैं।

संसार सिकुड़ रहा है जबकि कॉर्बन उत्सर्जनों में वृद्धि हो रही है। गूगल के नक्शों ने बहुत पहले मेरे घिसे–पिटे एटलस की जगह ले ली और मैंने भूगोल को दिल में बसा लिया है। मेरे लिए यह एक ऐसा विषय है जो अपने पहाड़ों, नदियों, मैदानों और मौसमों के अद्भुत सौंदर्य के आगोश में भविष्य को छिपाए हुए है।

मारिया अथायडे *अज़ीम प्रेमजी फाउण्डेशन, बंगलौर में एजुकेशन टेक्नॉलॉजी एण्ड डिजाइन में परामर्शदाता हैं। वे सैंट ज़ेवियर इंस्टीट्यूट ऑफ एजुकेशन और एसएनडीटी विमन्स यूनिवर्सिटी मुम्बई में 1990 से शिक्षकों को प्रशिक्षित कर रही हैं। वे पूरे देश में शिक्षकों के लिए कार्यशालाओं का आयोजन करती हैं। वे भावनात्मक रूप से मानती हैं कि : 'बच्चे हमारे सबसे बेशकीमती प्राकृतिक संसाधन हैं और उन्हें सबसे अच्छे शिक्षक मिलने चाहिए'। उनसे इस* maria@azimpremjifoundation.org *ई–मेल पते पर सम्पर्क किया जा सकता है।*

19 झलकियाँ – सभ्यताओं के माध्यम से एक कक्षा की यात्रा

सीता नटराजन

सामाजिक अध्ययन क्या है? बच्चों के व्यक्तित्व के विकास के लिए अनुभवात्मक ढंग से सीखने, कौशल निर्माण करने और जीवन के विभिन्न पहलुओं के प्रति उनके दृष्टिकोण को व्यापक बनाने में कोई इस विषय से कैसे सहयोग प्राप्त कर सकता है? और अन्त में, सामाजिक विज्ञान के शिक्षक के रूप में कक्षा में अपनाई गई अध्यापन विधि के द्वारा कोई कैसे यह सुनिश्चित कर सकता है कि इस विषय की गतिशीलता और उमंग की खूबी और मजबूत बने तथा इसे कक्षा की चहारदीवारी से बाहर ले जाया जा सके?

इस प्रकार के विषय में विद्यार्थियों के लिए इसकी बहुत गुंजाइश रहती है कि वे ऐसे प्रश्न पूछ सकते हैं और उनके उत्तर की खोजबीन कर सकते हैं जो उन्हें वास्तविक प्रतीत होते हैं। उन अवधारणाओं के बारे में शोध कर सकते हैं जिनसे उन्हें गहरा जुड़ाव महसूस होता है। वे चीजों के बारे में अपनी खुद की सूक्ष्म परख निर्मित कर सकते हैं और अपने विकास के साथ ही इन प्रश्नों व खयालों को आगे बढ़ाते हुए उनमें और गहरे जा सकते हैं।

सामाजिक अध्ययन के शिक्षक की हैसियत से, बच्चों के साथ कई तरह के अनुभवों और प्रयोगों के साथ की गई यह शिक्षणयात्रा व्यक्तिगत रूप से मेरे लिए एक रोमांचक व सार्थक अनुभव रहा है।

ऋषि वैली में सामाजिक अध्ययन केवल एक वर्ष, अर्थात कक्षा 6 के पाठ्यक्रम में ही शामिल किया जाता है। यह शुरुआती वर्षों में पढ़ाए जाने वाले पर्यावरण अध्ययन तथा बाद के वर्षों में पढ़ाए जाने वाले भूगोल व इतिहास के ज्यादा संकेन्द्रित विषयों के बीच की कड़ियों और अन्तरों के लिए यह एक सेतु के रूप में काम करता है। यह काफी हद तक दुनियाभर की प्राचीन सभ्यताओं और तत्कालीन नगरों – प्राचीन चीन के लोयाँग, यूनान के एथेंस और स्पार्टा, ग्रेट ब्रिटेन के लन्दन और भारत के बनारस – का अध्ययन है। इसमें, बच्चे इनमें से प्रत्येक नगर से होते हुए, उनकी विभिन्न संस्कृतियों को समझते हुए इनमें से कुछ समाजों के आज की वैश्विक संस्कृति पर पड़े प्रभावों का अध्ययन करते हैं।

इस विषय के अपने अध्यापन के पहले दो वर्षों के दौरान मुझे यह अहसास हुआ कि बच्चे विषयवस्तु में शामिल तथ्यों और उसके अधिकांश सैद्धान्तिक भाग को अक्सर भूल जाते हैं। पर, सहयोगपूर्ण कार्यों, अध्ययन यात्राओं, प्रायोगिक गतिविधियों में भागीदार होने के बहुमूल्य अनुभव, नाटकों और नृत्यों में भाग लेने का मजा, लोगों के साथ किए गए वादविवादों व साक्षात्कारों से मिले नए विचार, खुद के द्वारा किए गए प्रोजेक्ट लगाई गई प्रदर्शनियाँ, सुनी गई असंख्य कहानियाँ आदि उनकी याददाश्त में बस जाते हैं। तो संक्षेप में, जो चीज उनके साथ रह जाती है वह है मनुष्य, तथा किसी भी समाज की व्यवस्था के अध्ययन की गहराई की सूक्ष्म समझ जो फिर बाद की कक्षाओं में इतिहास व भूगोल जैसे विषयों के साथ उनके रिश्ते को मजबूत बनाकर उसे और विकसित करती है। इस प्रकार, हमेशा ही इन भिन्न–भिन्न धागों के साथ खेलते हुए ही मैंने सामाजिक अध्ययन नामक इस वस्त्र के रंग–बिरंगे व शानदार चित्रपट का ताना–बना बुना है।

यहाँ मैं कक्षा 6 में चीन व यूनान के, तथा कक्षा 5 में मिस्र के बारे में अपनी अन्वेषण यात्रा के क्या और कैसे का विहंगम दृश्य प्रस्तुत कर रही हूँ। मैं यहाँ यह बताना चाहूँगी कि हमने हमारे पाठ्यक्रम में शामिल सभी सभ्यताओं व नगरों के लिए अपनी खुद की पाठ्यसामग्री और पुस्तिकाएँ तैयार की हैं।

चीन

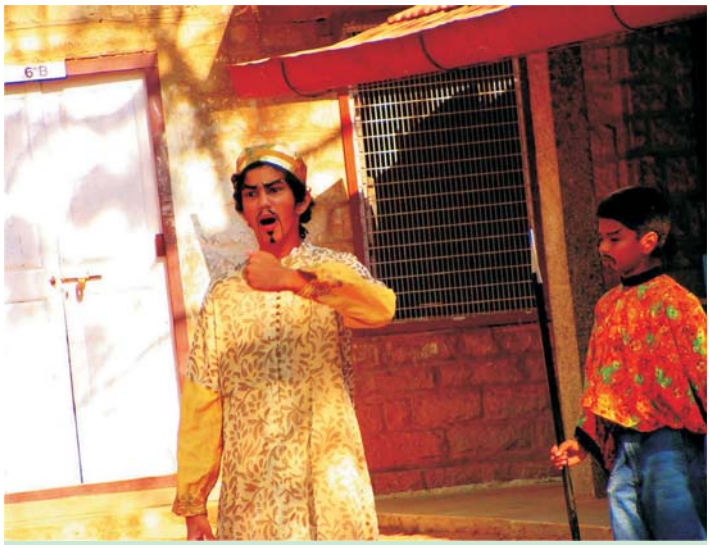

Chin Shi Huangdi in the play

हमने लोगों, स्थानों, अलग–अलग भूदृश्यों, वास्तुकला आदि की तस्वीरों की एक प्रदर्शनी के साथ चीन की खोज यात्रा शुरू की। हमने ऐसी कुछ वस्तुएँ और यंत्र भी प्रदर्शित किए जिनका आविष्कार और सबसे पहला उपयोग चीन में हुआ था, और जिन्हें आज भी दुनियाभर में इस्तेमाल किया जा रहा है (रेशम, दिक्सूचक, छाता, कागज़, आदि..)।

इसके बाद चिन शी ह्वान्डी के माध्यम से बहुत ही नाटकीय ढंग से बच्चों के बीच चीन का परिचय कराया गया; वह चीन का पहला

सम्राट था और उसने देश के छः युद्धरत राज्यों को सैनिक विजयों द्वारा एकीकृत किया था। सम्राट के मकबरे के नजदीक यथार्थ आकार के घोड़ों के साथ टैराकोटा के सैनिकों की दफनाई हुई विशाल सेना की तस्वीरें और सम्राट की जिन्दगी, उसकी क्रूरताओं, तथा उपलब्धियों के बारे में ढेर सारी अन्य जानकारी बच्चों का ध्यान आकर्षित करने वाली बड़ी जबरदस्त शुरुआत साबित हुई। इस बिन्दु पर बच्चों ने खुद ही मौत के बाद के जीवन की मान्यताओं के बारे में एक दिलचस्प चर्चा छेड़ दी। इससे फिर सहज ही, विभिन्न संस्कृतियों में, तथा भारत के भी अलग–अलग धर्मावलम्बियों के बीच मृत्यु व उसके बाद होने वाले संस्कारों को लेकर क्या भेद हैं, इसके बारे में एक तुलनात्मक अध्ययन शुरू हो गया। बच्चों ने उनके परिवारों द्वारा पालन किए जाने वाले विधि–विधानों और उनका पालन करने के कारणों के बारे में बात की। इससे उन्हें कुछ विधि–विधानों की वैधता के साथ ही कुछ ऐसे रिवाजों के बारे में सोचने को भी मजबूर होना पड़ा जिनका कोई वाजिब अर्थ ही समझ में नहीं आता था।

हान राजवंश के अध्ययन द्वारा राजवंश, देश का प्रदेशों में विभाजन, ऊँचे–नीचे पदों की शृंखलाबद्ध नौकरशाही या प्रशासनिक सेवा, और योग्यता–आधारित सार्वजनिक परीक्षाओं आदि से बच्चों का परिचय हुआ। और इस अध्ययन से फिर बच्चों के बीच हमारे देश के प्रशासनिक ढाँचे के बारे में एक शानदार चर्चा शुरू हो गई।

'कन्फ्यूसियस के जीवन और शिक्षाओं,' और किसी भी परिवार व समाज के सभी सदस्यों के कर्तव्यों और जिम्मेदारियों के बारे उसके विचारों पर आधारित पाठ बच्चों की समझ के तल पर बहुत ही खूबसूरती से दर्शन की खोज की तरफ उनका ध्यान आकर्षित करता है। और इससे हमें एक ऐसा मंच मिला जिससे कि हम कुछ समय के लिए स्कूल के संस्थापक व महान दार्शनिक, जे.कृष्णमूर्ति के 'स्वतंत्रता और उत्तरदायित्व' सम्बन्धी विचारों को समझने का प्रयास कर सके।

Dragon Dance

उन दिनों के चीन में बच्चों के जीवन और उनकी परवरिश तथा आज के बच्चों, अर्थात, खुद विद्यार्थियों की जिन्दगी के बारे में, एवं दोनों दुनियाओं में जीने के लाभ व हानियों के बारे में कराया गया तुलनात्मक अध्ययन कक्षा के लिए बहस का बहुत अवसर देने वाला व लाभकारी कार्य साबित हुआ।

लगभग उसी समय, ऋषि वैली की एक पूर्व छात्रा जो उस वक्त चीन में रह रहीं थीं, स्कूल आईं। उन्होंने मौजूदा दौर के चीन के अपने ज्ञान – जैसे, माओ व उनकी नीतियाँ, उन नीतियों के देश पर पड़े प्रभाव, प्रमुख ऐतिहासिक स्थल और सैर करने योग्य स्थान आदि – को बड़े भावपूर्ण अन्दाज में बच्चों के सामने रखकर उनका ज्ञानवर्धक मनोरंजन किया। उनके साथ बीते कुछ सत्र बच्चों के लिए बहुत प्रेरणादायी व मूल्यवान रहे।

इस अन्वेषण प्रक्रिया का निर्णायक पड़ाव स्कूली सभा में अन्य बच्चों के साथ अपने नए ज्ञान को बाँटने के लिए पूरी कक्षा द्वारा शुरू किया गया डेढ़ महीने लम्बा एक प्रोजेक्ट था।

हमने पैमाने पर आधारित चीन का एक विशाल त्रिआयामी उभारदार मानचित्र बनाया। इसमें हमने उसकी तमाम प्राकृतिक और भौगोलिक विशेषताओं, रेशम व्यापार के मार्ग तथा चीन की विशाल दीवार को चिन्हांकित किया। गाँव के कुम्हार की मदद से हमने टैराकोटा सेना की सुन्दर प्रतिकृतियाँ निर्मित कीं। पारम्परिक चीनी ड्रैगन नृत्य के लिए तीस फीट लम्बे दो ड्रैगनों का निर्माण करना इस प्रोजेक्ट का बहुत महत्वाकांक्षी भाग था।

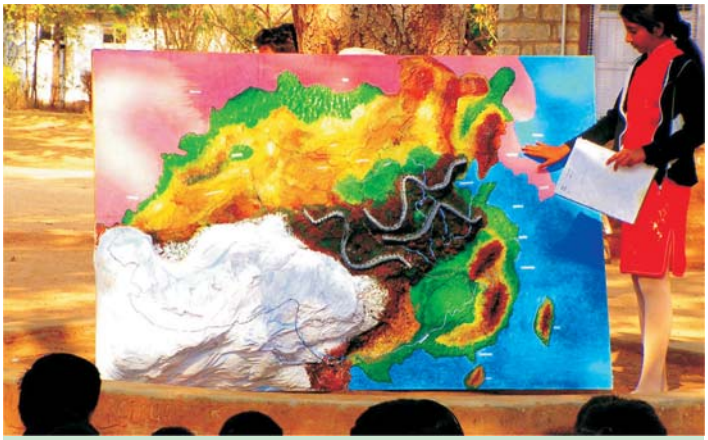

China Map

बाज़ार के दृश्य, जहाँ यह दर्शाया जाना था कि दार्शनिक व शिक्षक किस तरह सार्वजनिक स्थानों पर लोगों से मिलते थे और उनसे जीवन के सत्य के बारे में बात करते थे, तथा चिन शी ह्वांग्डी के दरबार के एक दृश्य, और बाद में उसकी हत्या के एक प्रयास का चित्रण करने वाले नाटक, अन्तिम दिन के प्रदर्शन हेतु चुने गए प्रसंग थे। विद्यार्थियों के एक अन्य समूह ने 'बुद्धिमत्ता के मोती' को

लेकर अच्छाई और बुराई के बीच हुई लड़ाई को निरूपित करने वाले ड्रैगन नृत्य का अभ्यास किया।

बच्चों की सभा जबर्दस्त रूप से सफल साबित हुई। पार्श्व में बजता बड़ा मधुर चीनी संगीत तथा बहुप्रतीक्षित ड्रैगन नृत्य उसकी विशेषता रही। और इस प्रकार एक प्राचीन सभ्यता की हमारी खोज समाप्त हुई।

वे विद्यार्थी अब कक्षा 10 में हैं और यह देखकर बहुत खुशी और प्रोत्साहन मिलता है कि वे लोग कितने रोमांच के साथ अभी भी उस अनुभव को याद करते हैं।

प्राचीन यूनान

Greek Mosaic

इस सभ्यता पर विद्यार्थियों के साथ काम करते हुए मैंने तकरीबन इसी कार्यविधि का अनुसरण किया। प्राचीन यूनान के बारे में एक पुस्तिका, पुस्तकालय की किताबों के समृद्ध स्रोत पर आधारित सन्दर्भ कार्य, मानचित्र, चित्र, चार्ट आदि हमारे द्वारा इस्तेमाल किए गए बुनियादी साधन थे। एक और नया कौशल था, दिमागी नक्शे बनाना, जिसके बारे में बच्चों को बताना मुझे महत्वपूर्ण लगा। एक विषय की तरह से सामाजिक अध्ययन की जरूरत होती है कि बहुत सी सूचनाओं, तथ्यों, आँकड़ों और अन्य जानकारियों को याद रखा जाए। मुझे लगता है कि दिमागी नक्शे बनाना विवरणों को एक गुच्छे के रूप में इकट्ठा रखने का सबसे आसान तरीका है। इसलिए, मैंने दिमागी नक्शों के बारे में टोनी बुजान की तकनीकों का इस्तेमाल किया और कुछ ही सत्रों में ऐसा लगा कि विद्यार्थी यूनान से सम्बन्धित भिन्न–भिन्न विषय–प्रसंगों पर सुन्दर, रंग–संकेतों वाले दिमागी नक्शे बनाने में दक्ष हो गए थे।

इनमें से कुछ प्रसंग वहाँ की भूमि की भौगोलिक विशेषताओं, किसी यूनानी कस्बे के ढाँचे, उसके लोगों की रोजमर्रा की जिन्दगी व उनके पेशों, जीवन के प्रति एक दूसरे से बिलकुल भिन्न नजरिया रखने वाले उसके दो मुख्य शहरों – स्पार्टा और एथेंस – और उनके झगड़ों, आदि को समझना थे।

पेरीक्लीज़ के सक्षम नेतृत्व में यूनान में हुए लोकतंत्र के उद्भव पर आधारित पाठ एक यादगार अनुभव था। इस प्रसंग ने विस्तृत होकर कई गतिविधियों का रूप ले लिया – मुख्यतः, जानकारियों को एक दूसरे के साथ बाँटने के माध्यम से सरकार के अलग–अलग रूपों के बारे में किया गया एक तुलनात्मक अध्ययन; तथा राजतंत्र, कुलीनतंत्र, अल्पतंत्र व लोकतंत्र के बीच भेद दिखाने के लिए की गईं विनोदपूर्ण नाटिकाएँ। बच्चों को इस बात का अनुभव दिलाने के लिए कि लोकतंत्र क्या होता है और वह कैसे काम करता है, मैंने अलग–अलग टीमों के बीच उनके स्कूली जीवन के विभिन्न पहलुओं पर आधारित बहसें आयोजित कीं। इसके पीछे उद्देश्य था उन्हें यह समझाना कि किस तरह देश के महत्वपूर्ण मुद्दों के बारे में चर्चाओं व बहसों के माध्यम से निर्णय किए जाते हैं।

Parthenon

जब हमने यूनानी कथाओं और किवदन्तियों को लेकर अपनी खोज शुरू की तो फिर बच्चों को 'नुक्कड़ नाटक' की अवधारणा से परिचित कराया गया। तकरीबन छः से सात कहानियाँ पढ़ने के बाद हमने चार से पाँच विद्यार्थियों के छोटे–छोटे समूहों में प्रत्येक कहानी के लिए पटकथा लिखने का कार्य शुरू किया। फिर, कुछ अभ्यासों के बाद हमने दूसरी कक्षाओं के बच्चों और शिक्षकों को अपने नाटक देखने के लिए आमंत्रित किया। प्रत्येक नाटक के लिए हमने स्कूल प्रांगण के अलग–अलग हिस्सों में कोई न कोई प्राकृतिक स्थान चुना और कहानियों को न्यूनतम सहायक वस्तुओं व पोशाकों के साथ पेश किया गया। इस पूरे अनुभव का सबसे रोमांचक हिस्सा था दर्शकगण जो नाटकों को देखने के लिए उसके अभिनेताओं के साथ इधर से उधर हो रहे थे।

हमने ग्रीक – क्रूसिबल ऑफ सिविलाइज़ेशन नामक एक वृत्तचित्र भी देखा। एक शिक्षक के रूप में मेरे लिए बहुत ही विचारोद्दीपक गतिविधि तब हुई जब मैंने बच्चों को ही यूनान से सम्बन्धित कुछ सामान्य विषय–प्रसंगों का प्रभारी बना दिया और उनसे खुद को छोटे–छोटे समूहों में बाँटकर कक्षा के दूसरे बच्चों को पढ़ाने के लिए

कहा। बच्चों ने कुछ समय के लिए शिक्षक होना बहुत पसन्द किया, पर यहाँ जो उल्लेखनीय बात है वह हर समूह की बहुत गहराई से की गई तैयारी थी। न सिर्फ उन्होंने आपस में जिम्मेदारियों का बँटवारा किया, और अपने दोस्तों को अपने ही शिक्षकों द्वारा अपनाए जाने वाले तरीकों से संकेत लेना सिखाया, बल्कि उन्होंने पाठ पढ़ाने के अपने खुद के तरीके भी अपनाए। बल्कि, उन कुछ सत्रों में मैंने अपने 'विद्यार्थी शिक्षकों' से पढ़ाने के कई और सृजनात्मक तरीके सीखे।

हमने एक बार फिर यूनान पर होने वाली स्कूली सभा की तैयारी के लिए एक महीने का प्रोजेक्ट हाथ में लिया। इस बार विद्यार्थियों ने पार्थेनॉन का प्रतिरूप बनाया, पच्चीकारी द्वारा दृश्यों को तथा लोगों को चित्रित किया (यह बच्चों के यूनानी पच्चीकारी के अध्ययन पर आधारित था), गत्तों से यूनानी बरतनों के सुन्दर प्रतिरूप बनाए जिनपर उत्कृष्ट चित्रकारी थी, और यूनानी मानचित्र का एक बड़ा द्विआयामी प्रतिरूप भी बनाया। नाटकों के लिए जो विषय–प्रसंग चुने गए उनमें शामिल था यह दर्शाना कि देश के महत्वपूर्ण मुद्दों को लेकर होने वाली सभाओं में यूनान के नागरिकों द्वारा किस प्रकार लोकतांत्रिक ढंग से चर्चाएँ की जाती थीं। एक अन्य विषय–प्रसंग था तीन प्रसिद्ध यूनानी कथाएँ। लड़कियों द्वारा एक बेहद खूबसूरत यूनानी पारम्परिक नृत्य का प्रदर्शन किया गया।

Greek Vases

प्राचीन मिस्र

बच्चे इस सभ्यता के बारे में उनके पाँचवी कक्षा के सत्र के सबसे अन्तिम हिस्से में पढ़ते हैं – यह प्रसंग उन्हें कई बातों को समझने के लिए अच्छी तरह तैयार कर देता है जैसे कि किसी सभ्यता का क्या अर्थ होता है, पुरातत्व–विज्ञान क्या होता है, नगर कैसे अस्तित्व में आते हैं, समाज क्या है, सामाजिक अनुक्रम क्या होता है, आदि।

मैंने बच्चों के साथ इस पूरे प्रसंग को आगे बढ़ाने के लिए द्विमार्गी ढंग से काम करना तय किया – कक्षा में सीखने के साथ ही साथ शोध–आधारित प्रोजेक्ट का तरीका अपनाना। प्रत्येक समूह को इस सभ्यता से सम्बन्धित एक प्रमुख प्रसंग के बारे में शोध करने का और अपने शोध पर आधारित प्रतिरूप, चार्ट तथा अन्य चीजें बनाने का कार्य सौंपा गया। जिन प्रसंगों को अध्ययन में शामिल किया गया था वे थे – नील नदी, फैरो (मिस्री सिंहासन, विभिन्न प्रकार के मुकुट, पारम्परिक दाढ़ी आदि), उनके देवी–देवता, प्रस्तर ताबूत और शव–परिरक्षण, पिरामिड, वहाँ के घर और उनके भोजन के प्रकार (हमने पारम्परिक अनगढ़ मिस्री बिस्कुट भी बनाए), वहाँ के लोगों के पेशे और सामाजिक अनुक्रम (चित्रावली के रूप में) और मिस्री चित्रलिपि। हमने लगभग तीन सप्ताह तक, पुस्तकालय तथा इन्टरनेट की मदद से पढ़ाई की व सन्दर्भ कार्य किए, शिक्षक के साथ सैद्धान्तिक कक्षाओं में तैयारी की तथा चार्ट तैयार किए। सभी बच्चों ने खुद अपनी मिस्री पोशाकें तैयार की थीं।

प्रदर्शनी के एक सप्ताह पूर्व, प्रत्येक समूह को अपने कार्य को पूरी कक्षा के समक्ष प्रस्तुत करना था। इससे बच्चों को प्रस्तुतिकरण का कौशल, व अपने कार्य पर आधारित विभिन्न प्रकार के प्रश्नों का सामना करने की योग्यताएँ सीखने में मदद मिली। जब कक्षा के भीतर प्रदर्शनी की तैयारी कर ली गई, तो निर्णायक दिन की पिछली

रात मैं और मेरे एक अन्य सहयोगी, हम दोनों बच्चों की तैयारी कराने के उद्देश्य से दर्शकों की भाँति वहाँ गए और प्रत्येक समूह से उनके कार्य से सम्बन्धित प्रश्न पूछे व उन्हें अपने फीडबैक व सुझाव दिए। इस तरह से बच्चों का यह अध्ययन परिपूर्ण, सहयोगात्मक और समग्र था, हालाँकि प्रत्येक समूह ने अपने–अपने प्रसंगों पर पूरी तरह डूब कर काम किया था।

इस अन्वेषण की शुरुआत को शुरू किए तीन साल हो चुके हैं, और यात्रा– अपने विषय को और बेहतर ढंग से पढ़ाने की नई पद्धतियाँ खोजने की यात्रा, सर्वाधिक सार्थक सम्भव प्रक्रियाओं के माध्यम से निकलकर सामने आने वाले प्रश्नों के उत्तर ढूँढ़ने की यात्रा, बच्चों द्वारा किए जाने वाले अतीत व वर्तमान के अध्ययन द्वारा समाज व संस्कृति के प्रति उनके दृष्टिकोण को आकार देने में अन्तरावलोकन व प्रेक्षण के माध्यम से उनकी मदद करने की यात्रा – अभी जारी है।

Egyptian attire

सीता नटराजन *कृष्णमूर्ति फाउण्डेशन इण्डिया के ऋषि वैली स्कूल में अध्यापिका हैं। वे अँग्रेजी, पर्यावरण अध्ययन, और सामाजिक अध्ययन पढ़ाती हैं। उन्होंने कलकत्ता विश्वविद्यालय से अँग्रेजी साहित्य में एम.ए. किया है। उनकी रुचियाँ हैं पढ़ना, कविताएँ और चित्रकारी। वे 'एक्स्ट्रा लैसन' की एक छात्र प्रयोगकर्ता भी हैं। उनसे इस* nats_k@yahoo.com *ईमेल पते पर सम्पर्क किया जा सकता है।*

20 क्या तटस्थ = विवादास्पद होता है?

मंगला नंदा

सामाजिक विज्ञान में विवादित मुद्दों को पढ़ाते समय शिक्षकों के सामने आने वाली दुविधाओं की छानबीन

इतिहास का शिक्षक बनने की प्रशिक्षण प्रक्रिया के व्यवहारिक कार्य के दौरान मैंने एक जबदस्त उत्साही शिक्षक को देखा। अपने एक सबक में, उन्होंने विद्यार्थियों को अपने विचारों और लेखन को इस तरह से व्यवस्थित करने का एक तरीका प्रदर्शित किया ताकि वे किसी तर्क के विभिन्न पहलुओं को ढूँढ सकें। उन्होंने अपने दोनों हाथ पर बड़े और रंगीन दस्ताने पहन रखे थे। वे पहले अपने दाहिने हाथ को विद्यार्थियों की ओर हिला कर गरजेः ''एक हाथ पर (एक तरफ)!'' फिर अपने बाएँ हाथ को हिला कर चिल्लाएः ''दूसरे हाथ पर (दूसरी तरफ)!'' उन्होंने इस अभ्यास को कई बार दोहराया। मैं अपनी हँसी दबाए देखती रही। उनके छात्र निश्चित तौर पर उनकी सनकों के आदी थे। उन्होंने आगे कहा कि आपको 'एक हाथ पर' और 'दूसरे हाथ पर' की आवश्यकता तब पड़ती है जब आप भूतकाल की एक पूरी तस्वीर बना रहे होते हैं। वास्तव में, जितने अधिक हाथ (या दृष्टिकोण) आपके पास होंगे, आपकी कहानी उतनी ही अधिक परिपूर्ण होगी। इसके बाद उन्होंने शब्दों में अपना तर्क गढ़ा कि क्यों, एक ओर, मैरी ट्यूडर खूनी रानी कहलाने की ख्याति की हकदार थी। फिर उन्होंने एक विपरीत तर्क दिया, यह कहते हुए कि कुछ लोग क्यों इस ख्याति को आधारहीन मानते हैं – इस दौरान वे अपने दस्ताने वाले हाथों को हिलाते रहते। मुझे पूरा भरोसा है कि उनके ये उपयोगी शुरुआती वाक्य उनके विद्यार्थियों के मस्तिष्क पर अंकित हो गए होंगे।

मैंने इतिहास को हमेशा एक गुंथे हुए आख्यान के रूप में देखा है – अनेक कथाओं और दृष्टिकोणों का एक संकलन। इसीलिए मुझे यह विचार अच्छा लगा कि इतिहास के युवा छात्रों को एक ऐसी रूपरेखा दी जाए जो कई दृष्टिकोणों का अस्तित्व होना स्वीकारे, और उन्हें किसी तर्क के विभिन्न पहलुओं के बारे में लिखने के लिए उत्प्रेरित करे। जब मैंने पहली बार पढ़ाना शुरू किया, तब मैं चाहती थी कि मेरी कक्षा एक खुला स्थान हो जहाँ ''विचारों के बाजार में स्वस्थ प्रतिस्पर्धा हो'' (कैली 1986)। मैं चाहती थी कि इतिहास के विवादों के बारे में मेरे छात्र अलग–अलग तर्क दें और फिर अपने स्वयं के निष्कर्षों पर पहुँचें। मुझे यह लगा कि मैं स्वयं की राय को छिपा कर रखूँ ताकि उन्हें प्रभावित न करूँ। मेरे लिए तटस्थ सहायक की भूमिका सबसे महत्वपूर्ण थी। परन्तु, मुझे जल्दी ही यह विश्वास होने लगा कि शिक्षक की तटस्थता वास्तव में सम्भव नहीं थी, और न ही यह वांछनीय थी।

अध्यापन अपरिहार्य रूप से राजनैतिक होता है, इसलिए अव्यक्त रूप से या स्पष्ट रूप से मैं (या फिर कोई अन्य शिक्षक) कक्षा में 'तटस्थ' नहीं रह सकती। हम जो भी कदम उठाते हैं वह किसी न किसी ढंग से हमारे सामाजिक–राजनैतिक दृष्टिकोण पर आधारित होता है।

स्कूल व्यापक समाज से भिन्न नहीं होते, बल्कि वे स्वयं भी संघर्ष और सामाजिक बदलाव का स्थान होते हैं। इस अर्थ में, शिक्षक जब कक्षा में आते हैं तो उनके मस्तिष्क कोई कोरी स्लेट नहीं होते। यदि कोई नजदीक से देखे तो शिक्षक के (और व्यवस्था के) सामाजिक और राजनीतिक चश्मे कक्षा में हमेशा दिखाई देंगे। पाठ्यपुस्तकों या दूसरे शैक्षणिक संसाधनों का चयन इसका एक स्पष्ट संकेत होता है। यह मुझ पर लागू होता था। मैं उन पाठ्यपुस्तकों का चयन करती थी जो छोटे ओहदे वालों और सामान्य व्यक्तियों के इतिहास पर केन्द्रित होती थीं बजाय उन पुस्तकों के जिनका ध्यान उच्च राजनीति पर होता था, क्योंकि ये पाठ्यपुस्तकें इतिहास की उस धारा के अनुकूल होती थीं जिससे मैं अपने–आप को जोड़ती हूँ। फिर भी, कम स्पष्ट दिखने वाली कुछ ऐसी बातें होती हैं जिनसे किसी शिक्षक के खास रवैये का संकेत मिल सकता है। उदाहरण के लिए, कोई शिक्षक किस तरह कक्षा में परिचर्चा का संचालन करता है – वे बिन्दु जिन पर वह अधिक ध्यान देता है, और वे बिन्दु जिन्हें वह पूरी तरह से उपेक्षित कर देता है – ये सब उसके सामाजिक, राजनैतिक मूल्यों और धारणाओं का प्रतिबिम्ब होंगे।

> *कॉटन (2006) ने पर्यावरण के विवादास्पद मुद्दों को पढ़ाते समय किसी शिक्षक के तटस्थ बने रहने की कठिनाई को रेखांकित किया है। वे कहती हैं कि हो सकता है कि शिक्षक विवादित विषयों के अध्यापन में 'सन्तुलित' दृष्टिकोण अपनाना चाहते हों, लेकिन कक्षा में इस दृष्टिकोण को बनाए रख पाना सम्भव नहीं होता।*

कॉटन (2006) ने पर्यावरण के विवादास्पद मुद्दों को पढ़ाते समय किसी शिक्षक के तटस्थ बने रहने की कठिनाई को रेखांकित किया है। वे कहती हैं कि हो सकता है कि शिक्षक विवादित विषयों के अध्यापन में 'सन्तुलित' दृष्टिकोण अपनाना चाहते हों, लेकिन कक्षा

में इस दृष्टिकोण को बनाए रख पाना सम्भव नहीं होता। कक्षाओं में होने वाली चर्चाओं के विस्तृत विश्लेषण पर आधारित उनके शोध के निष्कर्ष यह दर्शाते हैं कि ''(शिक्षकों के) अपने रुख का प्रभाव उससे कहीं अधिक होता है जितना उनका इरादा होता है या, जिसकी सम्भावना अधिक है, जितना उन्हें अहसास होता है'' (पेज 223)। मूल निवासियों के भूअधिकारों के बारे में नीचे दिया गया एक परिसंवाद यह दिखाता है कि जब किसी शिक्षक के मूल्यों और किसी छात्र के द्वारा व्यक्त किए जा रहे विचारों में अन्तर होता है तब किस तरह एक शिक्षक को तटस्थ रहने के लिए संघर्ष करना पड़ता है।

18. शिक्षकः मम्म्म... अहा, इन्हें मरिंग के वन कहा जाता है क्योंकि इनकी मिलकियत मरिंग की है, हाँ।

19. साराः ये उनके नहीं हैं, वे सिर्फ वहाँ रहते हैं।

20. शिक्षकः ओह, इससे कई तरह की बहस शुरू हो सकती है, सारा, है ना? अगर इनकी मिलकियत उनकी नहीं है तो फिर किसकी है? और क्या इसका मतलब यह है कि मूल निवासी...?

21. साराः इन पर किसी की मिलकियत नहीं है, वे सिर्फ इसका उपयोग करते हैं।

22. शिक्षकः और इसका मतलब क्या है.... क्या इसका मतलब यह है कि मूल निवासियों का कोई भूमि अधिकार नहीं है?

23. साराः नहीं (मुझे ऐसा नहीं लगता) (कॉटन 2006 पेज 236)।

यह पूरा संवाद पढ़ने के बाद हम देखते हैं कि शिक्षक अन्ततः सारा के विचार को मान लेते हैं, लेकिन इससे पहले वे जिस तरह से तर्क को आगे ले जाते हैं, उसमें इस पाठ के बारे में वे अपना स्वयं का रुख व्यक्त करते हैं। वे ऐसा कई तरीकों से करते हैं। उदाहरण के लिए, वे चर्चा की शुरुआत खुले प्रश्नों से करते हैं, लेकिन यह बाद में छिपे उत्तरों वाले गैर जरूरी प्रश्नों में बदल जाता है (जैसा कि संवाद की 22वीं पंक्ति के प्रश्न में दिखता है)। यह तरीका खुले संवाद को अवरुद्ध करता हुआ लगता है और परोक्ष रूप से छात्र से असहमति व्यक्त करता है।

आगे चलकर वे उन छात्रों को इस चर्चा में हिस्सा लेने के लिए भी कहते हैं जो (उनकी पहले की गई टिप्पणियों के कारण) सारा के खिलाफ तर्क देंगे। यह वह पहले से ही जानते हैं। दिलचस्प बात यह है कि इस अध्ययन में शामिल किए गए शिक्षक तटस्थ रहने का भरसक प्रयास कर रहे थे, और इस इरादे के बावजूद, उनके स्वयं के मूल्य और धारणाएँ कक्षा में हो रही बातचीत को प्रभावित करती रहती हैं। यह तथ्य, इस विषय पर उपलब्ध अधिकांश साहित्य के अनुरूप है जो अध्यापन करने में सन्तुलन और तटस्थता की सम्भावना को खारिज करता है। उदाहरण के लिए, ऊटन आदि (2004) का तर्क है कि सन्तुलन बनाए रखने को आवश्यक मानने की धारणा बहुत मददगार नहीं है क्योंकि इसे हासिल करना करीब–करीब असम्भव है।

मैं जानती हूँ कि मेरे अपने मूल्य और धारणाएँ कक्षाओं में मेरे कामकाज पर असर डालते हैं। मेरे अध्यापन शुरू करने के सिर्फ एक सप्ताह पश्चात, मुझे कक्षा 9 को इतिहास की एक इकाई की तरह विक्टोरियाकालीन गरीबी के बारे में पढ़ाना था। मुझे याद है कि मैंने छात्रों को स्पष्ट कर दिया था कि मेरी व्यक्तिगत राय में 'लैसे फेयर (नियंत्रण–मुक्त अर्थव्यवस्था)' वाली राजनीति गैरजिम्मेदार थी। गरीबों के लिए शिक्षा और स्वास्थ्य सेवाओं जैसी जन सुविधाएँ प्रदान करना सरकार की जिम्मेदारी थी। उसी समय, कक्षा 8 में हम गुलामी और बन्धुआ मजदूरी (पश्चिमी अफ्रीकी देशों के साथ कोको का कारोबार) के बारे में एक अध्याय पढ़ रहे थे। मैंने कुछ चर्चाएँ कराईं जिनमें उन कारणों पर बात की जिनकी वजह से मजदूर, जिनमें बच्चे भी हैं, आज भी इन हालातों में काम कर रहे हैं। ये इकाइयाँ पढ़ाने से पहले मैंने विचार किया था कि इन विषयों को मैं छात्रों के सामने कैसे रखूँगी। मैं नहीं चाहती थी कि हाशिए पर जीने को मजबूर कर दिए गए लोगों के बारे में मेरी अपनी सामाजिक चिन्ताओं से छात्रों के प्रश्न अवरुद्ध हो जाएँ, या परस्पर विरोधी दृष्टिकोणों के बारे में उनके विचारपूर्वक सोच सकने में रुकावट आए। लेकिन साथ ही, मैं चाहती थी कि मेरे छात्र यह जानें कि मैं समानता और सामाजिक न्याय में विश्वास करती थी। इसलिए मैंने तय किया कि मुझे तटस्थता का बहाना करने की आवश्यकता नहीं थी।

यही दृष्टिकोण हाई स्कूल के सामाजिक अध्ययन के एक शिक्षक बिजेलो ने भी अपनाया था जिनसे कैली और ब्रांडेस (2001) ने शिक्षकों की तटस्थता के बारे में अपने अध्ययन के लिए साक्षात्कार लिया था। बिजेलो ने उस पाठ के बारे में बताया जिसमें उन्होंने नाइकी और वैश्विक पूँजीवाद के बारे में पढ़ाया था और सामाजिक न्याय के विषयों की चर्चा करते समय शिक्षकों की निष्पक्षता के बारे में अपनी चिन्ताओं को रेखांकित किया थाः ''यह दावा करना कि मैं सिर्फ शिक्षा का वितरक हूँ बेईमानी होगी, किन्तु इसका इससे भी खराब मतलब यह होगा कि मूकदर्शक बने रहना भी अन्याय के खिलाफ नैतिक जवाब होता है। यह नैतिक उदासीनता का नमूना होगा।''

अनेक शोध विवरणों से इस मत को समर्थन मिलता है कि किसी शिक्षक का कक्षा में अपने दृष्टिकोण को छिपाने के बजाय उसे व्यक्त करना अधिक वांछनीय है। कॉटन (2006) का कहना है कि प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से शिक्षक अपने रवैयों को कक्षाओं में व्यक्त कर ही देते हैं, इसलिए खुले तौर पर अपनी राय रखना बेहतर होता है क्योंकि,

> *बिजेलो ने उस पाठ के बारे में बताया जिसमें उन्होंने नाइकी और वैश्विक पूँजीवाद के बारे में पढ़ाया था और सामाजिक न्याय के विषयों की चर्चा करते समय शिक्षकों की निष्पक्षता के बारे में अपनी चिन्ताओं को रेखांकित किया था: ''यह दावा करना कि मैं सिर्फ शिक्षा का वितरक हूँ बेईमानी होगी, किन्तु इसका इससे भी खराब मतलब यह होगा कि मूकदर्शक बने रहना भी अन्याय के खिलाफ नैतिक जवाब होता है।*

''शिक्षक के द्वारा प्रस्तुत किए गए एक सीधे तर्क के बजाय उसके परोक्ष रूप से प्रगट किए गए रवैयों को चुनौती देना छात्रों के लिए कठिन हो सकता है'' (पेज 237)। उन्होंने जिन मामलों का अध्ययन किया उनमें ऐसे शिक्षकों के उदाहरण दिए गए हैं जो अनजाने ही बातचीत को एक खास दिशा में ले जाते हैं। हालाँकि अक्सर उन्हें तब तक ऐसा करने का बोध नहीं होता, जब तक कि कोई प्रेक्षक बाद में उनके साथ इस बारे में चर्चा नहीं करता। कॉटन की दलील है कि बेहतर होगा कि शिक्षक खुलकर अपना दृष्टिकोण रखे ताकि वह छात्रों को उसके विपरीत विचार व्यक्त करने का समुचित अवसर दे सके। एष्टन और वॉटसन (1998) शिक्षक के खुद को निष्पक्ष व्यक्ति की भाँति प्रस्तुत करने के विरोध में तर्क देते हैं कि इससे छात्र यह मान सकते हैं कि उनके शिक्षक उदासीन हैं। वे कहते हैं कि यदि शिक्षक स्वयं का मत व्यक्त करे और छात्रों के साथ उस पर बातचीत करे तो यह ज्यादा अच्छा होगा क्योंकि इससे छात्रों को लगेगा कि उनके विचारों को गम्भीरता से लिया जा रहा है। हाँ, यह जरूर है कि कक्षा में शिक्षक के अपने विचार प्रस्तुत करने से शुरू हुए संवाद की सफलता कक्षा की संस्कृति पर निर्भर करती है। एक शिक्षक, जिसका कैली और ब्रांडेस (2001) ने साक्षात्कार लिया था, ने इसे सूत्र रूप में इस तरह कहा, ''आप शिक्षक की तरह अपने विचार व्यक्त कर सकते हैं, और फिर भी एक न्यायपूर्ण और सम्मानपूर्ण वातावरण बनाए रख सकते हैं, जब तक आप यह समझते रहें कि आपकी राय सर्वोपरि नहीं है और अगर कोई आपके खिलाफ जाता है तो आप उसकी राय को एकदम खारिज़ न करें'' (पेज 448)।

मेरे अपने अध्यापन कार्य के सम्बन्ध में, मैंने यह तय किया कि कक्षा में अपने विचार रखने में मैं हिचकिचाऊँगी नहीं और छात्रों को मेरे, और आपस में एक–दूसरे के भी तर्कों की विवेचना करने के लिए प्रोत्साहित करूँगी। मैं अपने छात्रों को यह देखने का अवसर देना चाहती थी कि इतिहास एक ऐसा विषय है जिसमें बातचीत, विचार और बहस के लिए पर्याप्त गुंजाइश रहती है। हमने विभिन्न विषयों के बारे में कई स्वस्थ बहसें कीं जिनमें, भारत के विभाजन के लिए भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस किस हद तक जिम्मेदार थी, से लेकर, क्या किंग जॉर्ज वाकई में पागल थे, जैसे तमाम विषय शामिल थे। ये पाठ समय बीतने के साथ–साथ अधिक कामयाब होते गए, जैसे–जैसे मैं अपने छात्रों को जानती गई और उनके साथ एक सकारात्मक रिश्ता बनाती गई। उनके साथ एक बार यह घनिष्ठता स्थापित होने के बाद, जब छात्र कक्षा में स्वयं की राय रखने और एक–दूसरे के साथ वाद–विवाद करने में अपने को 'सुरक्षित' महसूस करने लगे, तब हमने कई सार्थक बहसें कीं जिनमें छात्रों ने अपने विचारों के पक्ष में सबूत और व्याख्याएँ पेश कीं। निश्चित ही, ऐसा कई बार हुआ जब मेरे छात्रों के विचार मुझसे अलग थे, किन्तु मुझे उन पर गर्व हुआ कि उन्होंने मुझे चुनौती देने के रास्ते और अपने तर्कों को आगे ले जाने के तरीके ढूँढ लिए थे।

फिर भी, कई बहसों में ऐसा भी हुआ जब मैं कुछ खास छात्रों से कतई सहमत नहीं हो सकी। मुझे छात्रों के एक समूह के साथ हुई अपनी एक कठिन चर्चा याद आती है। उस दिन भारी बर्फबारी हो रही थी जिसने अधिकांश छात्रों को स्कूल आने से हतोत्साहित कर दिया था। कक्षा में बहुत कम छात्र थे। मैंने निर्धारित पाठ छोड़ कर उनसे सिर्फ उनके परिवार, समाचार या फिर किसी भी अन्य विषय के बारे में बातचीत करने का निर्णय लिया। हमने रिश्तों के बारे में बात करना शुरू किया और जल्दी ही पाया कि बातचीत आवेशपूर्ण होती जा रही थी। दो छात्राओं ने जोर देकर कहा कि अगर किसी महिला ने व्यभिचार किया हो तो उसे पत्थर मारकर मार डालना पूरी तरह जायज बात थी। करीब छह छात्रों का उतने ही आवेशपूर्वक बोलने वाला एक दूसरा समूह भी था जो इस पूरे विचार को घृणास्पद मानता था। ये दोनों समूह धर्म के आधार पर बँटे थे। औरतों को पत्थर मारने की वकालत करने वाले छोटे गुट में दो मुस्लिम लड़कियाँ थीं, जबकि इसका विरोध करने वाले बड़े समूह में मुस्लिम और गैर मुस्लिम दोनों ही तरह के छात्र थे। यह एक कठिन परिस्थिति थी। मैं यह तय नहीं कर पा रही थी कि इसे आगे कैसे ले जाया जाए, क्योंकि दोनों समूह अपने हथियार के तौर पर धार्मिक नियमों (उनके अलग–अलग पहलुओं) का हवाला दे रहे थे। मुझे लगा कि मुझे अपना स्वयं का मत भी व्यक्त करना चाहिए क्योंकि अगर मैं चुप रहती तो वह चुप्पी अपने आप में काफी कुछ कह रही होती। मेरे लिए यह महत्वपूर्ण था क्योंकि मैं यह धारणा नहीं बनने देना चाहती थी कि, चाहे अप्रगट रूप से ही सही, मैं हिंसा के विचार का समर्थन करती हूँ। मैंने अपने विचारों को व्यक्त करने का निर्णय लिया और यह भी समझाया कि उन विचारों को मैं क्यों मानती थी। मैंने बहस को इस तरह संचालित करने का प्रयास किया कि सभी

छात्र विरोधी विचारधारा वाले अपने साथियों पर व्यक्तिगत हमला किए बगैर अपनी बात कह सकें। मेरा प्रयास यह था कि चाहे हम एक आम राय न बना पाएँ, लेकिन हमें कुछ ऐसे तरीके स्थापित करना चाहिए जिनसे परस्पर टकराने वाली धारणाओं का सम्मानजनक ढंग से सामना करना सीखने में मदद मिल सके। मुझे अभी भी पता नहीं है कि मैं उस स्थिति से और बेहतर ढंग से कैसे निपट सकती थी। मुझे यह लगा कि दखल देना महत्वपूर्ण है, किन्तु मुझे इस बात से धक्का लगा कि जिन दो छात्राओं के विचारों का मैंने खण्डन किया उन्हें ये लगा कि मैंने उनकी धार्मिक मान्यताओं का अपमान किया था।

निष्पक्षता और सन्तुलन एक सामाजिक विज्ञान शिक्षक के द्वारा अपनाए जाने के लिए आदर्श मूल्य प्रतीत होते हैं। पर, जैसा ऊपर की विवेचना से जाहिर है, इसके बहुत सबूत हैं कि इन मूल्यों का वास्तव में पालन करना सम्भव नहीं होता। हम सभी की तरह, शिक्षक भी संसार को किसी खास सामाजिक और राजनीतिक प्रतिमान के माध्यम से देखते हैं; इसलिए यह मानना कि वह उनके व्यवहार में, कम से कम छोटे–मोटे तरीके से ही सही, नहीं झलकेगा, तर्कसंगत नहीं होगा। इसके अलावा, कोई यह तर्क दे सकता है कि निष्पक्षता हासिल करने का प्रयास करना स्वयं में भी अवांछनीय है। शिक्षक निष्पक्ष होने का प्रयास करके छात्रों द्वारा उसे चुनौती देने, एक सार्थक संवाद में हिस्सा लेने, और दुनिया को दूसरे चश्मों से देखने की छात्रों की क्षमता को सीमित कर देता है। सामाजिक विज्ञान तर्क, वाद–विवाद और रायों के लिए सरलता से अवसर देते हैं – और छात्रों के विचारों का सिर्फ निर्णायक बन कर, शिक्षक उस आवेग और उत्साह को प्रदर्शित नहीं करता, जिसे जगाने की इन विषयों में सामर्थ्य है। अन्त में, यह कहा जा सकता है कि शिक्षक के लिए कई बार ''चरम पूर्वाग्रह का प्रतिरोध करने के लिए'' दखल देना आवश्यक हो जाता है (एष्टन, ई एण्ड वॉटसन, बी 1998, पेज 88), 'वैल्यूज़ एजुकेशनः अ फ्रैश लुक ऐट प्रोसीजरल न्यूट्रलिटी', एजुकेशनल स्टडीज़, 24 (2), (83–193)। कक्षाओं में ऐसे तर्क भी उभर सकते हैं जो हिंसा या फिर सामाजिक अन्याय को बढ़ावा देते हैं। छात्रों को ऐसे तर्क देने से रोकने के बजाय उन पर चर्चा करना आवश्यक है। परन्तु, शिक्षक की निष्पक्षता के नाम पर कक्षा में इन विचारों का सामना किए बगैर वैसे ही छोड़ देना भी गैर जिम्मेदाराना है।

हालाँकि ये सारी दलीलें इस तथ्य को नहीं नकार सकतीं कि शिक्षक स्वयं के विचार व्यक्त करके छात्रों की स्वतंत्र विचार प्रक्रिया को प्रभावित कर सकता है – छात्र अनजाने में शिक्षक के विचारों को आत्मसात कर सकते हैं या अपने विचारों को उनके अनुरूप ढाल सकते हैं, और ऐसा सिर्फ इसलिए क्योंकि शिक्षक के साथ उनके सकारात्मक रिश्ते हैं। इसके विपरीत, यह भी हो सकता है कि छात्र विरोधी विचार अपना लें क्योंकि शिक्षक के साथ उनके नकारात्मक रिश्ते हैं। इसलिए शिक्षक कक्षा में जो रुख लेते हैं उस पर फिर भी विवाद हो सकता है। अपनी कक्षा में मैंने छात्रों के साथ ईमानदारी से पेश आने का और अपनी धारणाओं और दृष्टिकोण को सामने रखने का मार्ग चुना, इस उम्मीद के साथ कि हम कक्षा में ऐसी संस्कृति विकसित कर पाएँ जिसमें छात्रों को भी स्वयं को व्यक्त करने की स्वतंत्रता मिले। मैं अब भी इस मुद्दे के बारे में सोचती हूँ– और यह भी सोचती हूँ कि मेरे रवैए से किस हद तक स्वतंत्र सोच और पूछताछ को सचमुच बढ़ावा मिला।

सन्दर्भ

1. एष्टन, ई एण्ड वॉटसन, बी (1998, पेज 88), 'वैल्यूज़ एजुकेशनः अ फ्रैश लुक एट प्रोसीजरल न्यूट्रलिटी', एजुकेशनल स्टडीज़, 24 (2), (83–193).
2. कॉटन, डी.आर.ई. (2006). टीचिंग कंट्रोवर्शियल एन्वयॉरन्मेंटल इशूज़: न्यूट्रलिटी एण्ड बैलेंसेज़ इन द रियालिटी ऑफ द क्लासरूम. एजुकेशन रिसर्च, 48 (2) 223–241
3. कैली, टी.ई. (1986). डिस्कसिंग कंट्रोवर्शियल इशूज़: फोर परस्पेक्टिवस् ऑन द टीचर्स रोल. थ्योरी एण्ड रिसर्च इन सोशल एजुकेशन, 14, 113–138
4. कैली, डी.एम. एण्ड ब्रांडेस, जी.एम. (2001). शिफ्टिंग ऑउट ऑफ न्यूट्रलः बिगिनिंग टीचर्स स्ट्रगल विद टीचिंग फॉर सोशल जस्टिस. कैनेडियन जर्नल ऑफ एजुकेशन. 26(4) 437–454
5 ऊल्टन, सी. डे वी. डिल्लन, जे. एण्ड ग्रैस, एम. (2004) कंट्रोवर्शियल इशूज़ – टीचर्स एट्टीट्यूडस एण्ड प्रैक्टिसेज़ इन द कंटेक्स्ट ऑफ सिटीज़नशिप एजुकेशन. ऑक्सफोर्ड रिव्यू ऑफ एजुकेशन, 30 (4), 489–508

मंगला नंदा *ने कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय में इतिहास का अध्ययन किया। इसके बाद उन्होंने लन्दन के एक इनर सिटी विद्यालय में इतिहास का अध्यापन किया। अब वे अज़ीम प्रेमजी फाउण्डेशन में एकेडमिक्स एण्ड पेडागोजी टीम में काम कर रही हैं। उनसे इस mangala@azimpremjifoundation.org ईमेल पर सम्पर्क किया जा सकता है।*

खण्ड - द

आकलन की भूमिका

21 समाज विज्ञान में स्कूली शिक्षा का मूल्यांकन : हमारे अनुभव, प्रयोग और सबक

रश्मि पालीवाल

सन् 1986 से 2002 तक मप्र के 8 शासकीय माध्यमिक स्कूलों में एकलव्य ने समाज विज्ञान विषय के शिक्षण को सुधारने के लिए एक प्रयोग शुरू किया। राज्य के पाठ्यक्रम को देखते हुए नई पाठ्यपुस्तकें लिखीं और शासकीय शिक्षकों की मदद से उन्हें बच्चों के बीच उपयोग करके देखा। शिक्षकों के साथ ही एक मूलभूत संवाद इस बात पर किया गया कि समाज विज्ञान का स्वरूप क्या है और इसके शिक्षण से छात्रों में किन उपलब्धियों की अपेक्षा की जानी चाहिए। इसी के आगे बढ़कर यह भी सोचना जरूरी था कि अपेक्षित उपलब्धियों का मूल्यांकन कैसे किया जाना ठीक होगा। इस लेख में हम समाज विज्ञान में स्कूली शिक्षा के मूल्यांकन को लेकर हुए अनुभवों की चर्चा करेंगे।

स्कूल में समाज विज्ञान शिक्षा के उद्देश्य

इतिहास भूगोल बड़े बेवफा रात को रटे सुबह को सफा– जिस विषय की ऐसी बदनामी हो, उसकी पढ़ाई में सुधार करने की कोशिश हमने शुरू की। वर्तमान पाठ्य पुस्तकों की समीक्षा के दौरान हमने पाया था कि इनमें जानकारी को बहुत ही सरसरी तौर पर प्रस्तुत किया जाता है। शायद इसके पीछे धारणा यह है कि बच्चों के लिए संक्षिप्त जानकारी ही उपयुक्त है, और विस्तार केवल ऊँची कक्षाओं में उचित है।

अमेरिकी विचारक, जौन डीवी इस का मुद्दे खुलासा इन शब्दों में करते हैं– *जैसे कि माना गया था कि मस्तिष्क को अनुभूतियाँ बाहरी दुनिया से सीधे सम्पर्क से मिलती हैं,उसी तरह सोचा गया कि बच्चे के मस्तिष्क को बाहरी तथ्यों के सम्पर्क में लाने से शिक्षा सम्बन्धी सभी आवश्यकताएँ पूरी हो सकती हैं। इन तथ्यों को भूगोल,अंक गणित,व्याकरण आदि लेबल लगाए गए। इस बात को नजरअन्दाज कर दिया गया कि ये सभी तथ्य अतीत के सामाजिक जीवन से लिए गए हैं .....ये सामाजिक आवश्यकताओं के जवाब का प्रतिनिधित्व करते हैं।.....इस बात को भुला दिया गया कि बच्चे के जीवन को तभी पूरी तरह सार्थक बनाया जा सकता है जब किसी बाहरी अध्ययन के तौर पर नहीं, बल्कि सामाजिक जीवन के सन्दर्भ में पढ़ाई कराई जाए। (द स्कूल एण्ड सोसायटी, आकार पब्लिसर्स ,2008, पेज 80–81)*

यह कैसे किया जा सकता है– इस विषय में डीवी अमेरिकन इतिहास के शिक्षण का एक उदाहरण पेश करते हुए लिखते हैं– *इस पद्धति में विस्तृत ब्यौरा दिया गया है। परिवेश,औजारों, पहनावे,घरेलू बर्तनों,खाने,दैनिक रहन–सहन आदि का विस्तृत ब्यौरा। ताकि बच्चा इस सामग्री का पुनर्सजन जीवन के रूप में करे न केवल ऐतिहासिक जानकारी के रूप में । इस तरह सामाजिक प्रक्रियाएँ व परिणाम वास्तविकता बन जाते हैं। इससे बच्चे की पढ़ी गई पूर्व अवधि के सामाजिक जीवन से नाटकीय व व्यक्तिगत एकात्मता स्थापित होती है। बच्चा खुद को सामना करने वाली समस्याओं की स्थिति में रखता है और उनके समाधान के तरीके खोजता है।* (वही, पेज 87)

हमारा भी मानना था कि बाहरी तथ्यों के रूप में जो बाँटा जाता है वह ज्ञान नहीं बन पाता। संक्षिप्त प्रस्तुतिकरण से बच्चे न समझ पाते हैं, न सीख पाते हैं: केवल रट पाते हैं। अगर हम यह अपेक्षा करते है कि शिक्षक छात्र को अवधारणाएँ समझाएँ तो पाठ्य पुस्तक को इसमें उनकी मदद करनी चाहिए। जब पाठ्य पुस्तकें ही सारांश के रूप में लिखी जाएँ तो उनके द्वारा अवधारणा समझकर आत्मसात करने की गुंजाइश नहीं रहती है। ऐसे में छात्रों के पास एक ही विकल्प बचता है– रट लेना या फिर और भी सरल कुंजियों की तलाश करना।

हमने स्कूली समाज विज्ञान के प्रमुख उद्देश्य ऐसे प्रस्तुत किए..

इतिहास

1. सामाजिक प्रक्रियाओं में निरन्तरता और बदलाव की खोज करना। समय के साथ क्या बदलाव हुए और कौन–सी बातें वैसी ही बनी रहीं – यह पहचानना।
2. समाज की अलग–अलग प्रक्रियाओं का एक–दूसरे से सम्बन्ध खोजना, उनके कारण खोजना।
3. आज के हमारे जीवन पर बीते हुए समय की प्रक्रियाओं की छाप व असर पहचानना।
4. समाज में व्यक्ति की भूमिका को उसके समय की सम्पूर्ण परिस्थिति के सन्दर्भ में समझना।
5. यह समझना कि बीते समय की जानकारी किस तरह के स्रोतों से, किन तरीकों से प्राप्त की जाती है।
6. बीते समय की बातों के बारे में अपना सन्तुलित मत बनाना।

नागरिक शास्त्र

1. बच्चों में शासन–प्रशासन और अर्थव्यवस्था के ढाँचों की कुछ

मूलभूत अवधारणाओं की समझ विकसित करना।

2. ये ढाँचे कैसे काम करते हैं – इसकी ठोस छवि बनाना।
3. इनके नियमों की अपने आसपास की वास्तविकता के साथ तुलना करते हुए उनके काम करने की खूबियों व कमियों को पहचानना।
4. इनके काम करने के ढंग पर किन बातों का प्रभाव पड़ता है और वे किन बातों को प्रभावित करते हैं – यह समझ बनाना।
5. शासन की आर्थिक नीतियों की पृष्ठभूमि और उनका असर व विकल्प समझना।
6. नागरिक की सक्रिय व प्रबुद्ध भूमिका के प्रति सचेत होना।

भूगोल

1. दुनिया के अलग–अलग क्षेत्रों के लोगों के जीवन के बारे में ठोस छवियों को बनाना।
2. धरती पर मनुष्य और प्रकृति के सम्बन्धों को समझना व अलग –अलग क्षेत्रों में पाई जाने वाली भिन्नताओं के कारणों को समझना।
3. प्रादेशिक भूगोल के ठोस सन्दर्भों से भौतिक भूगोल के बुनियादी तत्वों को जानना।
4. स्थानीय भूगोल के पहलुओं की जाँच–पड़ताल करना।
5. समय के साथ मानव व प्रकृति के अन्तर्सम्बन्धों में आने वाले बदलावों को समझना।
6. अवलोकन व अध्ययन की भौगोलिक पद्धतियों को विकसित करना जैसे मानचित्र बनाना व उपयोग करना, रेखाचित्र, चित्र, छायाचित्र, तालिकाओं का उपयोग आदि।

किताब का स्वरूप

इन उद्देश्यों को लेकर लिखी जाने वाली पुस्तक कैसी होनी चाहिए और उसमें किन–किन बातों का ध्यान रखा जाना चाहिए? पाठ्यक्रम का चुनाव करने में इतिहास–भूगोल आदि में ''इतना–इतना तो पढ़ाना ही है''– ऐसी किसी बाध्यता को मानने की बजाए समाज के बारे में सार्थक सोच समझ को बढ़ावा देने के उद्देश्य से विषयों का चयन किया गया। हमने कोशिश की कि यथासम्भव आम बोलचाल की भाषा में ही पाठ हों। बच्चे आम तौर से अमूर्त पारिभाषिक चिन्तन नहीं कर पाते हैं – वे स्थिति विशेष के सापेक्ष ही चिन्तन करते हैं। इस कारण अवधारणाओं को उभारने के लिए ठोस स्थितियों का विस्तृत विवरण जरूरी था। उदाहरण के लिए हमने अलग–अलग तरह के औद्योगिक संगठनों के बारे में बताया – कुटीर उद्योग, दादन प्रथा, छोटा कारखाना आदि। इसे हम परिभाषाओं के द्वारा भी बता सकते हैं कि 'फलां–फलां क्रिया को कुटीर उद्योग कहते हैं' लेकिन हमने ऐसा न करके हरेक का एक उदाहरण लेकर, उसकी पूरी प्रक्रिया का विस्तार से वर्णन किया है। फिर इनकी आपसी तुलना के द्वारा सामान्य निष्कर्ष और अवधारणाओं को उभारा है। हमने कहानियों का विशेष उपयोग किया है – इतिहास, भूगोल और नागरिक शास्त्र तीनों में। कहानियाँ बच्चों के लिए आकर्षक हैं और इनसे पाठ्य पुस्तक की सरलता बढ़ती है। लेकिन इनका एक शैक्षणिक मकसद भी है। कहानियों से किसी भी चीज की एक ठोस छवि बनती है, जिससे सामान्य बातों को उभारना आसान हो जाता है। पर बच्चे कहानी में ही न खो जाएँ, बल्कि उसमें निहित सामान्य बातों को पकड़ पाएँ इसके लिए हमने कहानी के प्रवाह को बीच–बीच में रोक कर सामान्य बातों पर ध्यान खींचा है, प्रश्न पूछकर बच्चों को सोचने के लिए प्रेरित किया है। हमारा अनुभव रहा है कि यह तरीका काफी कारगर है और बच्चों और शिक्षकों से उत्साहजनक प्रतिक्रिया मिली है। हमने पुस्तक में चित्रों–मानचित्रों का सार्थक उपयोग करने की कोशिश की है। इसके लिए पाठ के बीच में उनसे सम्बन्धित प्रश्न पूछकर उनका विशेष अध्ययन भी करवाया है।

सामाजिक अध्ययन में गतिविधि क्या हो?

शिक्षा शास्त्र में यह एक सर्वमान्य सिद्धान्त है कि अवधारणाओं को सिखाने के लिए गतिविधि एक प्रमुख साधन है। हमने काफी प्रयत्नों के बाद, सामाजिक अध्ययन में तीन मुख्य गतिविधियों को पहचाना जो सहज रूप से कक्षा में करवाई जा सकती हैं –

1. बीच–बीच में प्रश्न :

आमतौर पर कक्षा में 'तू–पढ़' पद्धति से काम किया जाता है। हमने पाठों के बीच–बीच में प्रश्न डाले हैं – पाठ्य पुस्तक में बीच–बीच में आने वाले ये प्रश्न कई तरह के हैं । काफी सारे तो केवल 'कॉम्प्रिहेंशन' के हैं व कठिन शब्द व भाषा के अर्थ से सम्बन्धित हैं। कुछ प्रश्न चित्रों, नक्शों व तालिकाओं से जानकारी हासिल करने के हैं। और कई सारे अवधारणात्मक प्रश्न हैं जिनमें बच्चों को चर्चा करके उत्तर खोजना है। कई प्रश्न तुलना के हैं–दो अलग–अलग समय के बीच तुलना करके बदलाव को पहचानना या अलग–अलग स्थितियों में फर्क पहचानना। पाठ के बीच–बीच में आए इन प्रश्नों को हल करते हुए बच्चे सामग्री पर गौर करते हैं और ग्रहण भी करते हैं। शिक्षक और छात्रों के बीच चर्चा हो पाती है।

2. बच्चों के अनुभव व जानकारी का उपयोग :

10–15 साल के बच्चों के पास अपने समाज के अवलोकन से प्राप्त ज्ञान और समझ का बड़ा भण्डार रहता है। आमतौर पर सामाजिक

अध्ययन के शिक्षण में इस भण्डार का कोई उपयोग नहीं होता है। मगर उसका उपयोग शिक्षण की एक बहुत ही कारगर विधि बन सकता है। हमारी पुस्तकों में बीच–बीच के सवालों में कई ऐसे हैं जो बच्चों की जानकारी व अनुभवों को उभारते हैं व पाठ की विषय वस्तु से जोड़ते हैं।

3. पुस्तक के उपयोग का अभ्यास :

सामाजिक अध्ययन में लिखित माध्यम से समझने और अभिव्यक्त करने की कुशलता का महत्व सर्वोपरि है। क्योंकि दूसरे समाजों,समयों,स्थानों,संगठनों,संस्कृतियों का अनुभव सिर्फ प्रत्यक्ष तौर पर हासिल नहीं किया जा सकता। इसे सुन–समझकर और पढ़ समझकर हासिल करना होता है। अतः पठन सामग्री की मुख्य बातें बताना, संक्षेप में कहना, पढ़े हुए अंश का विषय समझना, अपने शब्दों में वही बात कहना, किसी विषय से सम्बन्धित जानकारी पाठ के किस उपशीर्षक के तहत मिलेगी यह समझना – ऐसी कुशलताएँ हैं जिनके अभ्यास से ही छात्रों को सामाजिक अध्ययन में सक्षम बनाया जा सकता है। हमने पाठों में इन कुशलताओं का अभ्यास करवाने की कोशिश की है।

परीक्षा में भी इन कुशलताओं को विशेष महत्व दिया है। इसी परिप्रेक्ष्य में हमने खुली पुस्तक परीक्षा को अपनाया क्योंकि हम छात्रों की रटने की क्षमता के बजाय सोचने, समझने और किताब का बुद्धिमत्ता से उपयोग कर पाने की क्षमता के मूल्यांकन को सबसे अधिक महत्व देना चाहते थे।

छात्रों का मूल्यांकन–खुली पुस्तक मूल्यांकन विधि

सामाजिक अध्ययन में मूल्यांकन की यह विधि महत्वपूर्ण है क्योंकि इस बात का मूल्यांकन करना निरर्थक है कि बच्चों को विषय की कितनी जानकारियाँ कंठस्थ हैं। जानकारियों का कोई अन्त नहीं है। किसी भी पाठ्यक्रम में सारी जानकारी नहीं दी जा सकती और बहुत सारी जानकारी याद रखना सम्भव भी नहीं। कुछ समय के लिए याद रख भी लिया जाए तो यह निश्चित है कि कुछ समय बाद वो जानकारियाँ भुला दी जाएँगी। तो क्या जानकारियों के भूल जाने पर शिक्षा की कोई छाप व्यक्ति के व्यक्तित्व में नहीं रहेगी? क्या शिक्षा से ऐसी सोच, समझ और कुशलता हमारे साथ नहीं रहनी चाहिए, जो आजीवन काम आए, जो नई–नई परिस्थितियों,नई–नई पुस्तकों व सामग्रियों, नई–नई समस्याओं के बीच हमारे काम आए?

शिक्षिका और मनोवैज्ञानिक कमला मुकुन्दा, अपनी पुस्तक,व्हाट डिड यू आस्क ऐट स्कूल टुडे (2009,पेज 68) में अमेरिका में किए गए एक रोचक अध्ययन का उल्लेख करती हैं। हैरी बाहरिक और उनके साथियों ने यह जानने की कोशिश की कि हाईस्कूल में पढ़ी गई कौन–सी बातें 50 साल के बाद भी लोगों को याद रहती हैं। उन्होंने पाया कि जो बातें एक लम्बी अवधि के दौरान सीखी गईं तथा बार–बार उपयोग में आती रहीं, वे 50 साल बाद भी याद रहीं। वहीं, छोटी अवधि में, संक्षेप में सीखी गई बातें, जिनका बाद में ज्यादा उपयोग भी न हुआ हो, भुला दी गईं। कमला मुकुन्दा इस ओर हमारा ध्यान दिलाती हैं कि हम स्कूल में पढ़ना, लिखना, समझना, हिसाब लगाना, समस्या का समाधान करना, विश्लेषण करना, निष्कर्ष निकालना सीखते हैं तो इन कुशलताओं को जीवन पर्यन्त नहीं भूलते–बशर्ते कि स्कूल में इन पर ध्यान दिया जाए।

हमने पुस्तक के उपयोग को, सोचने, समझने व अभिव्यक्त करने की कुशलता को मूल्यांकन के लायक माना और परीक्षा में पुस्तक की छूट दी। ये सामान्य कुशलताएँ हैं – पर ये कुशलताएँ सामाजिक अध्ययन के लिए भी महत्वपूर्ण हैं। इनके अलावा विभिन्न समयों या स्थानों के बीच तुलना करना, कारण समझाना, स्थितियों व प्रक्रियाओं का विस्तृत वर्णन करना या सार व्यक्त करना, विश्लेषण करना आदि – विशिष्ट रूप से सामाजिक अध्ययन के मूल्यांकन के बिन्दु हैं। इस तरह मूल्यांकन की दिशा बदलने से हम बच्चों के ऊपर से रटने, भूलने और परीक्षा देने के आतंक को भी खत्म करना चाहते थे। व्यावहारिक तौर पर इसका एक लाभ यह भी हुआ कि नक्शों, चित्रों, रेखाचित्रों आदि पर जो सवाल बनाए गए उनके लिए नक्शों आदि को प्रश्नपत्र में छाप देने की जरूरत नहीं रही–किताब में दिए नक्शों आदि पर ही नए सवाल परीक्षा में पूछे जा सकते थे।

छात्रों का मूल्यांकन करने के लिए निम्न मुद्दों पर प्रश्न बनाए जाते थे–

1. पुस्तक से आवश्यक जानकारी ढूँढ पाने की क्षमता।
2. प्रश्न का उद्देश्य समझ कर सटीक उत्तर लिख पाने की क्षमता।
.3. किसी मुद्दे पर पाठों में की गई चर्चा का सार व्यक्त कर पाने की क्षमता।
4. पाठ में चर्चित मुद्दों के आधार पर किसी नई जानकारी या परिस्थिति से सम्बन्धित खुला विश्लेषण कर पाने की क्षमता।
5. नक्शों, चित्रों, तालिकाओं व रेखाचित्रों के आधार पर जानकारी हासिल करने की क्षमता।
6. अलग–अलग स्थितियों के बीच तुलना करने की क्षमता।
7. किसी परिस्थिति का कारण समझा पाने की क्षमता।

प्रश्नों के प्रकार क्या थे?

1. वस्तुनिष्ठ प्रश्न–जैसे एक शब्द या वाक्य में उत्तर दो, खाली स्थान भरो। वस्तुनिष्ठ प्रश्नों पर 100 में से 16 अंक रखे जाते थे।

2. ऐसे प्रश्न जिनका उत्तर पुस्तक के एक अंश में पूरी तरह मिल जाएगा। ऐसे सटीक प्रश्नों पर 100 में से 30 अंक रखे जाते थे।
3. ऐसे प्रश्न जिनका उत्तर पाठ या पुस्तक के एक से अधिक अंश में से निकालना होगा या ऐसे प्रश्न जिनका उत्तर पाठ में कहीं लिखा नहीं मिलेगा, पर चित्र, नक्शा आदि की सहायता से या अपने तर्क, अनुमान, कल्पना, जानकारी व अनुभव की सहायता से देना होगा। सार, तुलना, विश्लेषण, तर्क, नक्शा, चित्र, तालिका, अनुमान आदि कुशलताओं पर आधारित प्रश्नों पर 100 में से 54 अंक रखे जाते थे।

मूल्यांकन की नीति : कुछ बातें

1. पुस्तक में दिए गए प्रश्न परीक्षा में एक से अधिक संख्या में नहीं रखे जाते थे हर बार नए प्रश्न बनाने का प्रयास होता था।
2. जो छात्र अपने शब्दों में उत्तर दे, चाहे भाषा टूटी फूटी क्यों न हो, उसे अतिरिक्त अंक दिए जाते थे।
3. पुस्तक से उतारे गए सही उत्तर में यदि पुस्तक के अंश की आगे–पीछे की अनावश्यक बातें भी उतारी हों तो अंक काटे जाते थे।

प्रश्नों के नमूने

1. वस्तुनिष्ठ प्रश्न

नीचे दिए केवल गलत वाक्यों को सुधार कर लिखो:

1. बचत खाते में जमा पैसों पर बैंक ब्याज नहीं देते हैं।
2. क्रॉस चेक देने पर बैंक ब्याज नहीं देते हैं।
3. बचत खाते से रोजाना पैसे निकाले जा सकते हैं।
4. बैंक से केवल बड़े कारखानों के मालिक ही ऋण ले सकते हैं।
5. मियादी खाते में ज्यादा ब्याज मिलता है।

खाली स्थान भरो:

1. ———— को अपने साथ करने के लिए अकबर ने ————में यात्रा कर और 1564 में ———— हटाया।
2. अकबर के शासन की शुरुआत में उसके राज्य में केवल———— और ———————— अमीर थे।
3. 1580 के बाद अकबर ने ———— की नीति अपनाई।
4. मुगल मनसबदारों की नियुक्ति ———— करता था।
5. औरंगजेब के शासनकाल में अमीरों को देने के लिए ———— की कमी पड़ने लगी।
6. शिवाजी ने ———— राज्य के लोगों से ————नामक लगान वसूल किया।

2. सटीक (उत्तर वाले) प्रश्न

1. इंग्लैण्ड में जब पहले संसद बनी तो कौन–कौन लोग वोट डाल सकते थे और कौन नहीं।
2. अंग्रेज काल में वन विभाग ने जंगल बचाने के लिए लोगों पर क्या–क्या रोक लगाई?

3. सार,तुलना,तर्क,अनुमान,चित्र,नक्शा आदि पर प्रश्न

1. भारत में आज वोट डालने के नियमों और इंग्लैण्ड की पहली संसद के नियमों में क्या अन्तर है?
2. भारत के कानून कौन बनाता है? कानून किस प्रकार बनते हैं? वर्णन करो।
3. पृष्ठ 101 पर बने चित्र का वर्णन करो। चित्र में क्या–क्या दिख रहा है? ये चीजें कहाँ से ले जाई जा रही हैं? इस चित्र में जो लोग दिख रहे हैं, वे कौन हैं? क्या कह रहे हैं? क्या वे एक दूसरे की बात मान रहे हैं?
4. अमेरिका के आदिवासी और यूरोपीय दोनों ही बाइसनों का शिकार करते थे, किन्तु उनके द्वारा बाइसन के उपयोग में बहुत अन्तर था। यह अन्तर क्या था, समझाओ।
5. पुस्तक के पृष्ठ 220 का मानचित्र देखकर इन प्रश्नों के उत्तर लिखो–

   क. कोलम्बिया नदी किस दिशा में बहती है, किस सागर में गिरती है?

   ख. मेकेंजी नदी किस दिशा में बहती है, किस सागर में गिरती है?

   ग. कौन–सी नदी भूमध्यरेखा से ज्यादा दूर है– मेकेंजी या रेड नदी?

   घ. जाड़े के मौसम में किस नदी का पानी बर्फ बन जाता होगा– मैकेंजी का या रेड का?

   ड. इनमें से कौन–सी जगह समुद्र किनारे हैं– डेन्वर, विन्निपेग, नारफोक, सेन फ्रानसिस्को?
6. यहाँ तीन जगहों का जाड़े और गर्मी का तापमान दिया गया है। हर जगह के बारे में कारण सहित समझाओ कि वहाँ की जलवायु को तुम सम जलवायु कहोगे या विषम?

जगह	जनवरी का तापमान	मई का तापमान
क	15	30
ख	25	30
ग	26	28

7. अमेरिका के फार्मों के मालिक सैकड़ों एकड़ में एक ही फसल बोते हैं।

क. यह बात पृष्ठ 247 के चित्र में किस तरह दिखाई दे रही है?

ख. सैंकड़ों एकड़ में एक ही फसल बोने में क्या फायदा है?

शिक्षक प्रशिक्षण

आठ शासकीय शालाओं में 16 शिक्षकों के साथ हर साल ये प्रश्नपत्र बनाए जाते थे। परीक्षा हो जाने के बाद दुबारा शिक्षकों के साथ मिला जाता और बच्चों की उत्तर पुस्तिकाओं को पढ़कर समझा जाता कि मूल्यांकन करने का हमारा प्रयास कितना सार्थक हो पाया है। प्रश्नपत्र की समीक्षा करने के बाद मूल्यांकन के मापदण्ड बनाए जाते और कॉपियाँ जाँची जातीं। साल में दो बार होने वाली इन कवायदों में हमने मूल्यांकन के उद्देश्यों और तौर–तरीकों पर अपनी समझ का विकास किया।

पुस्तक के उपयोग की कुशलता और उसका ज्ञान

हमने देखा कि बच्चों ने किताब के इस्तेमाल के लिए तरह–तरह की कोशिशें कीं। कुछ बच्चे प्रश्न के उत्तर को अपने मन में बनी समझ के आधार पर अपने शब्दों में लिख देते, कुछ बच्चे यह न करके किताब में ही उत्तर खोजने की कोशिश करते। यह देखकर हमें बहुत अफसोस होता कि बच्चे किताब सामने होने के बावजूद, सोच–समझकर नहीं पर एक बेतरतीब ढंग से किताब को उलटते–पुलटते हुए कई मिनटों तक बैठे हैं। किताब में खोजने में भी बच्चों की कुशलताएँ अलग–अलग थीं। कुछ बच्चे साफ तौर पर उस अंश को ही किताब में से उतारते जो उत्तर के लिए उपयुक्त था, कई बच्चे उपयुक्त अंश को अधूरा उतारते, अन्य कई बच्चे उपयुक्त अंश के अलावा आगे या पीछे के भी कई वाक्य उतारकर लिख देते और बहुत से बच्चे तो किताब में उपयुक्त अंश तक पहुँच भी नहीं पाते व कोई भी असम्बद्ध अंश उतारकर लिख देते थे।

हमने शिक्षकों के साथ बच्चों के उत्तरों का अध्ययन किया–ताकि हम जान पाएँ कि बच्चे किस प्रकार सोच रहे थे और हम उन्हें दिशा देने के लिए क्या करें। यह बात अपने आप में मूलभूत महत्व रखती है– कि हमारे लिए मूल्यांकन का उद्देश्य बच्चों की जानकारी व समझ को अंक देना होने के अलावा यह ज्यादा था कि उनके बारे में हमारी जानकारी व समझ बढ़ पाए। खुली पुस्तक प्रणाली के अनुभवों का अध्ययन करके शिक्षक इस बात का विशेष प्रयास करने लगे कि वे बच्चों को पाठ की मुख्य बातों का ध्यान दिलाएँ, मुख्य अंशों की व उनको दर्शाने वाले उपशीर्षकों की पहचान करवाएँ,समझकर पढ़ने व सोचकर अपने शब्दों में लिखने के लिए प्रोत्साहित करें। बच्चों को इस ओर भी सचेत करने की जरूरत थी कि वे पाठ्य सामग्री का अध्ययन करके परीक्षा दें–यह न सोचते रहें कि किताब तो होगी–परीक्षा कक्ष में ही उत्तर खोज लेंगे।

हमने भी इस उद्देश्य से कुछ विशेष प्रयास किए–जैसे एक वर्कबुक और प्रश्न बैंक बनाने की कोशिश की। वर्कबुक में बच्चों को एक प्रश्न के बच्चों द्वारा ही लिखे गए कई उत्तर दिए और उनकी समीक्षा करने का तरीका बताया। बच्चों से कहा कि वे उन उत्तरों को जाँच कर 10 में से कितने अंक देंगे, व क्यों यह लिखें।

इस तरह किताब को कंठस्थ करने (कुछ समय के लिए) की बजाय किताब को जानकारी के स्रोत के रूप में इस्तेमाल करना सिखाने के लिए शिक्षक व हम प्रतिबद्ध थे और अपनी तरह से कोशिशें करते रहे। बच्चों के लिए काम आसान व सीखना निरर्थक बनाने के बजाय खुली पुस्तक प्रणाली ने बच्चों व शिक्षकों को महत्वपूर्ण नई कुशलताएँ सीखने–सिखाने का मौका दिया। परन्तु क्या बच्चों को समाज विज्ञान के ज्ञान के विकास का अवसर भी मिलता था, हम कुछ विस्तार में इस मुद्दे को आगे समझेंगे।

समाज विज्ञान का नजरिया और उसका ज्ञान

जैसा हमने आरम्भ में प्रस्तुत किया,इतिहास या भूगोल के नजरिए का ज्ञान बच्चे विकसित कर रहे हैं, हम इसका मूल्यांकन करना चाहते थे। इस ज्ञान के क्या लक्षण हो सकते थे। उदाहरण के लिए दो अलग समयों या स्थानों की परिस्थितियों के अन्तर के बारे में विचार करना व उस विचार को व्यक्त कर पाना इस ज्ञान के निमार्ण का एक लक्षण माना जा सकता है।

हम यहाँ दो प्रश्नों के उदाहरण से देखेंगे कि बच्चों में यह ज्ञान कैसे परिलक्षित होता है?

प्रश्न 1: अंग्रेजों से पहले लोग जंगल का उपयोग कैसे करते थे। और अंग्रेजों के शासन में लोग जंगल का उपयोग कैसे करते थे? तुलना करो और अपने शब्दों में लिखो।

उत्तर 1: अंग्रेजों ने पहले जंगल का उपयोग आदिमियो से करवाता था और फिर उन्होंने खेती भी और वे अंग्रेजों आदमियों को मारते और व्यापारियों को खुश कर देते थे। यहां से दूर गाँव में लगान लेने के लिए भेजा जाता था।

(छात्र के अपने वाक्य,छवियाँ व निष्कर्ष हैं।)

उत्तर 2: अंग्रेजों से पहले लोग जंगल का उपयोग बड़े अच्छे ढंग से करते थे। पूरे पेड़ को नही काटा जाता था। पेड़ से सारी पत्तियों नहीं ली जाती थी। और पत्ते की कटाई अंधाधुंद नही की जाती थी वन सुरक्षित थे अंग्रेजों के समय रेल की शिल्पर के लिए बहुत अधिक पेड़ कटे। इस प्रकार आदिवासी जंगल में लकड़ी न लाकर जड़ी–बूटियां वाला फूल आदि लाते थे और अंग्रेजों ने वन ही समाप्त कर दिए।

(छात्र के अपने वाक्य,छवियाँ व निष्कर्ष हैं।)

उत्तर 3: अंग्रेजों से पहले

केवल गाँव या जंगल के पास के लोग

कंद मूल फल और जड़ी–बूटी और जानवर चराने के लिए अपनी जरूरतों के लिए लकड़ी व्यापार और

विकास की कटाई के लिए

अंग्रेजों के समय

शहरों में मकान बनाना

रेल लाईन बिछाना

दवाईयों का निर्माण कर लाभ कमाना

(छात्र के अपने वाक्य, व बिन्दुवार प्रस्तुति।)

चौथा 4: अंग्रजों से पहले वे एक तरह से जंगल के मालिक थे वे शिकार करते थे, कंद फल–फूल, जड़ी–बूटियाँ बटोरते थे, अपने ढोर चराते थे। कही–कही तो जंगल जलाकर खेती भी करते थे। वे अपने घर से दूसरी चीजें बनाने के लिए जंगल से लकड़ी काट लाते थे। अंग्रेजों के समय में जंगल की लकड़ी का व्यापार होने लगा। उस समय कलकत्ता, बंबई जैसे बड़े–बड़े शहर बस रहे थे एवं बड़ी–बड़ी रेल लाईन बिछा रही थी बड़े–बड़े जहाज बन रहे थे और खदानें खुल रही थी। इन सबको लिए लकड़ी जरूरी थी। इसलिए अंग्रेजों ने जंगल नष्ट कर डाले।

(किताब से सोच–समझकर चुने गए वाक्यों को समेटकर लिख गया उत्तर)

उत्तर 5: अंग्रेजों से पहले लोग जंगल का उपयोग बहुत सरलता से करते थे और अंग्रेजों के शासन में जंगल का उपयोग बहुत कठिनाई से करते थे। और अंग्रेजों किसानों पर बहुत जुल्म करते थे और अंग्रेजों के शासन में जंगल का उपयोग पूरी तरह से नहीं कर सकते हैं। यही तुलना अंग्रेजों से पहले के लोग की और अंग्रेजों के शासन की तुलना हमने अपने शब्दों में लिखा है।

(छात्र के अपने वाक्य,छवियाँ व निष्कर्ष)

उत्तर 6: अंग्रेजों से पहले लोग जंगल का उपयोग खुल्ले आम करते थे। वहाँ से फल लकड़ी खेती करना ये सब अपने मन से करते तथा अंग्रेजों के शासन में वे उसका उपयोग खुल्ले में नहीं कर पाते अगर वे लकड़ी लेने जाते थे तो उनको अंग्रेजों के आदमी रोकते और जंगल में लकड़ी काटने से मना कर दिया और वे खेती जो कहीं भी करते थे अगर वे खेती अंग्रेज बाँट कर देते और वहीं की जमीन उनके नाम लिख दी और यदी अगर वे फिर कहीं दूसरी जगह पर खेती करते तो वह उन्हें पकड़ ले जाते और उन्हें बन्द कर देते थे।

(छात्र के अपने वाक्य,छवियाँ व निष्कर्ष–पाठ में दी कहानी से निकाला गया विस्तृत सामान्य निष्कर्ष।)

अब देखते हैं एक और प्रश्न जिसके उत्तर की सीधे तौर पर कोई चर्चा किताब में लिखी हुई नहीं ।

प्रश्न 2: पूर्वी हिमालय की झूम खेती और अमेरिका के ग्रेट प्लेंस की खेती में क्या–क्या अन्तर है?

उत्तर 1: पूर्वी हिमालय कि झूम खेती और ग्रेट प्लेंस की खेती मे यह अन्तर है की झूम लोग पहले खेत में उगे पेड़ काटते हैं। फिर इस प्रदेश में कोई मजदूरी नही करता। हलकी वर्षा होते ही पुरूष महिला मिलकर ही करिणे में बीज ले कर कुदाले से मिट्टी में थोड़े से छेद बनाकर बीज डालकर मिट्टी दबा देते है। झूम खेतों में परिवार के उपयोग कि सारी फसलें एक ही खेत में बो दी जाती है ग्रेट प्लेंस में खेत में पेड़ नही हैं खेत मैदान जैसे हैं। ग्रेट प्लेंस में सारा काम मशीनों से होता है ग्रेट प्लेंस में मिलों तक एक ही फसल बोई जाती है।

(छात्र के अपने वाक्य,छवियाँ व निष्कर्ष)

उत्तर 2: पूर्वी हिमालय कि झूम खेती और ग्रेट प्लेंस खेती में यह अन्तर है कि पूर्वी हिमालय की झूम खेती लेकिन इस महीने में बारिश बहुत कम होती है। इन महीनों में यहाँ पर पानी की समस्या पैदा हो जाती है। बरसात का पानी गहरी घाटी में उतर कर वहाँ बहने वाली नदियों से लाना पड़ता है। और अमेरिका के ग्रेट प्लेंस की खेती में ग्रेट प्लेंस में चर रहे जानवर खेतों में घुसकर फसल बर्बाद कर देते है। खेतों को बचाने के लिए बाड़ा

बनाना जरूरी था। लेकिन बाग किससे बनाएं ग्रेट प्लेंस मे बड़े–बड़े जोत वाले किसान बने। आजकल यहाँ एक किसानों के पास 500–600 एकड़ जमीन होना आम बात है। यह अन्तर है।

(किताबों से उठाए गए असम्बद्ध वाक्यों से बना उत्तर)

उत्तर 3: पूर्वी हिमालय की झूम की खेती– अब झूम की खेती के लिए पर्याप्त जंगल नहीं हैं। कई लोगों का यह कहना है झूम कि खेती के कारण जंगल नष्ट हो रहे हैं। और यहाँ के लोग ढलानों पर सीढ़ीनुमा खेत बना रहे हैं। ग्रेट प्लेंस में विशेष रूप से गेहूँ उगाया जाता है। वह ठण्ड आने को होती है और वहाँ बसन्त ऋतु में गेहूँ बोया जाता है। झूम के खेत में इधर से उधर खेत बनाया जाता है। ग्रेट प्लेंस के खेत में अस्थाई रूप से खेत की जाती है। इससे ज्यादा जंगल नष्ट नहीं हो रहे हैं।

(किताबों से उठाए गए असम्बद्ध वाक्यों से बना उत्तर)

उत्तर 4: झूम की खेती के लिए पर्याप्त जंगल नहीं हैं हरेक साल एक खेत को परती अब सिर्फ चार या पांच साल छोड़ पा रहे हैं। इस वजह से अब जमीन पर पेड़ बढ़ नहीं पाते और जंगल खराब होने लगे। तीन चार साल मे उस जमीन पर जिस से झूम की होती एक ही खेत में बोयी जाती है एक ही खेत में धान, मूली ज्वार तिल सेम बाजी तम्बाकू कपास कंद आदि मिला जुलकर बोया जाता है पकने पर काट लिया जाता है।

ग्रेटप्लेंस में विशेष रूप से गेहूँ उगाया जाता हे वहां मिलो धन गेहू के खेत देखे जा सकते है ग्रेटप्लेंस में दो तरह के गेहूँ उगाए जाते है शीत ऋतु का गेहूँ और बसन्त ऋतु के अलावा ग्रेटप्लेंस में सोयाबीन व कुछ कपास भी उगाया जाता है।

(शुरू के वाक्य असम्बद्ध हैं पर बाद के वाक्य सोच समझकर किताब से चुने गए हैं ताकि फसलों में अन्तर बता सके।)

उत्तर 5 : पूर्वी हिमालय में झूम खेती पेड़ काट कर पड़े रहने देते हैं ताकि वे सूख जाएँ और जब वे सूख जाते है तो उन्हें जला देते हैं जलाने के बाद जमीन पर राख ही राख बिछ जाती है नीचे से अधजले पेड़ ठूठ लहराते हैं एकाध बारिश के बाद राख मिट्टी में घुल जाती है। इस तरह झूम खेत तैयार हो जाता है जबकि अमेरिका के ग्रेट प्लेंस में खेती इस तरह नहीं कि जाती है वहां कटीले तारों का बड़ा बनाया जाता है फिर खेतों को बखराया जाता है फिर उनसे बीज बोये जाते हैं और समय–समय पर सिंचाई कि जाती है और वहाँ मशीनों के द्वारा काटी जाती है जबकि झूम खेती में ऐसा नही होता है वहाँ फसल की कटाई हाथों के द्वारा की जाती है। वहाँ पानी सिर्फ बारिश में दिया जाता तथा अमेरिका के ग्रेट प्लेंस में ऐसा नही होता है वहाँ समय समय पर पानी दिया जाता है।

(छात्र के अपने वाक्य,छवियाँ व निष्कर्ष)

इन प्रश्नों के उत्तर किताब में एक साथ नहीं मिलते। बच्चों को स्वयं जमीन या जंगल के दो सर्वथा भिन्न उपयोगों की धारणा बनानी व लिखनी होती है। किताब से वे उत्तर के एक पक्ष की जानकारी उतार सकते हैं पर दूसरे पक्ष से उसे जोड़कर प्रस्तुत उन्हें स्वयं करना होगा। उपरोक्त काम कर पाना बच्चों को समय व स्थान के अन्तर के ज्ञान को बनाने का मौका देता था– पर इस में जो ज्ञान निहित है,क्या उसी तक ज्ञान की परिभाषा जाती है। ज्ञान सिर्फ किसी क्रिया को कर सकना नहीं माना जाता, अपितु, किसी संस्कृति में सत्य का दावा करने वाली बातों को जानना व उन्हें अपने पूर्वज्ञान से जोड़कर उस समझ को संशोधित करना भी ज्ञान का अर्जन है। हमने ऊपर दिए उदाहरणों में कई बच्चों को अपने मन में निर्मित छवियों, साराशों, निष्कर्षों को अपने वाक्यों में प्रस्तुत करते पाया।

आप देखेंगे कि बच्चों ने यह काम अपनी अपनी तरह से किया है–उनकी प्रस्तुति में विविधता है जो उनके निजी संघर्ष की द्योतक है। किताब से ढूँढने की सुविधा उनका सहयोग करती है पर उनका काम सम्पन्न नहीं करती। दूसरी ओर बच्चों के लिए एक सही उत्तर याद रखने की अपेक्षा की बजाय अपने हिसाब से सही उत्तर सोचने, ढूंढने, लिखने की अपेक्षा तभी एक सच बन सकती है जब हम ज्ञान को संकलन की वस्तु न मानकर निमार्ण की वस्तु मानें–जिसे हर बच्चा स्वयं करता है।

यह मुद्दा शिक्षकों को परेशान करता रहता कि ज्ञान तो वह जो याद रहे–मौका आने पर तुरन्त मस्तिष्क में वह बात कौंध जाए–मौके पर व्यक्ति किताब को कहाँ ढूँढता फिरेगा। यह बात जब तब कोई कह देता और तब यह विचार करने लगते कि कौन–सी बातें हमें कब याद रहती हैं, और कौन–सी बातों को हम भूल जाते हैं। इस तरह पाठ्यक्रम व पाठ्यवस्तु हमारे लिए पत्थर की लकीर न रहकर विवेचना का विषय बन गई। यह चिन्ता का विषय था कि क्या बच्चे अपने मन में कुछ ज्ञान निर्मित कर रहे हैं या

मुख्य रूप से किताब से उचित अंश खोजने व लिखने की कुशलता हासिल कर रहे हैं।

इसका कुछ उत्तर हमें एक और छोटे से अध्ययन से मिला जिसे एक स्कूल में कक्षा 6,7 व 8 के बच्चों के साथ किया गया।

एक स्कूल में हमने इन बच्चों को एक प्रश्नपत्र दिया और कहा कि इसका उत्तर किताब के बिना देना है। जो याद है, जो समझे हो,लिख दो। एक सप्ताह बाद वही प्रश्नपत्र उन्हीं बच्चों को फिर दिया और कहा कि इसे हल करने में वे किताब का उपयोग कर सकते हैं। इन दोनों प्रकार के उत्तरों की तुलना करने पर यह सामने आया कि खुली पुस्तक परीक्षा में ज्यादा बच्चे सफल हुए थे। दूसरी बात यह कि बच्चे ऐसे प्रश्नों के उत्तर लिखने में दोनों बार ज्यादा असफल रहे जो उन पाठों से थे जिनमें विस्तार व उदाहरण,कहानी आदि नहीं थीं–यानी जो संक्षिप्त व गूढ़ शैली में लिखे हुए थे।

इससे यह इंगित हो रहा था कि संक्षिप्त व गूढ़ पाठों की बातें याद नहीं रहतीं–और, किताब में सामने उपलब्ध होने पर भी उन्हें ढूँढना व समझना मुश्किल होता है। इसका उल्टा असर उन पाठों का दिखाई दिया जो ज्यादा प्रभावपूर्ण शैली में लिखे गए थे–उनसे सम्बन्धित प्रश्नों के उत्तर ज्यादा बच्चों ने अपनी समझ के आधार पर, अपने शब्दों में दिए और पुस्तक के होते हुए भी उसमें से अंश उतारने की कोशिश नहीं की। इस अनुभव से यह इंगित हो रहा था कि अगर पाठ प्रभावी है, (जिससे उसके शिक्षक द्वारा प्रभावी तरीके से उपयोग किए जाने की सम्भावना भी बढ़ जाती है) तो बच्चे कुछ ज्ञान का निमार्ण करने लगते हैं और ऐसे में चीजें याद रखने का काम एक अलग व बोझिल काम नहीं रहता। ऐसे में, बहुत फर्क नहीं पड़ता कि पुस्तक पास में है या नहीं।

इस तरह यह सवाल यह है कि ज्ञान बाँटने वाली पुस्तक ही ज्ञान को कैसे देखती है। अब स्कूली ज्ञान का स्वरूप आलोचना केन्द्र में है। अब सीखने के सिद्धान्तों में हो रहे विकास के चलते यह समझा जा रहा है कि स्कूल में तथ्यों को असम्बद्ध रूप में अलग–अलग अपने आप में महत्वपूर्ण जानकारी के टुकड़ों के तौर पर सिखाया जाता है–जबकि सीखने वाले ने उस वक्त तक दुनिया के बारे में जो मानसिक अवधारणाएँ बना ली हैं, वे अवधारणाएँ जानकारियों के उन टुकड़ों के साथ जुड़कर कोई सार्थक किया कर नहीं पातीं। इसलिए सीखने वाले की अवधारणाओं में कोई बुनियादी बदलाव हो नहीं पाता। वहीं, जिस हद तक भी यह बदलाव होना शुरू हो, इसमें बच्चे–बच्चे के बीच भिन्नता होना अवश्यंभावी है। प्रत्येक बच्चा अपनी बनाई धारणाओं को अपने तरीके से बदलने की कोशिश करता है। पर स्कूल में ज्ञान को न तो आपस के जीवन्त सम्बन्धों के साथ पेश किया जाता है और न ही सीखने वाले की कोशिशों को सिखाने में और मूल्यांकन करने में स्थान दिया जाता है। इस तरह ज्ञान के बनने और याद रखे जाने की स्थितियाँ ही स्कूल में नहीं पैदा हो पातीं।

ज्ञान, बच्चे और शिक्षकीय पेशा

अपनी तरह से सोचने,समझने और व्यक्त करने की छूट हमारे कार्यक्रम में बच्चों को दी जा सकी क्योंकि शिक्षक और हम हर बच्चे की सोच से जूझने को तैयार थे–पहले से तय मानकों के आधार पर बच्चों पर ठप्पे लगाने का उद्देश्य हमारा था ही नहीं– जैसे कारखानों में बने माल पर लगाए जाते हैं। हमने देखा कि कैसे शिक्षकों का समूह अपने पेशे की गरिमा रखते हुए, एक–दूसरे को जवाब देते हुए, उचित–अनुचित मूल्यांकन पर आपसी सहमति बनाते हुए यह काम कई सालों तक अनवरत करता रहा–कर पाया। यही सब होशंगाबाद विज्ञान कार्यक्रम के शिक्षक भी करते थे–30 साल तक करते रहे थे–पेशे की परम्पराएँ,नीतियाँ और प्रणालियाँ बनाते हुए। शिक्षक समूह का यह अस्तित्व भी मूल्यांकन सुधार के लिए एक अनिवार्य शर्त है।

दूसरी ओर यह भी जाहिर है कि शिक्षण कार्य को अधिक सार्थक बनाते रहने की जरूरत है–मूल्यांकन में सुधार के प्रयासों की सार्थकता उसी पर आधारित रहती है। बुरी किताब और बुरे शिक्षण के साथ खुली पुस्तक परीक्षा भी किसी की कोई मदद नहीं कर सकती। हाँ, अच्छी किताब और अच्छे शिक्षण के साथ खुली पुस्तक परीक्षा का अनुभव कुछ महत्वपूर्ण कुशलताओं को सीखने का मौका दे सकता है। ये कुशलताएँ अपने आप में मूल्यवान हैं और सत्य मानी गई बातों के ज्ञान के निमार्ण के साथ–साथ ये कुशलताएँ भी पाठ्यक्रम के समुचित लक्ष्यों का हिस्सा हैं।

शिक्षकों के अनुभव में हमारी परीक्षा प्रणाली में दो तरह के सुधारों की जरूरत थी–एक यह कि प्रश्नों की संख्या कम रहनी चाहिए ताकि जरूरत पड़ने पर किताब से पढ़कर उत्तर खोजने का समय ठीक से मिल सके–नहीं तो बच्चों को कई प्रश्न छोड़ देने पड़ते हैं। दूसरी तरफ, प्रश्नों के प्रकारों पर भी फिर से सोचने की जरूरत है क्योंकि अधिकांश बच्चे तर्क करने,तुलना करने, अनुमान लगाने, अपना मत देने, निष्कर्ष निकालने जैसे कार्यों की माँग करने वाले प्रश्नों का उत्तर लिखित रूप में देने के लिए सक्षम नहीं हैं।

एक बार हमने 300 बच्चों के द्वारा हर प्रकार के प्रश्न पर प्राप्त अंकों का विश्लेषण किया था। हमने पाया –

- किताब में किसी एक जगह पर साफ तौर पर दी गई जानकारी को खोजकर लिखने में 92 प्रतिशत बच्चे सफल हुए थे।
- तर्क, तुलना, कारण,सारांश की माँग करने वाले प्रश्नों में 43 प्रतिशत बच्चे मध्य और उच्च श्रेणी के अंक प्राप्त कर पाए।

- दी गई स्थिति के आधार पर आगे का अनुमान लगाने, या अपना मत व्यक्त करने की माँग करने वाले प्रश्नों में 38 प्रतिशत बच्चे मध्य व उच्च श्रेणी के अंक प्राप्त कर पाए।

शिक्षक और हम सोचते कि बच्चों को किस के अनुभव दिए जाएँ ताकि वे लिखित रूप में भी तर्क, तुलना अनुमान जैसे कार्यों को कर पाएँ। कक्षा की सामूहिक चर्चाओं में या छोटे समूह में हुए मौखिक अभ्यासों में, वे इन कार्यों में खूब भाग लेते थे। यानी उनकी बौद्धिक क्षमताओं की सीमा की बजाय हमें उनकी लेखन क्षमता की सीमा अधिक नजर आती थी। माध्यमिक स्कूल के 20 से 50 प्रतिशत बच्चे स्वतंत्र रूप से किताब पढ़कर समझने व अपने विचारों को स्वयं लिख पाने के स्तर पर नहीं होते थे,ऐसा हमारा अनुभव था। हालाँकि यह भी मानना पड़ेगा कि सामूहिक चर्चाओं में सभी बच्चे बराबरी से भाग नहीं लेते थे–दूसरी तरफ, परीक्षा की लिखित कॉपियों में प्रत्येक बच्चे की स्थिति हमारे सामने होती थी। बहरहाल, परीक्षा कॉपियों के अध्ययन से हमें व शिक्षकों को बच्चों को सिखाने व सभी को पूरे मौके देने की चुनौतियाँ साफ होती गई, जिनके लिए हम रास्ते निकालते रहे। जहाँ तक बच्चों के रिजल्ट का सवाल था,तो हम उन्हीं बातों का मूल्यांकन करने पर विश्वास करते थे जो बच्चों को हम सिखा पाए थे। इसलिए, जिन प्रश्नों को बहुत ही कम बच्चों ने ठीक किया होता था, उनके कुल अंकों को भी कम कर दिया जाता था तथा वे अंक ऐसे प्रश्नों को बाँट दिए जाते थे जिन्हें ज्यादा बच्चे ठीक से कर पाए थे। पाठ्यक्रम के उद्देश्य हासिल करने का दायित्व शिक्षक व पाठ्यक्रम निर्माताओं का पहले था–बच्चों का बाद में।

प्रयोग,नीतियाँ और उनके आगे

2005–06 में छात्रों के मूल्यांकन पर बुनियादी चिन्तन करते हुए एक नेशनल फोकस ग्रुप ने कई महत्वपूर्ण अनुशंसाएँ कीं। उसने लिखा कि जो सिखाया गया उसे कितना संचित किया गया–केवल इसे छात्रों का मूल्यांकन करने का ध्येय नहीं होना चाहिए। सिखाए गए के प्रति छात्र की प्रतिक्रिया को मूल्यांकन का केन्द्र बिन्दु बनाना जरूरी है। विस्तार से दिए गए अनेक प्रस्तावों में ओपन बुक परीक्षा पद्धति की ओर अन्ततः बढ़ना भी एक प्रमुख प्रस्ताव है। फोकस ग्रुप पेपर कहता है कि ओपन बुक परीक्षा पर एक पायलट प्रोग्राम किए जाने की आवश्यकता है।

इस सम्बन्ध में कई विकल्प अपनाए जा सकते हैं। एक बार कुछ शिक्षकों ने यह विकल्प सामने रखा – कि यूनिट टेस्ट में खुली पुस्तक प्रणाली अपनाई जाए तथा वार्षिक परीक्षा में बन्द–पुस्तक परीक्षा ही रहने दी जाए। यह विकल्प जन–सामान्य को ज्यादा आसानी से स्वीकार भी होगा। एक और विकल्प यह रखा गया कि वार्षिक परीक्षा के पेपर को दो भागों में लिया जाए–एक खुली पुस्तक से और दूसरा पुस्तक जमा करवा के, बन्द–पुस्तक विधि से। बहरहाल, हमारा अनुभव यह रहा कि अमूमन शिक्षक समाज विज्ञान के मूल्यांकन में खुली पुस्तक परीक्षा की उपयोगिता व महत्ता के प्रति प्रतिबद्ध हो जाते हैं। उनके अनुसार इससे शिक्षा व्यवस्था की कई बुराईयों पर काबू पाने में मदद मिल सकती है–इससे बच्चों में हौंसला व आत्मविश्वास बढ़ता है,परीक्षा का तनाव व भय बहुत कम हो जाता है,उनके द्वारा आजू–बाजू से नकल करने की कोशिश में गिरावट आती है,गाईड बुक व कुंजियों पर निर्भर रहने की प्रवृति मिटने लगती है।

इन सब उम्मीदों के तल में है यह उम्मीद कि शिक्षक नए विचारों की ओर प्रतिबद्ध हो सकेंगे। शिक्षकों के साथ मिलकर काम करने की लम्बी प्रक्रिया से गुजरते हुए हमें एकलव्य में इस उम्मीद को त्यागने का कोई कारण नहीं मिला है–बशर्ते नीति निमार्ण व शासन–प्रशासन की प्रक्रियाओं में धैर्य, स्वतंत्रता, विविधता में विश्वास करने का साहस हो।

(यह लेख एकलव्य के सामाजिक अध्ययन कार्यक्रम के अनुभवों पर आधारित है। इसे लिखने में सामाजिक अध्ययन कार्यक्रम टीम साथी संजय तिवारी ने मदद की है। –रश्मि पालीवाल)

सन्दर्भः

1. द स्कूल एण्ड सोसायटी, (पहली बार 1900 में प्रकाशित) आकार पब्लिसर्स ,2008, पेज 80–81
2. कमला वी. मुकुन्दा, व्हाट डिड यू आस्क एट स्कूल टूडे? 2009 कोलिन्स
3. राष्ट्रीय फोकस समूह का परीक्षा सुधार आधार पत्र, एनसीईआरटी 2006

रश्मि पालीवाल *की पृष्ठभूमि इतिहास की है। वे 1983 से एकलव्य के साथ सामाजिक विज्ञानों के नए पाठ्यक्रम विकसित करने का काम कर रही हैं। उन्होंने पाठ्यक्रम और पाठ्यपुस्तकें विकसित करने में अनेक शासकीय और अशासकीय संस्थाओं के साथ काम किया है। इसके अलावा उन्होंने सामाजिक विज्ञान शिक्षण और पाठ्यक्रम विकास पर बहुत कुछ लिखा है। वर्तमान में वे कार्यक्षेत्र–आधारित ऐसे संसाधन केन्द्रों के विकास में संलग्न हैं जिनका प्राथमिक शिक्षा पर विशेष जोर है। उनसे इस subburashmi@yahoo.com ईमेल पते पर सम्पर्क किया जा सकता है।*

22 स्मृति के आगे : सामाजिक विज्ञान में अर्थपूर्ण आकलन

जयश्री नांबियार

स्कूलों में सामाजिक विज्ञान शिक्षण का कमजोर पहलू उसका आकलन है। आकलन यानी प्रचलित रूप में मूल्यांकन अक्सर–नाम और तारीखें, किसी काल की बताई गई विशेषताएँ, किसी घटना के कारण, घटना में घटित बातें, और किसी घटना के परिणाम, जो सबकुछ पाठ्यपुस्तकों में दिए गए होते हैं – को याद रखने और उसे स्मृति से तुरन्त पेश कर पाने की योग्यता का होता है। इस लेख में इसकी छानबीन करूँगी कि सामाजिक विज्ञान में हमें आकलन किन बातों का और कैसे करने की जरूरत है, और इसका उपयोग इतिहास के अध्ययन–अध्यापन में कैसे किया जा सकता है। मैंने इतिहास को चुना है क्योंकि मैं उससे परिचित हूँ। मैंने इसे इसलिए भी चुना क्योंकि इतिहास के पढ़ने और पढ़ाने का प्रायोगिक और रोजमर्रा की जिन्दगी से कोई लेना–देना नहीं होता। नागरिक शास्त्र और भूगोल में शिक्षक और विद्यार्थियों के लिए प्रायोगिक सम्भावनाएँ देखना अधिक आसान होता है। अधिकांश लोग नागरिक शास्त्र को व्यवहार की तरह, और भूगोल को, विज्ञान के साथ उसके सम्बन्धों के चलते, प्रायोगिक विषय की तरह देख पाने में सक्षम होते हैं। मैं यह आशा जरूर करती हूँ कि इस लेख के दौरान अप्रत्यक्ष रूप से यह स्पष्ट हो जाएगा कि इन विषयों में से एक की समझ में अन्य दो के कुछ पहलू अपरिहार्य रूप से शामिल रहते हैं।

किन बातों का और कैसे आकलन करने की जरूरत है

अध्यापन को अविच्छिन्न रूप से सीखने से और आकलन से जोड़ा जाना जरूरी है। यदि मेरा उद्देश्य यह है कि विद्यार्थियों को पाठ्यपुस्तक में दी गई जानकारी सीखना चाहिए ताकि प्रश्नों के उत्तर में वे उन बातों को स्मृति से तुरन्त निकालकर लिखने में समर्थ हो सकें जिनका उन्होंने किताब में अध्ययन किया है, तो अनिवार्य रूप से मेरा पढ़ाने का तरीका इसके अनुरूप होना चाहिए और होगा। मैं कक्षा को विस्तार से अध्याय समझाऊँगी और विद्यार्थियों को इस सामग्री में पारंगत होने के कौशल दूँगी ताकि पूछे जाने पर वे इस जानकारी को स्मृति से प्रस्तुत कर पाएँ। परन्तु, यदि मुझे विद्यार्थियों की सीखने और समझने की योग्यता का आकलन करना होता तो मैं उन्हें बहुत भिन्न कौशल और क्षमताएँ देती। मैं उन्हें सिखाती ध्यानपूर्वक अवलोकन करना, परिपूर्णता से पढ़ना, और जिसका अवलोकन किया जाता है या जो पढ़ा जाता है उस पर कैसे अन्त तक विचार करना। मैं उन्हें सवाल पूछना सिखाती और दिमाग खुला रखने के बारे में बात करती।

अवलोकन

इतिहास सीखने में अवलोकन एक प्रमुख कौशल है। जब आप एक नक्शे या चित्र का अवलोकन करते हैं तो वह जो कुछ दर्शाता है आप उसे ही प्रत्यक्ष रूप से स्वयं सीख रहे होते हैं, न कि किसी अन्य व्यक्ति के द्वारा की गई उसकी व्याख्या को, चाहे वह किसी इतिहासकार या किसी पाठ्यपुस्तक लेखक के द्वारा की गई हो।

हम्पी के एक अध्ययन दौरे में विद्यार्थियों से कृष्णदेव राय के समय में महानवमी डिब्बा के चबूतरे की पट्टियों पर उकेरी गई दरबार के जीवन को दर्शाने वाली मूर्तियों को गौर से देखने के लिए कहा गया। एक भित्ति–शिल्प पेड़ों को जड़ से उखाड़ते हुए हाथियों को दिखाता है। एक अन्य, जब शिकारी तीर छोड़ते हैं तो हिरणों को तितर–बितर होते दिखाता है। एक सवाल जो अवलोकन करने वाले, और जो उन्होंने देखा उसके बारे में लिखने वाले तेरह वर्षीय बच्चों से पूछा गया वह है : हम्पी के विजयनगर की राजधानी बनने के पहले उसके प्राकृतिक परिवेश के बारे में तुम्हें क्या संकेत मिलता है? यह प्रश्न विद्यार्थियों को उकेरी गई तस्वीरों की ध्यानपूर्वक जाँच–पड़ताल करने के लिए, और स्वंय अवलोकन द्वारा इस सम्भावित तथ्य का – कि यह क्षेत्र घने जंगलों से आच्छादित था – अन्वेषण करने के लिए आमन्त्रित करता है।

हम्पी के भग्नावशेषों में ऐसी और कौनसी बात यह संकेत देती है कि उनका यह बोध सही था? अधिकांश निर्मित संरचनाएँ किसी ऊपरी ढाँचे से रहित आधार मात्र हैं जिनमें गड्ढे हैं, जिसका मतलब हो सकता है कि वहाँ नियमित दूरी पर खम्भे रहे हों। क्या ऐसा हो सकता है कि वे खम्भे लकड़ी के बने हों?क्या खम्भे इसलिए वहाँ नहीं हैं कि वे लकड़ी के बने थे और उन्हें जला दिया गया होगा या लूटकर ले जाया गया होगा?क्योंकि यह हमें ज्ञात है कि तालिकोटा के युद्ध के बाद विजयनगर की राजधानी छः दिनों तक जलती रही और उसे बाद में लूटा खसोटा गया। इस प्रकार, प्रारम्भिक अवलोकन को एक अन्य स्थिति में उपयोग किया जाता है और फिर एक तीसरे स्रोत के माध्यम से जानकारियों को आपस में जोड़ा जाता है और उनकी पुष्टि की जाती है। इस तरह विद्यार्थियों ने सीखने की कला सीखी है और इस सीखने को वे अपने अध्ययन और जीवन, दोनों के अन्य प्रसंगों और स्थितियों में उपयोग कर सकेंगे।

अवलोकन करने और सम्बन्ध जोड़ने के यही कौशल मैसोपोटेमिया

के बारे में सीखने के लिए इस्तेमाल किए जा सकते हैं। उस क्षेत्र का नक्शा पहाड़ियों से भूतल पर खाड़ी की ओर बहती हुई दो नदियाँ दर्शाता है। नदी के किनारे के क्षेत्र निचले तल पर हैं और काफी दूर पीछे पहाड़ियाँ हैं। नजदीकी जाँच–पड़ताल और अनेक प्रश्नों से विद्यार्थियों को वहाँ के मुख्य व्यवसाय, स्थानीय अर्थव्यवस्था, निर्माण में इस्तेमाल होने वाली सामग्री और युद्धों की आवृत्ति के बारे में समझने में मदद मिलेगी। यहाँ विद्यार्थियों को अवलोकन करने और अवलोकनों को अपने अनुभव और मानव जीवन के ज्ञान के ढाँचे में जमाने के लिए प्रोत्साहित किया जाता है। यहाँ से वे निष्कर्ष निकालते हैं जिनकी फिर वे पुष्टि कर सकते हैं या खारिज कर सकते हैं।

अब मैं युवा विद्यार्थियों का सरल ढंग से मानवाधिकारों से परिचित कराने वाली, एक अनूठी किताब की बात करूँगी जिसका नाम है ''वी आर बॉर्न फ्री (हम स्वतंत्र जन्मे हैं)''। यह किताब मुझे एक संयोग से मिली। इसमें एक चित्रकार कहता है कि किसी पर भी गलत करने का आरोप, उससे पूछे बिना, नहीं लगाया जाना चाहिए। उदाहरण के लिए वह एक चित्र बताता है जिसमें फूलों की डाली हाथ में लिए एक बच्ची और फर्श पर गिरा हुआ एक फूलदान दिखाया गया है। फर्श पर फूलदान से गिरा पानी तथा फूलों की और डालियाँ हैं। बच्चे के बगल में वयस्क लोगों की टाँगों के दो जोड़े हैं। इस तस्वीर का अवलोकन और उस पर चर्चा, विद्यार्थियों को मिलते–जुलते अनुभवों की याद दिलाने में सहायक हो सकते हैं। वे हमें बता सकते हैं कि हम कैसे आसानी से निर्णय ले लेते हैं, और वे हमें हमारे पूर्वाग्रहों का बोध करा सकते हैं। ऐसे प्रश्न जैसे, 'क्या तुम्हारे साथ ऐसा हुआ है?', 'याद करो जब तुमने किसी को गलत समझ लिया हो', 'कोशिश करो और सुझाओ कि यह कैसे हुआ होगा'। 'विज्ञापन, धारावाहिक और लोकप्रिय फिल्में किस तरह गलत बातों या दुष्टता को चित्रित करती हैं?' इस प्रकार मानवाधिकार को एक अर्थपूर्ण ढंग से सीखा और समझा जाता है।

इन तीन उदाहरणों में जिन बातों को पढ़ाया, सीखा और और उनका आकलन किया जाता है, वे अवलोकन करने और सम्बन्ध जोड़ने के, और उपयोग करने के कौशल हैं। साथ ही उनमें अपनी जानकारियों की पुष्टि करने की जिम्मेदारी है। कौशलों के इस सिखाने में, विषयवस्तु को एक प्रकार से प्रत्यक्ष व्यक्तिगत अनुभव के माध्यम से सीखा जाता है। इसलिए, सिखाना और सीखना एक साथ घटित होते हैं, और सीखने के कृत्य में ही आकलन होता है। यहां आकलन एक निष्कर्षात्मक वक्तव्य नहीं होता, बल्कि उसका सूचक होता है जो आगे और पढ़ाया और सीखा जाना जरूरी है। यही अनिवार्य रूप से आकलन की भूमिका होना चाहिए।

कैसे विचार करना

इतिहास के पढ़ाने–सीखने का सबसे जटिल पहलू सही ढंग से सोचना है। तथ्य पुराणकथाओं, किवदंतियों और अभिमतों में लिपटे रहते हैं। यह महत्वपूर्ण है कि प्राकृतिक या सामाजिक क्रियाकलापों की व्याख्या करने वाली अलौकिक प्राणियों वाली कहानियों और किसी खास ऐतिहासिक स्थान या व्यक्ति के बारे में एक पारम्परिक अपुष्ट कहानी में फर्क किया जाए। और इन दोनों तथा प्राचीन घटनाओं वाली ऐसी कहानियों में फर्क किया जाए जो साक्ष्यों से पुष्ट की जा सकती हैं।

किसी अभिमत को साक्ष्य पर आधारित ऐतिहासिक 'तथ्य' से अलग करना कहीं ज्यादा कठिन होता है। जब एक पाठ्यपुस्तक दिल्ली सल्तनत के शासक के बारे में कहती है कि, 'रजिया की कमजोरी उसका औरत की तरह पैदा होना थी', या 'अशोक ने अहिंसा का उपदेश देकर देश को कमजोर किया', तो शिक्षक के लिए यह जरूरी है कि वह ऐसे वक्तव्यों का विश्लेषण करे, उन्हें सन्दर्भ से जोड़े और विद्यार्थियों को इन वक्तव्यों पर पूरी तरह से विचार करने का तरीका सुझाए।

इसके बाद, हम देखते हैं कि पाठ्यपुस्तक में कुछ तथ्यों को जगह देने और अन्यों को छोड़ देने से अतीत की और मानव जीवन की एक खास तस्वीर बनती है। राष्ट्रवाद अतीत की एक आंशिक व्याख्या पर आधारित होता है, और इतिहास को किसी क्षेत्र या राष्ट्र की विशिष्ट पहचान गढ़ने के लिए इस्तेमाल किया जाता है। कुछ चुने हुए आन्दोलनों, लोगों और तथ्यों का सीखना एक विशेष वैश्विक दृष्टि निर्मित करता है। इतिहास की पुस्तकों में ऐसा अध्याय मिलना कोई अनोखी बात नहीं है जिसे इस्लाम का आगमन कहा जाता है, और जिसमें गजनी और गौरी के हमलों और उन लड़ाइयों और बर्बरताओं का वर्णन होता है जो उत्तर के गंगा के मैदानों में हुईं। पर उन्हीं किताबों में मलाबार तट पर वर्षों से रह रहे जनसमूहों के शान्तिपूर्ण जीवन का लगभग कोई उल्लेख नहीं होता। यह खतरनाक प्रवृत्ति है कि विजय और टकराव का अध्ययन इतिहास की समझ की तरह स्वीकृत हो जाता है और जनसमूहों को खास ढंगों से चित्रित कर दिया जाता है। अतीत और मानव जीवन के बारे में यह विद्यार्थियों को कैसा दृष्टिकोण प्रदान करेगा?

विश्व का इतिहास अधिकतर यूरोप और अमरीका के युद्धों व टकरावों के इर्द गिर्द घूमता है। इस तरह जोर देने से, संसार के कुछ भागों को प्रमुखता हासिल हो जाती है, तथा मन में यह बैठ जाता है कि युद्ध और टकराव ही ऐतिहासिक स्मृति के योग्य हैं। विद्यार्थियों के विकसित हो रहे दिमागों में बहुत जोर से यह अनकही बात बैठ जाती है कि युद्ध मानव जीवन का अपरिहार्य अंग है।

पाठ्यपुस्तकों में जाति और स्त्रियों के साथ किस प्रकार बुरा बर्ताव किया जाता था, इसके बारे में दिए गए वक्तव्य अक्सर ऐसे मुद्दों को ढंक देते हैं जो रोजमर्रा के जीवन को प्रभावित करते हैं, और जिनकी आलोचनात्मक जाँच–पड़ताल जरूरी है। ऐसे व्यापक वक्तव्यों में इतिहास के महत्वपूर्ण पहलू छिपे रहते हैं जिन्हें समझे जाने की जरूरत है। हम जो देखते हैं और पढ़ते हैं उसके, तथा जो देखा, पढ़ा, अनुभव किया और सोचा जाता है उसके बीच के अन्तरों के बारे में इतिहास की कक्षाओं में सवाल उठाए जाना चाहिए। इन फासलों की पड़ताल करने में ही असली सीखना घटित होता है।

> *सिखाना और सीखना एक साथ घटित होते हैं, और सीखने के कृत्य में ही आकलन होता है। तब मूल्यांकन एक निष्कर्षात्मक वक्तव्य नहीं होता, बल्कि उसका सूचक होता है जो आगे और पढ़ाया और सीखा जाना जरूरी है। यही अनिवार्य रूप से आकलन की भूमिका होना चाहिए।*

इसके अलावा, कक्षा में किसी ऐतिहासिक तथ्य को सन्दर्भ में देखने के लिए विद्यार्थियों की मदद की जाना जरूरी है। इतिहासकार ने विवरण किस काल में लिखा? क्या किसी विशेष वैचारिक दृष्टिकोण का प्रमाण मिलता है? जिस काल में उसने लिखा तब तत्कालीन राजनैतिक, आर्थिक, और सामाजिक स्थिति क्या थी?लिखने का उसका उद्देश्य क्या था? इस प्रकार यह देखना महत्वपूर्ण है कि यद्यपि इतिहास एक बाह्य यथार्थ को निरूपित करता हुआ प्रतीत होता है, वास्तव में हम प्रतिरूपों के साथ काम कर रहे होते हैं– ऐसे आख्यान जो प्रमुख समूह के दृष्टिकोण, वर्ग, नस्ल या लिंग के आधार पर निर्धारित होते हैं। मनुष्य की चेतना उन धारणाओं, मूल्यों और सोचने के तरीकों से तथा भावनाओं से निर्मित होती है जिनके द्वारा मनुष्य देखते हैं और जिनके सहारे वे उसकी व्याख्या करने की कोशिश करते हैं जिसे वे यथार्थ समझते हैं।

जो बात विद्यार्थी के लिए जरूरी है, वह है इतिहास की समृद्ध जटिलता का स्वाद लगना। इसलिए जो पढ़ाए जाने, सीखने और आकलन किए जाने की जरूरत है, वह विद्यार्थी की साक्ष्य के आधार पर निष्कर्ष निकालने की क्षमता है। साथ ही यह समझने की क्षमता कि यह निष्कर्ष अस्थायी तौर पर माना जाए क्योंकि यह न केवल उपलब्ध साक्ष्य से बनता है, बल्कि चीजें कैसी हैं और कैसी होना जरूरी हैं, इसके बारे में व्यक्ति के विचारों से भी बनता है। विद्यार्थी को कई, और कभी–कभी विरोधी, आख्यानों और भिन्न–भिन्न मतों को बिना टकराव के ग्रहण करना सीखने की जरूरत है। क्या सोचना सिखाने की अपेक्षा किस तरह सोचना सिखाना शिक्षक के लिए ज्यादा जरूरी है।

यह कैसे किया जाए? एक गतिविधि जो अक्सर विद्यार्थियों को दी जाती है, वह 'बरतन गड़ाना' है। कक्षा को विद्यार्थियों के दो समूहों में बाँट दिया जाता है। किसी मकान या ढाँचे के किसी खास खण्ड को ध्यान में रखकर प्रत्येक समूह कुछ चीजें इकट्ठी करता है, उन्हें एक बरतन में रखकर गड़ा देता है। दूसरा समूह दिए गए नक्शे, या बनाए गए टीले को देखकर बरतन को खोज निकालता है। फिर इस खोज की साक्ष्य की तरह पड़ताल करके इस उपलब्ध 'साक्ष्य' से रहने वालों के काल और जीवनशैली के बारे में निष्कर्ष निकालता है। साक्ष्य और प्रमाण को कक्षा के सामने प्रस्तुत किया जाता है। इसमें कुछ बातें स्पष्ट हो जाती हैं। कभी उसमें त्रुटिपूर्ण सोच होती है क्योंकि किसी चीज की पर्याप्त जाँच–पड़ताल नहीं की गई थी या विचार की प्रक्रिया पूर्ण नहीं थी। कभी सोच पक्षपातपूर्ण होती है यदि वह विद्यार्थी की आज की वास्तविकता पर आधारित होती है, और शायद उसमें अपर्याप्त कल्पना की गई हो। अन्त में, यह भी देखा जा सकता है कि बरतन गड़ाने वाले विद्यार्थियों का इरादा और दूसरे समूहों के विद्यार्थियों द्वारा निकाला जाने वाला निष्कर्ष हो सकता है कि समान न हों।

एक ही विषय पर उपलब्ध अनेक प्रकार की सामग्री – उस काल का कोई दस्तावेज, अखबार का कोई समकालीन लेख, अलग–अलग समय पर लिखने वाले दो इतिहासकारों के भिन्न–भिन्न दृष्टिकोण – की पड़ताल करना भी पढ़ाने का एक उत्कृष्ट उपकरण हो सकती है। उनमें क्या अन्तर हैं? अन्तरों के कारणों की तलाश हमें सिखा सकती है कि कैसे सोचना चाहिए। इसी प्रकार से, वर्तमान घटनाओं को प्रतिबिम्बित करने वाले अखबार भी इतिहास के अध्ययन की प्रभावशाली सामग्री होते हैं! क्यों सभी अखबार मुखपृष्ठ पर छापने के लिए उन्हीं खबरों को चुनते हैं? ये घटनाएँ क्यों महत्वपूर्ण मानी जाती हैं? हर खबर किस तथ्य पर आधारित है?खबरें किस तरह से एक–दूसरे से भिन्न होती हैं? कैसी घटनाओं की खबरें सबसे कम छपती हैं?

विकृतियों, छोड़ दिए गए पहलुओं और अन्तरों को विचार करना सीखने की सीढ़ियों की तरह इस्तेमाल करना महत्वपूर्ण है। कभी–कभी पूरा इतिहास या सीखा जाने वाला कोई गम्भीर सबक एक शब्द के इस्तेमाल में समाया रहता है, उदाहरण के लिए शब्द 'खोजा' को लें। जब हम पढ़ते हैं कि कोलम्बस ने अमरीका को 'खोजा', तब हमें यह पूछने की जरूरत है कि यह कहने वाला कौन है, और कोलम्बस ने उसे किसके लिए खोजा क्योंकि वहाँ पहले से

ही लोग रह रहे थे। इस एक शब्द में सत्ता का इतिहास, एक समृद्ध और भिन्न इतिहास के गायब हो जाने के कारण, उसका विलोप और जबरदस्ती मिला लिया जाना सभी कुछ समाया हुआ है। एक और मिसाल लें तो शब्द 'आदिम' में हीन और अज्ञानी होने के भाव छिपे हैं, और 'प्रगति' में सकारात्मक भाव शामिल हैं। इन अकेले शब्दों में निहित वैश्विक दृष्टियाँ चलती रहेंगी और युवा विद्यार्थी भी उनसे अलग नहीं सोचेंगे जब तक वे इन शब्दों और अवधारणाओं पर सवाल उठाना और उनकी पड़ताल करना नहीं सीखते।

> *विद्यार्थी को कई, और कभी–कभी विरोधी, आख्यानों और भिन्न–भिन्न मतों को बिना टकराव के ग्रहण करना सीखने की जरूरत है। क्या सोचना सिखाने की अपेक्षा किस तरह सोचना सिखाना शिक्षक के लिए ज्यादा जरूरी है।*

पाठ्यसामग्री से परिचित होने के द्वारा और सवालों के द्वारा विद्यार्थी सोचना सीखते हैं। जब कोई विद्यार्थी जानता है कि वह स्वयं विचार कर सकता है तो उसमें बहुत आत्मविश्वास आ जाता है। आमतौर पर स्कूल में शिक्षा आपको सिखाती है कि क्या सोचना है, न कि कैसे सोचना है। विचार करने के द्वारा ही विद्यार्थी सृजनात्मक मनुष्य बनते हैं न कि दोहराने वाली मशीनें। विचार करने की इस क्षमता को ही हमें पोषित करने की और उसका आकलन करने की जरूरत है।

प्रश्न पूछना

अवलोकन और विचार करना सीखने के माध्यम से विद्यार्थी अतीत की समझ और इतिहास की प्रक्रियाओं के बारे में अन्तदृर्ष्टियाँ हासिल करता है। इतिहास को सीखने का मतलब यह समझने की कोशिश करना है कि समाज कैसे काम करते हैं, और यह भी देखना कि यह समझ आज की घटनाओं को समझने के लिए भी उतनी ही उपयोगी है। इतिहास इसीलिए अतिमहत्वपूर्ण है कि यह वर्तमान को समझने के तरीकों में भी हमारी मदद करता है, और इसके कौशल रोजमर्रा के जीवन में सामने आने वाली स्थितियों और जानकारी पर भी लागू होते हैं। आवेगपूर्ण और बिना जाने समझे जल्दबाजी में निर्णय करने और निष्कर्ष निकालने की अपेक्षा, ऐसा सीखना विद्यार्थी को सीखने और मूल्यांकन करने के जो औजार उसके पास हैं उन्हें पैना करने के और इस्तेमाल करने के काबिल बनाता है।

इसे कैसे सिखाया, सीखा और इसका आकलन किया जाए? यदि इतिहास वर्तमान को समझने का एक तरीका है, तो वर्तमान ही इसके लिए एक अच्छा प्रारम्भिक बिन्दु होता है। कक्षा में एक बहस यह प्रश्न पूछने से शुरू हो सकती है कि भारत के स्कूलों में शिक्षा का माध्यम अँग्रेजी क्यों है?भारतीय स्कूलों में छात्राएँ पिनाफोर, टाई और जूते मोजे क्यों पहनती हैं? हमारी आज की कक्षा का स्वरूप गढ़ने में बचपन के बारे में किन विचारों और वयस्कों की कौनसी चिन्ताओं की भूमिका होती है?इस सबसे हम ऐसे इतिहास पर पहुँचते हैं जो प्रासंगिक है।

इतिहास की किसी कक्षा का पाठ्यक्रम भी विद्यार्थी को उसके प्रश्नों से शुरू करने की छूट देता है। पाठ्यक्रम में दिए गए अध्याय 'ब्रिटिश सत्ता का उत्थान और विकास, ब्रिटिश सत्ता का उत्कर्ष, ब्रिटिश सत्ता का सुदृढ़ीकरण' विद्यार्थियों में ऐसे प्रश्न उकसा सकते हैं, जैसे कि – अँग्रेज भारत क्यों आए?, यदि भारतीय इतने अधिक थे तो कैसे थोड़े से अँग्रेजों ने सत्ता हासिल कर ली और उसे बढ़ाकर सुदृढ़ भी कर लिया? जो हो रहा था उसके प्रति भारत के लोगों की क्या प्रतिक्रिया थी? ये अति आवश्यक प्रश्न हैं, और सीखना वहीं से शुरू होता है जहाँ विद्यार्थी हैं। अतीत के माध्यम से वर्तमान को समझने की जरूरत के चलते कुछ अन्य प्रकार के प्रश्न भी उठ सकते हैं जिनसे बहस छिड़ सकती है – हम उस भावनात्मक उफान को कैसे समझें जिसके परिणामस्वरूप अयोध्या में बाबरी मस्जिद का विध्वंस हुआ?

अतीत और वर्तमान के बीच का अन्तर्सम्बन्ध जितना स्वाभाविक है उतना ही अनिवार्य भी है। यहाँ मध्यकालीन और प्रारम्भिक आधुनिक भारत का वर्ष भर तक अध्ययन करने के बाद उठे कुछ ऐसे प्रश्न दिए जा रहे हैं जो विद्यार्थियों को सोचने, सम्बन्ध जोड़ने और निबन्धात्मक उत्तर देने में मदद करेंगे :

सत्ता के लिए संघर्ष

भूमिका : आप 'सत्ता' को कैसे समझते हैं? किसी राजा को सत्ता की जरूरत क्यों होती है?

और प्रश्न

- कौनसी विशेष स्थितियों में एक राजा को अपने आप को सिद्ध करना पड़ता है? (राजपूतों के उत्पत्ति के सिद्धान्त, कुत्बुद्दीन ऐबक, बाबर और हुमायूँ, शिवाजी)
- एक राजा अपनी सत्ता कैसे बनाए रखता है?;चोल राजागण, बल्बन, अलाउद्दीन खिलजी, कृष्णदेव राय, अकबर, औरंगजेब)

- स्वयं राजाओं पर सत्ता का क्या प्रभाव पड़ता है? (अलाउद्दीन खिलजी और मुहम्मद बिन तुगलक, जहाँगीर और शाहजहाँ) सत्ता का यह संघर्ष दूसरों के साथ सम्बन्धों को कैसे प्रभावित करता है और स्वयं व्यक्ति के भीतर क्या होता है?
- यहाँ दुख की बात क्या है? (रजिया, बहमनी राजागण, मुगलों के बीच में उत्तराधिकार के युद्ध, औरंगजेब का सिंहासन पर आरूढ़ होना)

निष्कर्ष :

आपने जो अध्ययन किया है उसपर अपने खुद के विचार लिखें।

आकलन कार्य

यदि मूल्यांकन के लिए दिया गया कार्य कोई गतिविधि, सामूहिक कार्य या क्षेत्र–भ्रमण नहीं है, बल्कि एक लिखित परीक्षा है, तो ऐसे कुछ सम्भावित कार्य क्या हो सकते हैं? अब तक जो कहा गया है उस पर आधारित, बेतरतीबी से चुने गए कुछ कार्य :

प्रश्न 1:

प्राचीन मिस्र में मकबरे के भीतर चित्रांकन करके बनाई गई इस तस्वीर का निरीक्षण करो और निम्न सवालों के उत्तर दीजिए :

यहां आप लोगों को किन तीन गतिविधियों में रत देखते हैं?

इस्तेमाल किए जाने वाले औजारों का वर्णन करिए।

आपके विचार में लोगों को अलग–अलग आकार का क्यों दिखाया गया है? अपने कारण समझाएँ।

प्रश्न 2:

नीचे एक अखबार से ली गई खबर दी गई है। इसमें किस मानवाधिकार का उल्लेख है? अधिकार बताइए और यह समझाइए कि यहाँ कैसे उसका उल्लंघन हुआ है।

प्रश्न 3:

यहाँ कलकत्ता की 'ब्लैक होल (काल कोठरी)' की घटना के बारे में दो इतिहासकारों के विवरणों के अंश हैं। लेखकों के विवरणों में क्या समानताएँ हैं? इनके आधार पर आप किन बातों को तथ्य की तरह मान सकते हैं?

प्रश्न 4:

दिए गए नक्शे में एक क्षेत्र को चिन्हित किया गया है। नक्शे का ध्यानपूर्वक अध्ययन करो और निम्न प्रश्नों के उत्तर दीजिए :

- वहाँ के लोगों का व्यवसाय क्या होगा? क्यों?
- वे फुर्सत के समय में किन गतिविधियों में संलग्न रहते होंगे? तुम्हें इसका संकेत किस बात से मिलता है?
- इस क्षेत्र में व्यापार एक महत्वपूर्ण गतिविधि क्यों हो सकती है?
- इसका किन क्षेत्रों से सम्पर्क रहा हो सकता है?
- आप इस क्षेत्र में किन फसलों के पैदा होने का अनुमान लगा सकते हैं?

अपने कारण बताइए।

उपरोक्त कार्यों में तीन बातें स्पष्ट हैं। पहली, विद्यार्थी के लिए किसी दी गई तस्वीर, नक्शे या पाठ्यांश को पढ़ना या उसका बारीकी से अध्ययन करना आवश्यक होता है। फिर इस जानकारी को उसे ज्ञान के उस ढाँचे में समायोजित करना पड़ता है जो उसके पास पहले से है, और उसे स्पष्टतापूर्वक विचार भी करना होता है। दूसरी, इन कार्यों के दौरान वह उत्तर का निर्माण करने वाला बन जाता है, और उसपर आत्मविश्वास के साथ काम करता है। तीसरी, और सबसे महत्वपूर्ण बात है कि विद्यार्थी इस अभ्यास के द्वारा कौशल और ज्ञान में कुछ नया सीखता है या कोई अन्तर्दृष्टि हासिल करता है। आकलन का कोई भी ऐसा काम जिससे विद्यार्थी कुछ नहीं सीखता या तो अधूरा होता है या अर्थहीन।

आकलन से परे

सामाजिक विज्ञानों में आकलन को अर्थपूर्ण कैसे बनाया जा सकता है, इस बारे में यह सब कहने के बाद, अब मैं यह कहना चाहती हूँ कि सामाजिक विज्ञानों के द्वारा जो सबसे जरूरी बातें सिखाई और सीखी जाना चाहिए उनका आकलन नहीं किया जा सकता।

सामाजिक विज्ञानों से हासिल किया जाने वाला सबसे आवश्यक ज्ञान सही तरीके से जीना और सम्बन्ध बनाना सीखना – मौन, अनिर्णायक निरीक्षण करना सीखना; विचारधाराओं के काम करने और शब्दों, विचारों व घटनाओं के प्रति हमारी तंत्रिकात्मक और भावनात्मक प्रतिक्रियाओं का बोध विकसित करना; विभिन्न दृष्टिकोणों को बिना टकराव के अपने मन में रख सकना सीखना – होना चाहिए। रोजमर्रा की वास्तविकताओं के साथ स्पष्टतापूर्वक जूझने में और यह पूछने में कि हमारी ज़िम्मेदारियाँ क्या हैं, इस ज्ञान को हमारी सहायता करना चाहिए, इसे हमें पूर्वाग्रहों से मुक्त करना और आत्मनिरीक्षण करने के लिए आधार निर्मित करना चाहिए।

मेरी दृष्टि में सामाजिक विज्ञान के सीखने का लक्ष्य दोहरा है। एक तो किसी अन्य स्थान और समय के मानवीय क्रियाकलापों के द्वारा हमें यहाँ और अभी अपने बारे में जानना सिखाना है। दूसरे, अपने चारों ओर के मानवीय, जीव–जन्तुओं के और प्राकृतिक परिवेश के साथ सम्वेदनशील सम्बन्ध बनाने में हमें सक्षम बनाना है। ज्ञान और कौशल तभी मूल्यवान होते हैं जब वे फिक्र और जिम्मेदारी के रिश्ते में जुड़े हुए हों। और यह आकलन के परे है।

जयश्री नांबियार *चेन्नई के द स्कूल,कृष्णमूर्ति फाउण्डेशन ऑफ इण्डिया में अँग्रेजी और इतिहास पढ़ाती हैं, और वर्तमान में वे इस स्कूल की प्रधानाचार्य हैं। उनसे इस* jayashree.nambiar@gmail.com *ईमेल पते पर सम्पर्क किया जा सकता है।*

23 गुणवत्ता बनाम परिमाण

तपस्या साहा

तीन बोर्डों की परीक्षाओं के सामाजिक अध्ययन प्रश्न पत्रों का विश्लेषण – वर्तमान में हम सामाजिक विज्ञान में किस चीज की परीक्षा ले रहे हैं? क्या यही बात इस विषय की शोचनीय स्थिति के लिए जिम्मेदार है?

बहस की शुरूआत करने के लिए आइए हम 2008–2009 के अकादमिक सत्र के सामाजिक अध्ययन के तीन बोर्डों के प्रश्न पत्रों को ध्यान से देखें। सीबीएसई, आईएससीई और कर्नाटक राज्य बोर्डों के प्रश्न पत्रों का विश्लेषण अलग–अलग संज्ञानात्मक स्तरों जैसे ज्ञान, समझ, उपयोग और कौशल पर आधारित है।

प्रश्न 2. भारत में मीठे पानी के दो स्रोत कौन से हैं?

प्रश्न 3. दो मुख्य लौह खनिजों के नाम बताएँ।

प्रश्न 4. भारत में सबसे बड़ा सौर संयंत्र कहाँ स्थित है?(सीबीएसई)

राज्य बोर्ड और सीबीएसई दोनों के प्रश्न पत्रों में कुछ बिन्दुओं को काफी साफ तौर पर दर्शाया गया है।

- भूगोल वाले भाग के केवल 30 अंक होते हैं।
- (भूगोल के) प्रश्न पत्र में 96 प्रतिशत भाग विशुद्ध रूप से याद की हुई जानकारी को स्मृति से निकालकर प्रस्तुत कर देने पर आधारित है, और उसका केवल 4 प्रतिशत भाग ही कौशल पर आधारित है।
- प्रश्न क्रमांक 45. राष्ट्रीय उद्यान क्यों बनाए जाते हैं?
- अ. जंगलों की रक्षा करने के लिए, ब. चिड़ियों की रक्षा करने के लिए, स. वन्य जीवन के संरक्षण के लिए, द. बाघों के संरक्षण के लिए (कर्नाटक बोर्ड)
- वे प्रश्न भी जो स्मृति के परे 'प्रतीत' होते हैं सम्भवतः पाठ्यपुस्तक के प्रत्येक पाठ के अन्त में दिए गए अभ्यास प्रश्नों में से लिए गए हैं। अतः ऐसे प्रश्नों की इससे ज्यादा कोई माँग नहीं होती कि सीखे गए तथ्यों को पुनः दोहरा दिया जाए। यह तो एक गलत प्रश्न है, क्योंकि इसमें जो वैकल्पिक उत्तर दिए गए हैं वे सभी सही हैं।
- प्रश्न पत्र विद्यार्थियों को 'वैचारिक प्रश्नों' के उत्तर देने के लिए कोई अवसर नहीं देता। प्रश्न पत्र में पूछी गई प्रायः हर बात का रट कर सीखे हुए ज्ञान से उत्तर दिया जा सकता है।
- दोनों ही बोर्डों की निर्धारित पाठ्यपुस्तकें हैं।

आईसीएसई का प्रश्न पत्र अन्य दो बोर्डों के प्रश्न पत्रों से कई पहलुओं में भिन्न होता है

प्रश्न क्रमांक 7.

अ. खनिज तेल का सबसे बड़ा उत्पादक इनमें से कौन सा है? भारत के किन्हीं दो तेलशोधक कारखानों के नाम बताएँ.

ब. भारत के किन्हीं दो समुद्री तेल क्षेत्रों के नाम बताएँ.

स. (i) भारत के सबसे बड़े और सबसे पुराने कोयला क्षेत्र का नाम बताएँ।

(ii) कोयले से प्राप्त होने वाले किन्हीं दो कच्चे औद्योगिक पदार्थों के नाम बताएँ।

द. भारत में पाए जाने वाले विभिन्न प्रकार के लौह अयस्कों के नाम बताएँ। सबसे अच्छी गुणवत्ता वाला लौह अयस्क कौन सा है? (आईसीएसई)

बोर्ड प्रश्न पत्रों की सीमाएँ

सभी तीनों बोर्डों के प्रश्न पत्रों में एक चीज समान है – आकलन के ये औजार किसी भी प्रकार से विषय के सार, जीवन के साथ उसके सम्बन्ध, और जीवन में उसकी जरूरत को प्रगट करने में सक्षम नहीं लगते।

इनमें से कोई भी प्रश्न किसी भौगोलिक अवधारणा को सम्बोधित नहीं करता, उदाहरण के लिए:

अ. कर्नाटक राज्य बोर्ड प्रश्न पत्र

प्रश्न क्रमांक 33. डलियों का निर्माण कुटीर उद्योग का उत्पाद है, जबकि बिजली के पंखों का निर्माण इस उद्योग का उत्पाद है :

(अ) लघु उद्योग, (ब) मझौले उद्योग,

(स) वृहत उद्योग, (द) विशिष्ट उद्योग

प्रश्न क्रमांक 44. कुटीर और लघु उद्योग भारतीय परिस्थितियों के अनुरूप क्यों हैं?

(अ) रोज़गार प्रदान करते हैं, (ब) कम पूँजी की जरूरत होती है,

(स) स्वदेशी संसाधनों पर आधारित होते हैं, (द) कम विद्युत आपूर्ति की आवश्यकता होती है

प्रश्न क्रमांक 46. कौन सा संगठन कुटीर और लघु उद्योगों को कर्ज प्रदान कर रहा है?

(अ) राज्य वित्त निगम, (ब) औद्योगिक विकास बैंक,

(स) राष्ट्रीयत बैंक, (द) भारतीय स्टेट बैंक

तीनों प्रश्नों ने केवल कुछ जानकारी ही माँगी है। विद्यार्थी अनुमान लगाकर और संयोग से भी सही उत्तर प्राप्त कर सकते हैं। तो फिर इन प्रश्नों को पूछने का उद्देश्य क्या है? यहाँ पर किस चीज का परीक्षण किया जा रहा है? 'उद्योग' की अवधारणा का तो निश्चित रूप से नहीं।

ब. सीबीएसई प्रश्न पत्र

प्रश्न 2. भारत में मीठे पानी के दो स्रोत कौन से हैं?

प्रश्न 4. भारत में सबसे बड़ा सौर संयंत्र कहाँ स्थित है?

दोनों ही प्रश्नों ने 'मीठे पानी और खारे पानी' या 'सौर ऊर्जा' जैसी अवधारणाओं का तो जिक्र ही नहीं किया।

इसके बजाय केवल नाम ही पूछे गए हैं।

प्रश्न क्रमांक 16. किसी क्षेत्र में उद्योगों की स्थापना को प्रभावित करने वाले किन्हीं तीन कारकों की व्याख्या करें।

इसके बजाय यह प्रश्न इस प्रकार से हो सकता था : भारत के दिए गए नक्शे का अध्ययन करें जिसमें उसके तीन औद्योगिक क्षेत्रों मुम्बई, जमशेदपुर और विशाखापट्टनम को दर्शाया गया है। प्रत्येक क्षेत्र का कोई एक प्रमुख उद्योग है; जैसे मुम्बई में सूती कपड़ा उद्योग, जमशेदपुर में लौह और इस्पात उद्योग तथा विशाखापट्टनम में जहाज निर्माण उद्योग। आपके विचार से विभिन्न उद्योगों को हर जगह और कहीं भी क्यों स्थापित नहीं किया जा सकता?

इस प्रश्न का उत्तर देते वक्त विद्यार्थी को निश्चित तौर पर उद्योग को उसकी स्थापना की जगह से जोड़ने का अवसर मिलेगा। दिए गए प्रश्न पत्र की भाषा नीरस है, किसी भी तरह के सन्दर्भ से रहित है, कुछ हद तक उपदेशात्मक है और विद्यार्थियों के लिए सहज नहीं है।

आइए हम कुछ और उदाहरणों की जाँच करें – वे मेरे दृष्टिकोण की पुष्टि करते हैं।

उदाहरण :

अ. कर्नाटक राज्य बोर्ड प्रश्न पत्र

प्रश्न क्रमांक 69. निर्वाह कृषि, व्यावसायिक कृषि और मिश्रित कृषि क्या हैं?

प्रश्न क्रमांक 73. भारत कृषि में पिछड़ा हुआ क्यों है?

यह प्रश्न ''टैक्स्टबुक'', पेज 230, प्रश्न क्रमांक IV, 2 से लिया गया है।

ब. सीबीएसई

प्रश्न क्रमांक 21. इस तस्वीर को ध्यान से देखें और निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर दें: (21.1) तस्वीर में दिखाई गई फसल का नाम बताएँ।

(21.2) इस फसल की खेती के लिए आवश्यक जलवायु की दशाओं के बारे में लिखें।

(21.3) इस फसल का प्रमुख रूप से उत्पादन करने वाले दो राज्यों के नाम बताएँ।

इसी प्रश्न को कुछ अलग तरह से भी पूछा जा सकता था –

प्रश्न (i) इस पौधे का नाम बताएँ, जिसे हो सकता है आपने त्यौहार के दौरान बाजार में, या जूस सेंटर (रस की दुकान) पर देखा हो।

(ii) आपके विचार से इस फसल को उगाने के लिए किस प्रकार की जलवायु की आवश्यकता होगी?

(iii) कर्नाटक में यह बहुतायत से मिलती है, क्या आप भारत के किन्हीं अन्य दो राज्यों के नाम सुझा सकते हैं जहाँ यह फसल उगाई जाती हो?

- नामों आदि की जानकारी बार–बार पूछी जाती है, इसमें कोई विविधता नहीं है। यह उजागर करता है कि भूगोल को 'सामान्य ज्ञान' के जैसा अधिक माना गया है, बजाय विज्ञान की ऐसी शाखा के जिसमें अवलोकन, वर्गीकरण, गणना, मापन, परीक्षण आदि विभिन्न कौशल शामिल रहते हैं।
- प्रश्न पत्रों में ऐसे प्रश्नों का अभाव खटकता है जो रचनात्मकता, ज्ञान का उपयोग करने, और विश्लेषण करने तथा समीक्षात्मक ढंग से सोचने के कौशलों का मूल्यांकन करते हैं।
- पूछी गई जानकारी बहुत सीधी है और विद्यार्थी के लिए अपने उत्तर में नवीनता लाने की कोई गुंजाइश नहीं है।

उपरोक्त विश्लेषण से हमने क्या सीखा?

यह प्रश्न पत्र शिक्षण की एक ऐसी शैली का समर्थन करता है जो जानकारी (ज्यादातर तथ्यों और आँकड़ों) के सीधे प्रसारण तक सीमित है।

इस प्रकार का प्रश्न पत्र किसी विद्यार्थी को हतोत्साहित कर सकता है, क्योंकि यदि वह पूछी गई जानकारी/नामों से अनभिज्ञ हो तो उसके पास उत्तर देने के लिए कुछ नहीं होता। छात्रों के पास सोचने के लिए और स्वयं अपने सम्भावित उत्तर देने के लिए कोई गुंजाइश नहीं रहती। कुल मिलाकर इन मूल्यांकन उपकरणों से यह प्रभाव पैदा होता है कि इन प्रश्न पत्रों का एक ही उद्देश्य है कि कोई बच्चा कितनी सुगमता से उत्तीर्ण होने के अंक हासिल कर सकता है।

यह चुभने वाली पूछताछ कि 'क्या यह (मूल्यांकन औजार) इस विषय की मौजूदा शोचनीय स्थिति के लिए जिम्मेदार है?' ऐसे कई मुद्दों को सुझाती है जिनका सम्बन्ध स्कूल और उसके भागीदारों से है जैसे :

1. सभी भागीदारों में एनसीएफ के बारे में कोई भी ज्ञान और समझ पूरी तरह से नदारद है – इसमें स्कूल का नजरिया, शिक्षकों और अभिभावकों द्वारा इस्तेमाल की जाने वाली शिक्षण पद्धति भी शामिल होती है।
2. विषय के प्रति स्कूल/समुदाय/अभिभावकों/विद्यार्थियों की रुचि और रवैया निराशाजनक है।

यह विषय (भूगोल) केवल परीक्षा के लिए ही पढ़े जाने वाले प्रश्न पत्र के रूप में रहता है, जहाँ पर विद्यार्थी प्रश्न पत्र का उत्तर केवल जानकारी को याद कर लेने और फिर उसे उगल देने के द्वारा ही देते हैं। इसलिए यह ऐसी प्रक्रिया है जिसमें कोई कौशल विकसित नहीं होता; कोई ऐसा ज्ञान नहीं जो व्यक्ति को बुद्धिमान बनाता हो, दिमाग की कोई रचनात्मकता जाग्रत नहीं होती, दिमाग के क्षितिज का कोई विस्तार नहीं होता, वास्तव में किसी भी प्रकार से आनन्ददायक सीखना घटित नहीं होता।

ऐसे हालातों के लिए क्या केवल प्रश्न पत्र ही एकमात्र कारण हैं, या पाठ्यपुस्तक का पूरा का पूरा स्वरूप जिसमें छपाई, तस्वीरें और विषयवस्तु शामिल हैं, तथा शिक्षण पद्धति, स्कूल, शिक्षकों, बोर्डों, अभिभावकों और सर्वसाधारण द्वारा दर्शाए गए रवैये, सभी को दोष दिया जाना चाहिए – यह एक प्रासंगिक सवाल है।

एनसीएफ का दृष्टिकोण क्या है?

''बच्चों के अनुभवों, उनकी आवाजों और सीखने की प्रक्रिया में उनके सक्रिय जुड़ाव की प्रमुखता को पहचानना।

स्कूल में सीखने के अनुभव ऐसे होना चाहिए जो ज्ञान के निर्माण का रास्ता बनाएँ, रचनात्मकता को बढ़ावा दें और आनन्द का स्रोत बनें, न कि तनाव का।

पाठ्य सामग्री के सीखने–सिखाने के लिए स्वयं करके देखने के अनुभवों और प्रोजेक्ट आधारित पद्धतियों की, तथा पर्यावरण, शान्ति उन्मुख मूल्यों, लिंग आदि से जुड़ी चिन्ताओं और मुद्दों को समझने की जरूरत होती है।

एनसीएफ में प्रस्तावित दृष्टिकोण जहाँ विशेष विषय प्रसंगों (थीम्स), जैसे पानी के सन्दर्भ में समेकित दृष्टि पर जोर देता है, वहीं वह अलग–अलग विषयों की विशिष्ट पहचान को भी स्वीकारता है।

सामाजिक विज्ञान में पाठ्य चर्चा ऐसी गतिविधियों और प्रोजेक्टों पर केन्द्रित रहती है जो विद्यार्थियों की समाज और उसकी संस्थाओं के परिवर्तन और विकास को समझने में मदद करते हैं।

परीक्षा तंत्र में विषयवस्तु–आधारित परीक्षण को बदलकर मूल्यांकन को समस्याओं के समाधान और योग्यता पर आधारित करने की आवश्यकता है।''

एनसीएफ में प्रस्तुत किया गया उद्देश्य क्या है?

- प्राकृतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक पर्यावरण के बीच सम्बन्धों को निर्धारित करने और समझने में बच्चों को प्रशिक्षित करना।
- ऐसी समझ विकसित करना जो अवलोकनों और दृष्टान्तों पर आधारित हो, और जिए गए अनुभवों तथा जीवन के भौतिक, जैविक, सामाजिक और सांस्कृतिक पहलुओं से ली गई हो, न कि अमूर्त अवधारणों से।
- बच्चों की, विशेष रूप से प्राकृतिक पर्यावरण (जिसमें लोग और निर्मित वस्तुएँ शामिल रहते हैं) के सम्बन्ध में, जिज्ञासा और रचनात्मकता पोषित करना।
- पर्यावरण से सम्बन्धित मुद्दों के बारे में जागरूकता विकसित करना।

सभी भागीदारों पर इस परिकल्पना को साकार करने की महती जिम्मेदारी है। पाठ्यक्रम इस परिकल्पना के अनुरूप होना चाहिए और शिक्षण पद्धति को इसका अनुसरण करना चाहिए।

इसे लागू करने में बोर्ड, स्कूल तथा शिक्षक सभी बहुत निर्णायक भूमिका निभाते हैं। बोर्ड पाठ्यक्रम के साथ ही पाठ्यपुस्तक और अन्ततः मूल्यांकन के औजार भी निर्धारित करता है, जबकि शिक्षक

के साथ–साथ स्कूल इस पूरी परिकल्पना और उद्देश्यों को कक्षा में साकार करने का सबसे महत्वपूर्ण कार्य करता है।

एनसीएफ को सफलतापूर्वक लागू करने की धुरी 'शिक्षण पद्धति' है, लेकिन वास्तव में बोर्ड, स्कूल तथा शिक्षक सभी एनसीएफ से दूर ही हैं।

अभी स्कूल, कक्षा या बोर्ड के प्रश्न पत्र में एनसीएफ के लिए कोई जगह नहीं है। शिक्षकों के किसी भी प्रशिक्षण में कभी भी उनका इस दस्तावेज और इसकी विषयवस्तु से परिचय नहीं करवाया जाता। इसलिए शिक्षण पद्धति और मूल्यांकन के औजारों का लक्ष्य केवल अंक प्राप्त करना होता है, और इस विषय को जीवन के लिए अप्रासंगिक और मृत समान मान लिया जाता है; और माता–पिता तथा सर्वसाधारण का दृष्टिकोण भी इस शोचनीय स्थिति को बढ़ावा देते हैं।

हमें जागने की और लम्बे समय से आवश्यक इस परिवर्तन को लागू करने की जरूरत है। कभी न करने से तो देर से ही करना बेहतर है।

सन्दर्भः

1. रवीन्द्रनाथ टैगोर, व्यक्तित्व, 1917: 116.17
2. एकडेमिक्स एण्ड पेडागोजी समूह, अज़ीम प्रेमजी फाउण्डेशन द्वारा कर्नाटक एसएसएलसी प्रश्नपत्र का विश्लेषण, 10.9.2009
3. एनसीएफ – 2005

तपस्या साहा *ने औद्योगिक भूगोल में डॉक्टरेट किया है और वे बंगलौर और कोलकाता में भूगोल शिक्षक रही हैं। वे द टाइम्स ऑफ इंडिया के ''न्यूज़ इन एजुकेशन'' के एक खण्ड ''माइण्ड फील्ड'' से भी सम्बद्ध हैं। वे फिलहाल अज़ीम प्रेमजी फाउण्डेशन में एकडेमिक्स एण्ड पेडागोजी विशेषज्ञ के तौर पर काम कर रही हैं। उनसे इस tapasya@azimpremjifoundation.org ईमेल पर सम्पर्क किया जा सकता है।*

24 परीक्षाएँ : विश्वसनीयता और पवित्रता बहाल करने की आवश्यकता

आर. एस. कृष्णा

मेरा यह मानना है कि भारत के विभिन्न स्कूलों, परीक्षा बोर्डों और विषयों में मूल्यांकन मूलतः एक औपचारिकता भर होते हैं। उनकी प्रमुख चिन्ता छात्रों का बेहतर प्रतिशत के साथ उत्तीर्ण होना सुनिश्चित करना प्रतीत होती है। दूसरे, विषय की समझ और कौशलों के परीक्षण की आवश्यकता के बजाय मूल्यांकन के सर्वोपरि मानदण्ड, परीक्षाओं के तनाव और डर को कम से कम करने की मनोवैज्ञानिक चिन्ताओं से निर्धारित होते प्रतीत होते हैं। यहाँ मूल्यांकन से मेरा तात्पर्य लघु–परीक्षा/परीक्षा का प्रश्नपत्र तैयार करने की और उसका आकलन करने की, जिसमें या तो अंक या ग्रेड (स्तर) दिए जाते हैं, दोनों प्रक्रियाओं से है।

हालाँकि उपरोक्त तस्वीर सभी विषय–क्षेत्रों की हो सकती है, लेकिन यह दृश्य तब और भी अधिक निराशाजनक दिखाई देता है जब बात सामाजिक विज्ञान की आती है जिसमें इतिहास, भूगोल, राजनीति विज्ञान (या सिर्फ राजनीति) और अर्थशास्त्र के विषय शामिल होते हैं। ऐसा लगता है कि ये विषय, खासकर इतिहास और राजनीति, लगातार ''अप्रासंगिक'', ''रटने पर केन्द्रित'', ''एक–आयामी'' होने की कटु आलोचनाएँ झेलते रहने के कारण, परीक्षाओं को ''सरल'' और ''अधिक अंक ला सकने'' वाली बनाकर अपना उद्धार करने की कोशिश करते हैं। आजकल जब इतने अधिक छात्र 90 प्रतिशत से ऊपर अंक और ए ग्रेड प्राप्त करते हैं, तो वह अपने आप में एक कहानी कहता है। पर छात्रों की इतिहास या राजनीति की समझ का इससे भी अधिक सच्चा संकेत हमारे युवाओं – समाज, तथा राजनीति के प्रति उदासीन, और नागरिकता के गुणों से रहित – के सामाजिक और राजनैतिक आचरणों से मिलता है। इस विरोधाभास के बारे में कुछ और कहने की जरूरत नहीं है, यह वास्तव में एक त्रासदी है[1]।

इस लेख में, मैं तीन शैक्षणिक बोर्डों, तमिलनाडु मैट्रिकुलेशन बोर्ड (टीएनएमबी), सेन्ट्रल बोर्ड ऑफ सैकण्ड्री एग्ज़ामिनेशन्स (सीबीएसई) और कौंसिल फॉर इण्डियन स्कूल सर्टिफिकेट एग्ज़ामिनेशन्स (सीआईसीएसई या संक्षेप में आईसीएसई), द्वारा संचालित सार्वजनिक परीक्षाओं में प्रयोग की जाने वाली मूल्यांकन प्रक्रियाओं के बारे में कुछ बड़े प्रश्न उठाने की कोशिश करूँगा। हालाँकि मेरे द्वारा उठाए जाने वाले कई मुद्दे और प्रश्न सामाजिक विज्ञान के सभी विषयों पर लागू हो सकते हैं, किन्तु इतिहास और राजनीति पढ़ाने के मेरे अनुभव को देखते हुए, मेरी आलोचना मुख्य रूप से इन्हीं विषयों तक सीमित रहेगी।

मेरी दृष्टि में मूल्यांकन, परीक्षाएँ, परीक्षण, आकलन ...आदि एक बड़ी तस्वीर का हिस्सा हैं, जिसे पाठ्यचर्या परिदृश्य कहा जा सकता है, और जिसके सन्दर्भ में हमें पाठ्यपुस्तकों और शिक्षण के विभिन्न पहलुओं पर गौर करने की, और लघु–परीक्षाओं तथा परीक्षाओं में पूछे जाने वाले प्रश्नों की समीक्षा करने की आवश्यकता है। शायद सीबीएसई को एक हद तक अपवाद भी मान लें, तो टीएनएमबी और आईसीएसई द्वारा आयोजित की जाने वाली परीक्षाएँ हमारे स्कूलों में सामाजिक विज्ञान की पढ़ाई के तरीकों की काफी दयनीय और हास्यास्पद स्थिति को प्रतिबिम्बित करती हैं। विडम्बना यह है कि इतिहास और राजनीति की पाठ्यपुस्तकें (जिनका एकमात्र अपवाद एनसीईआरटी की पुस्तकें हैं जो सीबीएसई से सम्बद्ध स्कूलों के लिए नियत रहती हैं, किन्तु इसके बावजूद सीबीएसई को निर्दोष नहीं माना जा सकता, जैसा कि मैं बाद में उल्लेख करूँगा) और उनके शिक्षण के तरीके, दोनों ही जैसे बीते हुए युग में फंसकर रह गए हैं। मेरा मानना है कि ये ही बोर्ड परीक्षाओं के घिसे–पिटे स्वरूप और जड़ता के लिए जिम्मेदार हैं। उदाहरण के लिए, यदि हम टीएनएमबी की कक्षा 10 की इतिहास और नागरिक शास्त्र की परीक्षाओं की बात करें तो मुश्किल से ही कोई ऐसा प्रश्न (वस्तुनिष्ठ, ''शीर्षक प्रश्न'', संक्षिप्त उत्तर वाला या निबन्धात्मक प्रश्न) होगा जो परीक्षा के तीनों आर, अर्थात रीड (पढ़ना), रिकॉल (स्मरण करना) और राइट (लिखना), वाले प्रतिरूप पर आधारित न हो। हालाँकि टीएनएमबी परीक्षा का घोषित ब्ल्यू प्रिन्ट यह दावा करता है कि पूछे जाने वाले 41 प्रश्न ज्ञान, उसके प्रयोग, कौशल और समझ पर आधारित हैं, सिर्फ एक भोला व्यक्ति ही उनकी बातों पर विश्वास करेगा। अगर पिछले पाँच वर्षों के प्रश्नपत्रों को देखें तो एक भी ऐसा प्रश्न सामने नहीं आता जो किसी छात्र से कुछ विचार, वास्तविक विश्लेषण या मौलिकता की माँग करता हो।

इसी प्रकार, आईसीएसई भी किसी तरह से अलग नहीं है। जब कोई इसके इतिहास और नागरिक शास्त्र के करीब एक दशक के प्रश्न पत्रों पर गौर करे तो, अगर उसे धक्का न भी लगे, वह अचम्भित अवश्य होगा कि यह बोर्ड, जो अपनी एक विशिष्ट पहचान (ब्राण्ड इक्विटी) होने का दावा करता है जिसके कारण देशभर में कुछ सबसे कुलीन, विशिष्ट, सराहे गए और जाने–माने स्कूल उससे सम्बद्ध हैं, भी टीएनएमबी के समान ही हास्यास्पद उदाहरण पेश करता है। क्योंकि इसके प्रश्न पत्रों का स्वरूप भी करीब–करीब

वैसा ही रहता है। प्रश्न भी कई बार वैसे ही होते हैं और परीक्षा का जोर मूलतः छात्रों की रटने की क्षमता का परीक्षण करने पर दिखता है[2]।

अब सीबीएसई की बात करें, तो यहाँ परिदृश्य थोड़ा बदला हुआ दिखता है। हमें यहाँ सिर्फ याद करने और रटे हुए को लिख देने से हटकर छात्रों की समझ और उसके प्रयोग करने की क्षमता के परीक्षण का कुछ प्रयास जरूर दिखाई देता है। यद्यपि, पिछले अकादमिक वर्ष से, कपिल सिब्बल के कक्षा 10 की अन्तिम परीक्षा को स्वैच्छिक बनाने जैसे उदारवादी कदम से प्रेरित होकर, सीबीएसई ने कुछ परिवर्तन किए हैं। लेकिन उससे पहले के चार वर्षों के प्रश्न पत्रों का निरीक्षण करें तो सीबीएसई महत्वपूर्ण दिनांकों, नामों और घटनाओं को स्मृति से दोहराने के तरीके से छुटकारा पाने में नाकाम रहा है। दूसरी (और हकीकत को अधिक प्रगट करने वाली) बात है कि सीबीएसई में अंक देने की पद्धति यह सुनिश्चित करती है कि करीब 80 प्रतिशत प्रश्न ''सरल''और ''औसत'' के बीच होना चाहिए; ''कठिन'' प्रश्न 20 प्रतिशत से अधिक नहीं होना चाहिए![3] तीसरी बात है कि सीबीएसई द्वारा हाल ही में लागू किए गए समग्र और सतत मूल्यांकन (सीसीई) में 60 प्रतिशत भारिता (वेटेज़) सामाजिक विज्ञान के सभी विषयों को मिला कर दिया जाता है, जिसे वे योगात्मक मूल्यांकन कहते हैं। योगात्मक मूल्यांकन अन्तिम बोर्ड परीक्षाओं की भाँति होते हैं। शेष भाग को निर्माणात्मक मूल्यांकन कहा जाता है जिसमें लघु–परीक्षाएँ, विभिन्न प्रोजेक्ट, नियत कार्य, गृह कार्य, कक्षा कार्य आदि शामिल रहते हैं जिन्हें दैनिक, साप्ताहिक, पाक्षिक और मासिक आधार पर किया जाना रहता है[4]। देखने में ये प्रगतिशील और विश्वसनीय गतिविधियाँ लगती हैं। किन्तु मेरा तर्क है कि ये अध्ययन को समृद्ध बनाने की दृष्टि से नहीं उपजतीं बल्कि मोटे तौर पर इनका उद्देश्य छात्रों का तनाव दूर करना और परीक्षाओं के डर और दबाव को हटाना होता है[5]। (यह अलग बात है कि इस प्रक्रिया में शिक्षक अधिक तनाव में रहते हैं और उनका बहुत सा बहुमूल्य समय विभिन्न प्रकार के आँकड़ों को तैयार करने, उन्हें दर्ज करने और इकट्ठा करने में निकल जाता है)[6]।

पर छात्रों को तनाव से मुक्त करने और उनके मन से परीक्षा का डर निकालने की चिन्ताएँ सीखने के साथ कतई न्याय नहीं कर पातीं। विषय की ज्ञानमीमांसा की जटिलता और गहनता से समझौता करके, हम न केवल परीक्षाओं को मजाक बना देते हैं, बल्कि स्वयं विषय, सीखने और स्कूली पढ़ाई को भी मजाक बना देते हैं। अनेक लोगों द्वारा समवेत स्वर में परीक्षाओं की भयावह तस्वीर पेश किए जाने से, यदि दूसरे विषयों को नहीं, तो कम से कम इतिहास और राजनीति जैसे विषयों की स्वाभाविक चुनौती, आकर्षण, सुन्दरता और प्रतिष्ठा को क्षति पहुँची है।

एक स्तर पर मैं यह भी कहना चाहता हूँ कि सीबीएसई की परीक्षाओं के स्वरूप ने इतिहास और राजनीति विषयों पर सर्वाधिक कल्पनाशील और विचारवान पाठ्यपुस्तकों के साथ कतई न्याय नहीं किया है। एनसीईआरटी की इतिहास और राजनीति की पाठ्यपुस्तकों का उद्देश्य छात्रों को इस बात की प्रतीति कराने में मदद करना है कि इतिहास सिर्फ दिनांकों, घटनाओं और नामों तक सीमित न रहकर और भी बहुत कुछ होता है। ये पुस्तकें अपने दृष्टिकोण में कई परतों वाली और विषय–प्रसंगों (थीम्स) पर अधिक जोर देने वाली हैं। सभी प्रसंगों का स्वरूप अधिक खोजपरक है और उन्हें जानबूझ कर खुला छोड़ा गया है ताकि शिक्षक और छात्र दोनों ही उन पर बहस कर सकें।[7] इसलिए ऐसे मामले में परीक्षाएँ अधिक कल्पनाशीलता और गहराई की माँग करती हैं, कि वे ऐसी हों जो छात्रों को अन्तर्दृष्टि, ज्ञान और गहरी समझ को दर्शाने वाले उत्तर देने के लिए उकसाएँ। पर अफसोस! जब कोई सीबीएसई के प्रश्न पत्रों की एनसीईआरटी की पाठ्यपुस्तकों से तुलना करता है, तो सीबीसीई की परीक्षाओं का स्वरूप एकदम साधारण और नीरस दिखता है।[8] दूसरी तरफ़, अगर हम आईसीएसई या टीएनएमबी[9] द्वारा निर्धारित किन्ही भी पाठ्यपुस्तकों को देखें, तो किसी को इस बात के लिए माफ किया जा सकता है अगर उसे ये पाठ्यपुस्तकें कुँजियों (गाईडबुक) की तरह दिखाई देती हों!! सभी अध्यायों को साफ–सुथरे कारणों, विवरणों और निष्कर्षों के प्रतिमान के अनुसार वर्गीकृत किया गया है। इनमें कैसे और क्यों पर बहुत कम ध्यान दिया गया है, और जब इन्हें प्रस्तुत भी किया गया है तो दिए गए तर्क साफ–सुथरे ढंग से वर्णित, निश्चित और अपनेआप में पूर्ण हैं। इनका उद्देश्य, जैसा मैंने पहले कहा है, मुख्य रूप से इन्हें आसानी से याद करने और इस प्रकार अधिक अंक पाने में मदद करना है।

अन्ततः किसी भी परीक्षा/मूल्यांकन का स्वरूप बदलना दो चीजों पर निर्भर करता है – एक, पाठ्यपुस्तकों में बदलाव और दूसरा तथा अधिक महत्वपूर्ण, शिक्षणपद्धति में बदलाव। एनसीईआरटी ने गुणवत्ता की दृष्टि से बच्चों को इतिहास और राजनीति की अधिक समृद्ध समझ देने के लिए अपना कर्तव्य निभाया है। पर, अन्तिम विश्लेषण में बच्चों की सहायता करने की जिम्मेदारी शिक्षकों की होती है कि वे कक्षा में किस प्रकार से विषय की चर्चा प्रारम्भ करते हैं। जरूरत है इतिहास और राजनीति की गहरी और ठोस समझ रखने वाले शिक्षकों की, जो समाज को उसके भूतकाल के दौरों और वर्तमान में सुनिश्चित रूपों में न देखकर एक प्रक्रिया के रूप में देखते हैं। जिसको समझने में वे उपयुक्त गतिविधियों, कक्षाओं में चर्चा आदि से छात्रों की मदद कर सकते हैं, ताकि वे अर्थशास्त्र,

संस्कृति, राजनीति के परस्पर छूनेवाले पहलुओं की खोज कर सकें और यह भी कि किस तरह ये हमारी पहचान और दृष्टिकोण को निर्धारित करते हैं। दुख की बात यह है कि इस स्थिति में सुधार और नीति परिवर्तन नहीं हो रहे हैं। शहरी भारत में अध्यापन वह व्यवसाय है जिसमें अधिक लोग नहीं जाना चाहते हैं, क्योंकि इसमें सबसे कम वेतन मिलता है, और इसका उपहास उड़ाया जाता है और निन्दा भी की जाती है, इसलिए यह आश्चर्य की बात नहीं है कि शिक्षण में सबसे अच्छी प्रतिभाएँ यहाँ नहीं मिलतीं। परन्तु, ग्रामीण हिस्सों में परिस्थितियाँ भिन्न हैं। वहाँ मुद्दा शिक्षकों की तैयारी में और उन्हें प्रेरित करने में कमी का अधिक है।

> *पर छात्रों को तनाव से मुक्त करने और उनके मन से परीक्षा का डर निकालने की चिन्ताएँ सीखने के साथ कतई न्याय नहीं कर पातीं। विषय की ज्ञानमीमांसा की जटिलता और गहनता से समझौता करके, हम न केवल परीक्षाओं को मजाक बना देते हैं, बल्कि स्वयं विषय, सीखने और स्कूली पढ़ाई को भी मजाक बना देते हैं।*

इस बीच, हमारे पास कुछ ऐसे शिक्षक और स्कूल जरूर हैं, जो परीक्षाओं को अधिक चुनौतीपूर्ण और सार्थक बनाने की कोशिश करते हैं। परन्तु, परीक्षाओं की प्रकृति के अत्यधिक केन्द्रीकृत होने और इनमें दिए जाने वाले ग्रेड या अंकों पर सभी के द्वारा इतना अधिक भरोसा किए जाने के कारण, इस तरह की नवीनता और प्रयोग को दरकिनार कर दिया जाता है। और ध्यान एक बार फिर 'परीक्षा' की तैयारी पर और उच्च प्रतिशत के साथ उत्तीर्ण होना सुनिश्चित करने पर केन्द्रित हो जाता है। हम यह मान सकते हैं कि सीसीई के तहत सीबीएसई न सिर्फ अन्तिम परीक्षाओं[10] के महत्व को कम करने का बल्कि विकेन्द्रीकरण करने का भी प्रयास कर रहा है। डाटा शीट/रिपोर्ट कार्ड को भरने वाली कई टिप्पणियों से यह पता लगता है कि बच्चे के विकास के लिए इनमें गैर तार्किक–गणितीय बुद्धि और भावनात्मक पहलुओं का समावेश कर लिया गया है। फिर भी इस प्रक्रिया में संज्ञानात्मक मानदण्डों को इस सोच के अनुसार ही तोड़–मरोड़ लिया जाता है कि 'परीक्षा उत्तीर्ण कर लेना आसान काम होना चाहिए'। इसके अतिरिक्त, हर मानदण्ड के निर्धारण में, जिसमें इन मानदण्डों को दिए जाने वाली भारिता (वेटेज़) भी शामिल है – बजाय इसके कि शिक्षकों को अपने स्वयं के मानदण्ड तय करने की स्वतंत्रता दी जाए – बोर्ड ने एक बार फिर विकेन्द्रीकरण की अवधारणा का मजाक बनाया है। सीसीई के लिए शिक्षकों की मार्गदर्शक पुस्तिका, इतने अधिक निर्देशों से भरी है कि यह 'एक–शिक्षक–को–हर–चीज–बताई–जाए' और 'शिक्षकों–को–कुछ–भी–पता–नहीं' की शैली में लिखी गई प्रतीत होती है। मूल्यांकन को जाँच सूचियों (चेक लिस्ट), सैंकड़ों टिप्पणियों, उपाख्यानात्मक टिप्पणियों और पता नहीं किस किस चीज के जरिए बहुत वैज्ञानिक और वस्तुनिष्ठ बनाने की चिन्ता में अस्पष्टता के तत्व को कम करके आँका गया है, जो कि समसामयिक प्रबन्धन संवाद में शायद एक घृणित वस्तु[11] है। किन्तु मुझे लगता है कि कई स्तरों पर सीखना अस्पष्ट होता है, और 'वैज्ञानिक' आँकड़ों को पैदा करने की आशंका सहज बोध के उस तत्व को दूर कर देती है, जो मुझे लगता है कि शिक्षण–अध्ययन में एक महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है। हालाँकि कुछ स्तरों पर उनका इरादा कक्षाओं में होने वाली पढ़ाई और चर्चाओं को समृद्ध और गहन बनाना रहा है, लेकिन ये उपाय शिक्षकों को आँकड़े इकट्ठा करने के इतने अधिक कागजी कामकाज में फँसा देते हैं कि उन्हें ऐसे शिक्षण के लिए समय नहीं मिल पाता। ऐसे उपाय एक तरफ तो शिक्षकों के स्वयं के विवेक को अवसर नहीं देते जो अन्यथा प्रत्येक छात्र से औपचारिक या अनौपचारिक रूप से बातचीत करने के बाद उसके सीखने की शैली के हिसाब से मूल्यांकन की एक उचित प्रक्रिया बना सकते थे।[12] लेकिन दूसरी तरफ, खासतौर से भारत की स्कूली कक्षाओं में अध्यापन की वास्तविकताओं – संसाधनों की सीमितता, शिक्षकों की उपलब्धता, शिक्षकों की क्षमता और उच्च प्रतिशत अंकों से उत्तीर्ण होना सुनिश्चित करने की बाध्यता – को देखते हुए इसके एक हास्यास्पद प्रहसन बन जाने का डर भी वास्तविक है।

अन्तिम विश्लेषण में, मूल्यांकन में शामिल परिवर्तनशील घटक अनेक हैं और जटिल हैं और प्रत्येक की अपनी कठिनाइयाँ हैं। मैं, न सिर्फ मूल्यांकन बल्कि सम्पूर्ण शिक्षण–अध्ययन प्रक्रिया की साख बहाल करने के लिए शिक्षक समुदाय पर भरोसा करने को तैयार हूँ। यह निश्चित तौर पर ऐसे शिक्षकों के दल पर निर्भर है जो पढ़ाने और छात्रों के साथ काम करने से प्यार करते हैं, और जिन्हें अपने पढ़ाने वाले विषयों से बेहद लगाव होता है, और साथ ही उनके स्कूलों पर भी निर्भर करता है जहाँ इन शिक्षकों पर उनके काम के लिए, और वे उसे किस प्रकार करते हैं, इस बात के लिए भरोसा किया जाता है। लेकिन अगर शिक्षकों पर भरोसा ही नहीं किया जाता तो हमें कभी सबसे अच्छे शिक्षक नहीं मिल पाएँगे और सीखने की प्रक्रिया अपने सभी घटकों के साथ इसका नुकसान भुगतती रहेगी और यह एक तमाशे और त्रासदी (मार्क्स से क्षमा माँगते हुए) के रूप में चलती रहेगी।

सन्दर्भ टिप्पणियाँ

1. 'असफल नागरिकता' के अधिक उदाहरणों के लिए कांति बाजपेयी का द टाइम्स ऑफ़ इण्डिया में 29 मई 2010 को प्रकाशित लेख 'द मिडिल एण्ड अदर क्लासेज़' देखें।

2. पाठ्यक्रम और दिशा निर्देशों पर सिर्फ एक बार दृष्टि डालने से यह स्पष्ट हो जाएगा कि टीएनएमबी और आईसीएसई परीक्षा के प्रश्नपत्र बनाने पर किस प्रकार की पाबन्दियाँ लागू करते हैं। http://www.cisce.org/data/Syllabus%20for%20ICSE%202011/history.pdf और http://www.tn.gov.in/matricsyllabus/blueprint/matric_QandB.pdf पेज 49 देखिए।

3. http://cbse.nic.in/ पर सामाजिक विज्ञान के लिए 'नमूना प्रश्न पत्र और मूल्यांकन योजना' वाला खण्ड देखिए (अकादमिक वर्ष 2010–2011 के लिए इसे कुछ हद तक बदला गया है)

4. वास्तव में कोई बच्चा कक्षा के अन्दर या बाहर जो कुछ भी करता है उसकी जाँच होती है। दिए गए दिशा निर्देशों से ऐसा समझ में आता है कि गृहकार्य और कक्षा–कार्य का भी मूल्यांकन किया जाना है। एक स्तर पर मुझे लगता है कि ऐसा करना अपरिहार्य हो जाता है, क्योंकि और किस तरह कोई किसी छात्र के गृह कार्य और कक्षा कार्य की उपलब्धि का लगातार मूल्यांकन करेगा जैसा कि नई व्यवस्था माँग करती है? इस अर्थ में यह उत्तीर्ण होने के प्रतिशतों को बढ़ाए जाने के सीबीएसई के निहित इरादे के विपरीत लगता है। इस सन्दर्भ में यह समाचार रिपोर्ट देखें: http://timesofindia.indiatimes.com/city/delhi/CBSE-sounds-warning-on-arbitrary-use-of-CCE/articleshow/5587256.cms (द टाइम्स ऑफ इण्डिया, फरवरी 18 / 19, 2010 नई दिल्ली संस्करण)

5. सीबीएसई के अध्यक्ष द्वारा 20 सितम्बर 2009 को सभी सीबीएसई स्कूलों को भेजे गए परिपत्र में सीसीई को लागू करने के लिए दिए गए पहले दो कारण थे : ''तनाव और चिन्ता कम करना'' और ''छात्रों के स्कूलों को बीच में छोड़ने की दर को कम करना''। http://cbse.nic.in/circulars/cir39-2009.pdf पर परिपत्र 39 देखें। दूसरे, जहाँ तक इतिहास और राजनीति की बात है, एनसीईआरटी की पुस्तकें इतिहास और सामयिक राजनीति की बहुत स्वस्थ समझ की वकालत करती हैं। कई शिक्षकों की इन सीमाओं को देखते हुए, कि जब वे स्वयं छात्र थे तब उन्होंने इतिहास को सरलीकृत और राजनैतिक आख्यान के दृष्टिकोण से पढ़ा था, हमें इस बारे में शंका हो सकती है कि उनमें से कितने इन पाठों को सघन और बहुपरतीय ढंग से कैसे पढ़ा सकते हैं, जैसा कि उनसे अपेक्षित है। इस बारे में आगे अध्ययन करने के लिए आप मेरी वैबसाइट पर आमंत्रित हैं:

   http://www.historicalmind.com/2007/07/new-ncert-history-text-books-critique.html इसमें हमारी कक्षाओं में एनसीईआरटी की पुस्तकों के साथ पेश आने वाली समस्याओं के बारे में आगे बातचीत की गई है।

6. अधिक अंकों और ऊँचे प्रतिशत, जहाँ '90 प्रतिशत को उत्कृष्ट की श्रेणी से घटा कर न्यूनतम योग्यता' कर दिया गया है, के प्रति हमारे जबर्दस्त लगाव के बारे में और सन्दर्भ सामग्री के लिए रोबिन्द्र साहा का मेरिट इन अ टाइम ऑफ एक्ट्रावेगेंट मार्किंग, एजुकेशन वर्ल्ड, मार्च 2008 देखें। 'मैंने टॉप किया, मैं प्रथम आया' की सोच को देखते हुए, ग्रेड चाहे वे सांकेतिक हों, निश्चित तौर पर अंकों और प्रतिशतों का स्थान लेने वाले हैं। हो सकता है कि ए से नीचे होने पर उच्चतर माध्यमिक स्कूल में जगह न मिले, इसलिए कम से कम ए तो हासिल करना ही होगा।

7. सुमित सरकार, अ न्यू काइंड ऑफ हिस्ट्री टैक्स्टबुक्स, द हिंदू, 17 अप्रैल 2006।

8. अगर अकादमिक वर्ष 2010–2011 में नए सीसीई मापदण्डों के हिसाब से तैयार नमूना प्रश्नपत्रों को देखें जिनमें बहुवैकल्पिक प्रश्नों को पहली बार शामिल किया गया है तो प्रश्नों का लहजा और स्वरूप ऐसे नहीं लगते जो छात्रों से विश्लेषणात्मक और तार्किक कौशलों की माँग करते हों, जैसा कि दावा किया गया है। कई स्तरों पर परीक्षाओं का स्मरण करके दोहराने वाला स्वरूप वैसा ही है जैसा कि टीएनएमबी और आईसीएसई में। देखें http://www.cbse.nic.in/cce/index.html

9. उमा माहेश्वरी और सैली वर्गीज़, हिस्ट्री एण्ड सिविक्स, मैट्रीकुलेशन, तमिलनाडु टैक्स्टबुक कॉर्पोरेशन, चेन्नई, 2006; ज़ेवियर पिंटो, ई जी मैलय न्यू आईसीएसई, हिस्ट्री एण्ड सिविक्स, पार्ट 2ए नोएडा, 2010

10. कुछ लोग यह भी कह सकते हैं कि अब एक बड़ी परीक्षा के स्थान पर उसके जैसी कई, हालाँकि विभिन्न रूपों वाली परीक्षाएँ, हो गई हैं।

11. मैं यह भी मानता हूँ कि शिक्षा के 'प्रबन्धीकरण' का एक प्रयास किया जा रहा है जिसमें सभी आँकड़े स्प्रैडशीट पर हों और जिन्हें बाजार के हिसाब से बनाया जा सके। इसी प्रकार की राय के लिए देखें स्टीफ़न आल्टर, 'क्लास रूम शॉपिंग – ऑल द मैनेंजमेंट मंबो–जंबो कान्ट मेक एजुकेशन अ रिटेल प्रॉडक्ट', आउटलुक, 27 नवम्बर, 2006।

12. यह तर्क दिया जा सकता है कि शिक्षण और अध्ययन को सिर्फ ऐसा कौशल नहीं माना जा सकता जिसे पाठ योजनाओं, फ्लो चार्ट और चेक

लिस्ट के जरिए मापा जा सके। शिक्षण और अध्ययन एक व्यक्तिपरक अनुभव जैसा अधिक है। यहाँ कोई इस बात से इन्कार नहीं कर रहा है कि सीखे हुए ज्ञान को मापने और उसके मूल्यांकन की आवश्यकता है लेकिन इसके लिए मापदण्ड तय करने का काम स्वयं शिक्षकों पर ही छोड़ दिया जाना चाहिए। देखें http://www.historicalmind.com/2009/06/indian-exams-patently-fraudulent-and.html और http://www.historicalmind.com/2010/05/cbses-continuous-and-comprehensive.html

---

आर एस कृष्णा *पिछले 13 वर्षों से बंगलौर और उसके आसपास के स्कूलों में अध्यापन कर रहे हैं। वे हाल ही में तमिलनाडु के होसूर में टीवीएस एकेडमी चले गए हैं जहाँ वे शोध पर ध्यान केन्द्रित कर रहे हैं। अपने अध्यापन काल में उनका प्रमुख जोर इतिहास अध्यापन को प्रयोगमय और प्रासंगिक बनाने पर रहा है। कक्षाओं में अपने कार्य के आधार पर उन्होंने एक वेबसाइट http://www.historicalmind.com बनाई है जिसमें उन्होंने भारत के स्कूलों के सामने आने वाली प्रमुख चुनौतियों और मुद्दों पर अपने विचारों को भी शामिल किया है। उन्होंने हैदराबाद के केन्द्रीय विश्वविद्यालय से मॉडर्न इण्डियन हिस्ट्री में मास्टर्स और नई दिल्ली के जेएनयू से मॉडर्न इण्डियन हिस्ट्री में एम. फिल की उपाधियाँ हासिल की हैं। उनसे इस krishna@historicalmind.com ईमेल पते पर सम्पर्क किया जा सकता है।*

25 आकलन में प्रोजेक्ट, क्षेत्र कार्य और खोज की भूमिका

श्रीपर्णा

''हर महत्वपूर्ण चीज गिनी नहीं जा सकती, और हर गिनी जा सकने वाली चीज महत्वपूर्ण नहीं होती।''

– अलबर्ट आइंस्टीन

एक अनुभव

सामाजिक अध्ययन का एक पाठ शुरू होता है दस साल की उम्र के छोटे बच्चों की, ग्रामीण महाराष्ट्र की उस पहाड़ी से नीचे की पैदल यात्रा से, जिस पर उनका स्कूल स्थित है। वे नीचे गाँव की ओर जा रहे हैं जहाँ उन्हें उस नदी का अध्ययन करना है जो कई तरह से उनके जीवन का हिस्सा है। उनका काम कक्षा में ही शुरू हो गया था जब उनसे पुस्तकालय में उपलब्ध पुस्तकों से उस नदी के सही–सही मार्ग को चिन्हित करने के लिए कहा गया था। अब उन्हें इससे अधिक नजदीकी सम्बन्ध स्थापित करने का प्रयास करना है: नदी में और उसके आस–पास मौजूद जीव–जन्तुओं (विभिन्न प्रकार की मछलियाँ, चिड़ियाएँ, उभयचर और सरीसृप), और उन मछुआरों के बारे में जानकारी हासिल करना जिनका जीवन इस नदी के इर्द–गिर्द घूमता है। उन्हें एक दिलचस्प तथ्य का पता चलता है कि गाँव में स्थाई तौर पर रहने वाले स्थानीय मछुआरों के अलावा, कुछ ऐसे मछुआरे भी हैं जो हर वर्ष आँध्र प्रदेश से यहाँ आते हैं और पानी में झींगा मछलियाँ और केंकड़े छोड़ते हैं। वे उन्हें कुछ महीने नदी में पनपने देते हैं, और जब वे पूरी तरह बड़े हो जाते हैं तो वे उन्हें पकड़ने वापस आते हैं और फिर उन्हें दूसरे राज्यों में भेज देते हैं और इस तरह उन्हें बड़ा मुनाफा हासिल होता है। इस सुनसान इलाके में इस तरह फल–फूल रहे उद्यम के संचालन की व्यवस्था उन सब बच्चों के लिए एक आश्चर्यजनक रहस्योद्घाटन है। इन प्रवासी मछुआरों के परिवारवालों द्वारा तटों पर लगाए गए अस्थाई नीले तम्बुओं से उनकी इस उद्यमिता की दिलचस्प कहानी के बारे में बहुत कम जानकारी मिलती है, जिसके बारे में पहाड़ी के ऊपर रह रहे लोग भी अब तक अनजान थे। बच्चे इन मछुआरों के घरों में जाते हैं; स्थान परिवर्तन करने के दौरान उनके जीवन, संघर्षों और खुशियों के बारे में पता करते हैं जो किसी भी तरह से कोई पाठ्यपुस्तक नहीं समझा सकती थी। वे यह भी पता करते हैं कि दूसरे राज्य से खास मौसमों में आने वाले इन मछुआरों का स्थानीय लोगों के सामाजिक और आर्थिक जीवन पर क्या असर पड़ता है। कुछ बच्चे मछली पकड़ने के बारे में नैतिक दृष्टि से प्रश्न पूछते हैं, हालाँकि उन्हें यह अहसास है कि अनेक लोगों का जीवन इस पर निर्भर करता है।

इसके बाद, वे नदी पर बने बाँध को नजदीक से देखते हैं, यह देखने के लिए कि वह किस तरह काम करता है। उसके स्थानीय

इंजीनियर से साक्षात्कार करने से उन्हें पता चलता है कि इस क्षेत्र में इस बाँध की क्या आवश्यकता है, इससे कितनी बिजली पैदा होती है, गाँव वालों से हुए संघर्ष की दास्तान, और यह भी कि किस तरह इस बाँध को बनाने के खिलाफ दस वर्षों तक आन्दोलन चलाया गया। अन्त में सभी यह समझ जाते हैं कि बाँध की कहानी इतनी आसान नहीं है। बाँध बनने से आखिरकार लोग विस्थापित हुए थे और उसके कारण एक पूरा गाँव पानी में समा गया था। हालाँकि इंजीनियर उन्हें यह बताने का प्रयास करता है कि विस्थापित लोगों को पर्याप्त रूप से मुआवजा दिया गया था, और इस बाँध को बनाए जाने के फायदे स्थानीय लोगों को हुए नुकसान से कहीं अधिक थे, फिर भी छोटे बच्चे तक यह समझ जाते हैं कि इस कहानी में इसके आगे और भी कई पहलू जुड़े हैं। वे स्थानीय गाँववालों से मिलने का फैसला करते हैं जिनमें से कुछ उनके स्कूल में काम करने वाले कर्मचारी भी हैं। उनसे हुई बातचीत से उन्हें इस कहानी का पूरी तरह से भिन्न पहलू पता चलता है। वह कहानी जिसमें अपना घर और जमीन खोने की, सरकार ने जो वादा किया था वैसा मुआवजा न मिलने की, या फिर उनकी पुरानी जमीन की तुलना में कम गुणवत्ता वाली जमीन मिलने की, नाराजगी और हताशा है। नजदीक बहने वाली नदी से मिली इन नई जानकारियों से उत्साहित होकर छात्र निर्णय करते हैं कि वे अपनी खोज को रिपोर्टों, चित्रों, प्रेरित रेखांकनों और साक्षात्कारों के जरिए बाकी स्कूल के साथ साझा करेंगे।

> *किसी ऐसी गतिविधि को करने का क्या मूल्य है जिसे सही–सही और पर्याप्त रूप से मापा नहीं जा सके? एक ऐसे देश में जहाँ आकलनका इतिहास प्रायः पारम्परिक कागज–कलम वाली परीक्षा का रहा है, यह पूछना स्वाभाविक है कि क्या प्रोजेक्टों, क्षेत्र कार्य और ऐसे अन्य अनुभवों का आकलनकरने की गुंजाइश है?*

इस यात्रा की उपलब्धि को ध्यान में रखते हुए, उस प्रश्न पर विचार करते हुए जो विषय के रूप में लिखने को दिया गया है, मुझे यह अहसास होता है कि मुझे अपनी बात को भी सन्दर्भ से जोड़ना होगा क्योंकि मैं एक ऐसे संसार में रहती हूँ जहाँ हर चीज मापी जाती है।

किसी ऐसी गतिविधि को करने का क्या मूल्य है जिसे सही–सही और पर्याप्त रूप से मापा नहीं जा सके? एक ऐसे देश में जहाँ आकलन का इतिहास प्रायः पारम्परिक कागज–कलम वाली परीक्षा का रहा है, यह पूछना स्वाभाविक है कि क्या प्रोजेक्टों, क्षेत्र कार्य और ऐसे अन्य अनुभवों का आकलन करने की गुंजाइश है? क्या यह आकलन औपचारिक परीक्षाओं से हो सकता है, या फिर हमें और अधिक प्रामाणिक, समेकित और समग्र रूपी आकलन तकनीकों की आवश्यकता है ताकि छात्र के सीखने का ठीक आकलन हो सके?

मूल्य

ऊपर दिए गए अनुभव के सन्दर्भ में विचार करें तो यह सवाल पूछा जा सकता है कि इसने छात्रों के सीखने के अनुभव को किस तरह समृद्ध किया? क्षेत्र भ्रमण से उन्हें एक ऐसा प्रामाणिक अनुभव मिला जिसने उनकी रुचि को जगाया, उन्हें बाँधे रखा और उनकी जिज्ञासा को बढ़ाया। ऐसे अनुभव छात्रों को अपनी कक्षा की बाहर की दुनिया से सम्पर्क करने का, स्वयं चीजों को खोजने का, तथ्यों का विश्लेषण करने (जिसे कई बार भ्रमवश तथ्यों का आशय समझना मान लिया जाता है) का, किसी स्थिति पर विचार करने का, प्रश्नों के जवाब देने का, और अक्सर समस्याओं के मौलिक हल निकालने का अवसर प्रदान करते हैं। इससे उनके सामने लोगों के बहुआयामी दृष्टिकोण भी प्रगट होते हैं।

किसी सामान्य प्रोजेक्ट में, छात्रों के समूह किसी चीज का अन्वेषण करने और उसे समझने के साझा उद्देश्य से साथ काम करते हैं। छात्रों के प्रदर्शन के आकलन का आधार उसके परिणाम की गुणवत्ता, विषयवस्तु की समझ की प्रदर्शित गहराई, और सीखने की अनवरत प्रक्रिया में हुए योगदानों को बनाया जा सकता है। छात्रों का व्यक्तिगत तौर पर आकलन किया भी जा सकता है और नहीं भी। सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि प्रोजेक्ट, छात्रों को अपने स्वयं के विचारों और तर्कों पर मनन करने, आलोचनात्मक ढंग से सोचने, अपने विकल्प चुनने, अपनी राय को सबके सामने रखने और इस तरह बुद्धिमत्तापूर्ण निर्णय लेने के अवसर निर्मित करते हैं। ऐसे अनुभव उन्हें विषयवस्तु की गहरी समझ विकसित करने में भी सहायता प्रदान करते हैं, क्योंकि वे एक प्रत्यक्ष सन्दर्भ से सीख रहे होते हैं। वे ऐसे छात्रों में भी सीखने का उत्साह जगाते हैं जिन्हें कक्षाएँ आमतौर पर बोझिल और अर्थहीन लगती हैं।

सीखने का प्रदर्शन

अनुभवों से सीखे गए ज्ञान को कई गैर–पारम्परिक तरीकों से प्रस्तुत करना सम्भव है: रिपोर्ट, पॉवर–पाइन्ट प्रैजेंटेशन, चार्ट, रेखांकन, कोलाज, निबन्ध, कविताएँ, प्रहसन, मॉडल, स्क्रैप–बुक इत्यादि।

कौशलों का विकास

ऐसे अनुभवों के द्वारा छात्रों में कई कौशल विकसित किए जा सकते हैं: शोध और पूछताछ के कौशल, संवाद और प्रस्तुतिकरण के कौशल, व्यवस्था करने और समय–प्रबन्धन के कौशल, स्वयं के आकलन और मनन के कौशल, समूह में भागीदारी और नेतृत्व के कौशल।

आकलन की रणनीति

एक ऐसे शिक्षक की भाँति जो ऊपर दिए गए अनुभवों का हिस्सा रही है, मैं स्वयं से पूछती हूँ कि क्या मैं छात्रों के सीखने की प्रक्रिया का प्रामाणिक तौर पर आकलन कर पाई थी। इसका उत्तर हाँ तो है, पर यह एक सीमा तक ही सम्भव था।

किसी अन्य गतिविधि की तरह, प्रोजेक्टों और क्षेत्र दौरों का प्रभावी आकलन काफी कुछ पूर्वविचार करने और योजना बनाने पर निर्भर रहता है। इसके लिए हमें गतिविधि के लक्ष्यों और उद्देश्यों की, तथा उन्हें हासिल करने के लिए आवश्यक तरीकों, और उन उपकरणों के बारे में साफ समझ होना चाहिए, जिनका इस्तेमाल हम यह आकलन करने के लिए करेंगे कि वे उद्देश्य पूरे हुए हैं या नहीं। किसी प्रोजेक्ट को प्रारम्भ करने से पूर्व, यह पूछना हमेशा आवश्यक है कि : ''मैं यह क्यों कर रही हूँ, या इसे करने में मेरा लक्ष्य क्या है? मुझे कैसे पता लगेगा कि प्रोजेक्ट सफल रहा है और मैं यह कैसे सुनिश्चित करूँगी कि छात्र उससे सीखें?'' पर, यहाँ इस बात का उल्लेख करना आवश्यक है कि मेरा अपना अनुभव कहता है कि प्रोजेक्ट की प्रक्रिया के दौरान उसके लक्ष्य और उद्देश्य बदल भी सकते हैं और इसके प्रति खुला दिमाग रखने के लिए कुछ लचीलापन जरूरी है।

आकलन की योजना में ही निर्माणात्मक आकलन, जो आपको कार्य की प्रगति के साथ–साथ छात्रों को अपनी प्रतिक्रिया (फीडबैक) देने की सुविधा देता है, और योगात्मक आकलन, जो छात्रों को उनके प्रदर्शन का समग्र आकलन प्रदान करता है, दोनों को शामिल किया जा सकता है। चूँकि बौद्धिक क्षमता विविध प्रकार की होती है, इसलिए आकलन में विविधता का सम्मान करना चाहिए।

> *आवश्यकता इस बात की है कि शिक्षकों को इसके योग्य बनाया जाए कि जब वे स्थानीय, और इसलिए विशिष्ट, सन्दर्भों के अन्वेषण का आकलन कर रहे हों तो वे मानकीकृत टिप्पणियों को उनके अनुसार संशोधित कर सकें या फिर स्वयं की टिप्पणियाँ रच सकें।*

आकलन को उसकी सत्यता, प्रस्तुत विषयवस्तु की गहराई और समझ, सामग्री की जमावट, सोचने और सम्प्रेषण के कौशल, मौखिक और लिखित प्रस्तुतिकरण, विश्लेषण और उपयोग, और अन्त में, किन्तु जो कतई कम महत्वपूर्ण नहीं है, समूह में काम करने के लिए आवश्यक कौशलों, के आधार पर विभिन्न टिप्पणियों के रूप में दर्ज किया जा सकता है।

सीखने के अन्य पहलुओं के लिए इसी प्रकार की टिप्पणियों और मापदण्डों का उपयोग करके हम किसी भी गतिविधि का काफी असरदार ढंग से आकलन कर सकते हैं। आवश्यकता इस बात की है कि शिक्षकों को इसके योग्य बनाया जाए कि जब वे स्थानीय, और इसलिए विशिष्ट, सन्दर्भों के अन्वेषण का आकलन कर रहे हों तो वे मानकीकृत टिप्पणियों को उनके अनुसार संशोधित कर सकें या फिर स्वयं की टिप्पणियाँ रच सकें। किसी बहुआयामी अनुभव को मोटे तौर पर अंकों या ग्रेडों के माध्यम से निरूपित करते हुए किसी छात्र का प्रामाणिक रूप से आकलन करना न सिर्फ असम्भव होगा बल्कि अन्यायपूर्ण भी होगा।

पर, यह मुझे आकलन से लगभग अपरिहार्य रूप से जुड़े मापन के बारे में कुछ दूसरे बड़े प्रश्नों की ओर ले जाता है जिन्हें पूछना सार्थक हो सकता है:

पूछे जाने वाले प्रश्न

- क्या मापन हमेशा बहुत स्थूल होता है? लोगों के रवैयों और दृष्टिकोणों को, तथा संवेदनशीलता, वस्तुपरकता, समानुभूति जैसे गुणों को कोई कैसे नाप सकता है?क्या ऐसी अमूर्त चीजें किसी अनुभव के तुरन्त बाद सामने आती हैं या फिर जीवन में कुछ समय बाद इनके सामने आने की सम्भावना रहती है? आखिरकार चरित्र का विकास एक ही दिन में तो नहीं होता।

- क्या पहले से, पूरी तरह अनुमानित कोई परिणाम हमेशा सम्भव है, या फिर वांछनीय है?यह बात इस मान्यता के साथ जुड़ी है कि किसी पूर्णतया व्यवस्थित योजना से पूर्व अनुमानित परिणाम निकलना सुनिश्चित है। यह धारणा न तो सीखने की प्रक्रिया में निहित विभिन्न कारकों पर ध्यान देती है, और न ही लक्ष्यों और उद्देश्यों को उनके प्रारम्भ में नियोजित स्वरूप से कभी–कभार आगे जाने की कोई गुंजाइश छोड़ती है।

- पूर्वानुमान और सटीक व्यवस्था से सिखाने या सीखने की प्रक्रिया में रचनात्मकता और सहज स्फूर्तता के लिए बहुत कम जगह बचती है। बिलकुल सटीक टिप्पणी पर गौर करते हुए हम अन्ततः इस पशोपेश में पड़ जाते हैं कि क्या वाकई शिक्षण–अध्ययन की प्रक्रिया इतनी रैखिक है?

- कोई इस सोच विचार में भी पड़ सकता है कि क्या हर बात के हिसाब–किताब को इतनी गम्भीरता से ले लिया गया है कि शिक्षक या फिर सीखने वाले की क्षमता के लिए जरा भी अवसर नहीं छोड़ा गया कि वह पूछताछ को वैसी दिशा और गहराई दे सके जैसी वह चाहता है।

- क्या सबसे अच्छी टिप्पणी भी बच्चों के मस्तिष्क में सूचनाओं के ग्रहण किए जाने और समाहित किए जाने के तरीके की जटिलताओं को पकड़ सकती है?कौन जानता है कि सीखने की प्रक्रिया के दौरान बच्चे के मस्तिष्क में क्या चल रहा होता है?

- रचनात्मकता ''आउट ऑफ द बॉक्स (सोचने के बँधे–बँधाए तरीकों से आगे जाकर)''सोचने से जुड़ी है, और टिप्पणी (रूब्रिक) सोचने का एक और ऐसा बँधा हुआ तरीका है जो अनुमानित और वांछनीय परिणामों को निरूपित करने के लिए बनाया गया है।

- क्या आकलन का सबसे अच्छा स्वरूप भी कभी किसी गतिविधि को जायज ठहरा सकता है?क्या हम प्रोजेक्ट को सीखने के ऐसे तरीके के रूप में देखते हैं जो अपने अन्तर्निहित मूल्य के कारण मूल्यवान है, या सिर्फ इसलिए मूल्यवान है क्योंकि सीखने के सबूत के तौर पर इसका पर्याप्त रूप से आकलन किया जा सकता है? अफसोस! हम सीखने की प्रक्रिया को एकदम सही शब्दों में पकड़ने का जितना अधिक प्रयास करते हैं उतना ही उसका जादू और रहस्य गुम होता जाता है!

- एक अधिक दार्शनिक स्तर पर, हम अन्त में, जवाबदेही के साथ राष्ट्रीय जुनून के बारे में पूछ सकते हैं: क्या हम काम के परिणाम का ठीक आकलन करने के लिए नए–नए ढाँचे, जाँचें, तरीके और सटीक उपकरण बनाने की इच्छा को बुनियादी रूप से लोगों में विश्वास के अभाव के संकेत की तरह देख सकते हैं और उनमें सीधा सम्बन्ध जोड़ सकते हैं? कुछ हद तक हिसाब–किताब की आवश्यकता जरूर होती है, लेकिन आकलन की तकनीकों के लिए सूक्ष्म योजनाएँ बनाने को जरूरत से ज्यादा महत्व देने से होने वाले नुकसान को अनदेखा नहीं किया जा सकता।

- अन्त में, जो कतई कम महत्वपूर्ण बात नहीं है, कोई यह भी अवश्य पूछेगा कि आज शिक्षा का उद्देश्य क्या है?क्या शिक्षा का उद्देश्य सिर्फ ''निपुण'' और ''उत्पादक'' कामगार बनाना है या फिर शिक्षा का सारतत्व असीमित रूप से विशाल है? क्या हमारी, हमेशा सीखने का सबूत ढूँढने की कोशिश करने से

सीखने की प्रक्रिया का जादू और चमत्कार अनछुआ बच सकता है?

जिब्रान ने कहा है, ''आप उन्हें अपना प्यार दे सकते हैं किन्तु अपने विचार नहीं। क्योंकि उनके स्वयं के विचार होते हैं। आप उनके शरीर को घर दे सकते हैं लेकिन उनकी आत्माओं को नहीं क्योंकि उनकी आत्माएँ कल के घरों में निवास करती हैं, जिसमें आप नहीं जा सकते, अपने स्वप्न में भी नहीं।''

बच्चों को उनके चारों ओर फैले जीवन के द्वारा दिए जा रहे अनुभवों का सही–सही आकलन करने का प्रयास करते समय हमें हर बच्चे की – बड़ों, जो परिणामों को परिपूर्णता से नियोजित करते हुए प्रतीत होते हैं, के प्रभाव की मदद से या उसके बिना ही – चीजों की अपनी रफ्तार से अपनी समझ विकसित करने की, और अपना वैश्विक दृष्टिकोण रचने की सम्भावित क्षमता के प्रति अपना मस्तिष्क खुला रखने की सख्त जरूरत है। सिर्फ अन्तिम परिणाम के रूप में दिखने वाले और पूर्व अनुमानित सबूत के माध्यम से घटने के बजाय, सीखने का उत्सव उसके मार्ग पर चलने के साथ–साथ घटता है!

अध्ययन के लिए

1. http://jonathan.mueller.faculty.noctrl.edu/toolbox/whatisit.htm- ऑथेन्टिक असैस्मैंट टूलबॉक्स
2. http://www.bie.org. प्रोजेक्ट बेस्ड लर्निंग फॉर द 21स्ट सैंचुरी
3. http://pbl-online.org. प्रोजेक्ट बेस्ड लर्निंग
4. http://online.org/article.asp?issue=9&article=7. करिकुलम फॉर ऐन ऐन्क्वायरिंग माइण्ड
5. http://online.org/article.asp?issue=11&article=7. पर्स्पैक्टिव ऑन टैस्टिंग

श्रीपर्णा *जे.कृष्णमूर्ति फाउण्डेशन स्कूल में विगत 15 वर्षों से सामाजिक अध्ययन और अंग्रेजी का अध्यापन करती रही हैं। वे पाठ्यक्रम के विकास और शिक्षकों के प्रशिक्षण से भी जुड़ी रही हैं। इस समय वे अज़ीम प्रेमजी फाउण्डेशन में एकडेमिक्स एण्ड पेडागोजी समूह में कार्यरत हैं। हाल ही में डिजिटल माध्यम के प्रति उनकी रुचि विकसित हुई है और उन्हें लगता है कि सीखने के रचनात्मक संसाधनों से अध्यापन–कला में बदलाव लाया जा सकता है। उनसे इस* sriparna@azimpremjifoundation.org *ईमेल पर सम्पर्क किया जा सकता है।*

खण्ड - इ

कुछ व्यक्तिगत अनुभव

26 ''अनुपयोगी'' होने का महत्व

धनवन्ती नायक

क्या आपको अपने जीवन का वह समय याद है जब आप एक चीज करना चाहते थे, और आपका परिवार चाहता था कि आप कुछ और करें। आपने इस बात का जबरदस्त प्रतिरोध किया, आपको सुधरने के लिए मजबूर किया गया, आपने फिर विद्रोह किया और कड़वाहट से भरकर आप यह सोचने लगे कि संसार आपके खिलाफ है? क्या आपको दूसरों के द्वारा यह बताया जाना याद है कि जो आप करना चाहते थे वह ''अनुपयोगी'' था? निश्चित ही आपको यह सब याद होगा क्योंकि व्यवहारिक रूप से देखें तो इसी को किशोरावस्था कहते हैं।

मेरे और मेरे कई दोस्तों ने 70 और 80 के दशक की तत्कालीन बम्बई में बड़े होने के दौर में जिस दुनिया का अनुभव किया उसमें सभी तरह के लोग शामिल थे। हमने उनके साथ खुशियाँ मनाना तथा उनके दुख बाँटना सीखा। सब्जी बेचने वाले, घरेलू बाइयाँ, दूधवाले, धोबी, ये सब हमारी देहरी पर आते थे और अपने साथ उस दुनिया को लाते थे जिसे हम उनके किस्से–कहानियों, वार्तालापों और संवादों द्वारा जान पाते थे। हम सार्वजनिक यातायात साधनों से स्कूल जाते थे और रास्ते में हमें ऐसी अन्य चीजों का भी अनुभव होता था, जो संसार में लोगों के साथ व्यवहारिक सम्बन्धों में हमारे लिए, खासतौर पर महिला होने के नाते, उतनी ही महत्वपूर्ण थीं जितनी पढ़ाई। इस प्रकार, स्कूल के बाहर हमें ऐसे किस्से–कहानियों, कविताओं, लोकप्रिय तौर–तरीकों, और विविधता के अनुभवों के जरिए एक अलग प्रकार की शिक्षा मिली; और यह इन बातों को हमारे लिए विभिन्न संस्थाओं और अध्ययनक्षेत्रों में विविध प्रकार की उदारवादी कलाविषयों के अन्तर्गत अवधारणाबद्ध किए जाने के बहुत पहले मिली। इन्हीं के जरिए हमने अपनी दुनिया के साथ और खुदके साथ भी अपने शुरुआती नाजुक सम्बन्ध स्थापित किए।

दुर्भाग्य से, हमारे, शिक्षा की सीढ़ी पर ऊपर चढ़ते जाने के साथ–साथ 'अनुभव की दुनिया' का 'ज्ञान की दुनिया' से अलगाव भी बढ़ता गया, और अन्ततः हम ऐसे ज्ञानाधार के साथ स्नातक और पेशेवर विशेषज्ञ बन गए जिसका किसी भी चीज से कोई नाता नहीं था – संसार और बौद्धिकता के बीच यह दरार बिलकुल पक्की और पूरी थी। हम लोग ऐसे ज्ञान के स्वामी थे जो हवाई था और इसलिए वह किसी भी ठोस व सार्थक कार्य को अन्जाम देने योग्य नहीं था।

पिछले तीन दशकों में दुनिया के बदलने के तरीकों और उनकी संख्या में जबर्दस्त बढ़ोत्तरी हुई है। यह बदलाव एक तरफ तो नई तकनीकों द्वारा लाए गए नए उत्पादों और उनके हमारे जीवन में हर तरफ छा जाने के कारण हुआ है, और दूसरी तरफ मध्यम वर्ग के लगातार बढ़ते एकाकीपन के कारण आया है। यहाँ तक कि अब डाक हमारे दरवाजों की बजाय हमारे डेस्कटॉप्स पर आती है, और डाकिया अब कहीं भी दो बार चिट्ठी नहीं डालता। ज्ञान और अनुभव के इस विच्छेद के नए–नए आयाम और अनेक प्रभाव सामने आए हैं। करुणा की भावना से अब हम अछूते ही रहते हैं; वह हमारी चेतना की दहलीज को निश्चित ही कभी नहीं लाँघ पाती। खण्डित परिवार, आर्थिक असुरक्षा, गरीबी, प्रवासन, हिंसा और झगड़े हमारी रोजमर्रा की शब्दावली का हिस्सा बन गए हैं, फिर भी हम अपने अनुभव में उनके प्रति उदासीन रहते हैं; वे सिर्फ टीवी पर देखने की बातें लगती हैं। गहरे एकान्त के लम्हों में भी हम फेसबुक पर व्यस्त रहते हैं – एकान्त इतना असहनीय लगने लगता है कि हम आभासी समय और स्थान की ऐसी दुनिया में पहुँच जाते हैं जहाँ माउस की एक क्लिक पर हमारे सामने बतियाने के लिए लोगों की लम्बी सूची आ जाती है, भले ही प्रत्यक्ष बात करने की स्थिति में हमारे पास उनसे कहने को कुछ न हो। तो इस प्रकार, नई तकनीकों की मदद से जहाँ आभासी दुनिया में तो हम मिनिट दर मिनिट एक–दूसरे के सम्पर्क में रहते हैं, वहीं दूसरी तरफ हम अपनी अन्तरात्माओं से तथा बृहद दुनिया की वास्तविकताओं से दूर होते जा रहे हैं। वह काव्य, वह साहित्य, वह दर्शन, वह कला, और हाँ, वे लोग, जो हमें ''पूर्णता'' देते थे और हमारे भीतर ही मौजूद किसी गहरे यथार्थ के साथ हमें लयबद्ध किए रखते थे, और साथ ही ऐसे विभिन्न संसारों से हमारा परिचय कराते थे जिनसे हम अविच्छिन्न रूप से जुड़े हुए थे, वे सब लगभग गायब हो गए हैं। हमारी राजनीति और हमारी एकजुटता विज्ञान बन गए हैं; हमारी नैतिकता तो अब बची ही नहीं है।

तो ऐसी दुनिया में, जो निरन्तर हमें एक–दूसरे से अलग करती जा रही है और हमें विविधता का अनुभव नहीं करने देती, उदार कलाविषय और भी महत्वपूर्ण हो जाते हैं। वे व्यक्तियों की हैसियत से बृहद दुनिया के साथ होने वाले हमारे क्रियाकलापों में हमारी मदद करते हैं। वे अन्य विश्वदर्शनों और भिन्न दृष्टिकोणों से हमें परिचित कराते हैं। वे हमें यह भी याद दिलाते हैं कि इंजीनियरों, डॉक्टरों, लेखाकारों, शिक्षकों के रूप में, और निश्चित ही सभी गतिविधियों और पेशों में, और इतना ही विद्वानों के रूप में भी, हमारे जीवन के हर पल हमारे और दुनिया के बीच ऐसे अटूट सम्बन्ध होते हैं जिन्हें अनदेखा करके हम केवल अपना अनिष्ट ही कर सकते हैं। जैसे हर किशोर कथा–साहित्य, काव्य और कला से विचार, समझ और

अनुभव हासिल करता है, उसी प्रकार, तर्क दिया जा सकता है कि, हमारे विज्ञान और उतने ही हमारे जीवन भी मानविकी के विषयों के माध्यम से ही वास्तव में सामाजिक और गहरे अर्थों में मानवीय बनते हैं।

> *तो ऐसी दुनिया में, जो निरन्तर हमें एक–दूसरे से अलग करती जा रही है और हमें विविधता का अनुभव नहीं करने देती, उदार कलाविषय और भी महत्वपूर्ण हो जाते हैं। वे व्यक्तियों की हैसियत से बृहद दुनिया के साथ होने वाले हमारे क्रियाकलापों में हमारी मदद करते हैं। वे अन्य विश्वदर्शनों और भिन्न दृष्टिकोणों से हमें परिचित कराते हैं। वे हमें यह भी याद दिलाते हैं कि इंजीनियरों, डॉक्टरों, लेखाकारों, शिक्षकों के रूप में, और निश्चित ही सभी गतिविधियों और पेशों में, और इतना ही विद्वानों के रूप में भी, हमारे जीवन के हर पल हमारे और दुनिया के बीच ऐसे अटूट सम्बन्ध होते हैं जिन्हें अनदेखा करके हम केवल अपना अनिष्ट ही कर सकते हैं।*

उदारवादी कला विषयों की बृहद भूमिका की सिफारिश अन्य लोगों ने भी की है, और काफी अच्छी तरह की है। इसके पक्ष में दिए गए तर्क हैं कि वे सर्व–संतुलित नागरिक समुदाय विकसित करते हैं, समीक्षात्मक सोच और सार्वजनिक चर्चा को प्रोत्साहित करते हैं और जीवन के संघर्ष में हमारी सिर्फ अपनी ही नहीं बल्कि दूसरों की अभीप्साओं को भी समझने में सहायक होते हैं। इन सभी शानदार खूबियों के बावजूद, जो उदारवादी कला विषयों में मिली शिक्षा से विकसित होती हैं, ये विषय मानो बड़े भाइयों विज्ञान और यांत्रिकी (और सौतेले भाई प्रबन्धन) द्वारा जबरन धकेले जाकर हमारे शिक्षातंत्रों से बाहर किए जा रहे हैं। हमारे युवाओं को और भी कम उम्र में विशिष्ट प्रकार की शिक्षा मिल रही है – इसका सबसे अच्छा (या सबसे खराब, यह आपके दृष्टिकोण पर निर्भर करता है) उदाहरण है कि अब स्नातक–पूर्व स्तर पर ही व्यावसायिक प्रबन्धन में डिग्री प्रदान की जा रही है, जो स्वयं शिक्षा को ही एक मजाक बना देता है। पर ये उदारवादी कला विषय ही हैं जो किसी न किसी तरीके से शिक्षा से बाहर किए जा रहे हैं। जबकि यह साफ दिखता है कि आज हमें उनकी, कम नहीं, ज्यादा जरूरत है।

> *दुर्भाग्य से, कामकाजी दुनिया की आवश्यकताओं की पूर्ति करने के प्रयास में, शिक्षा की दुनिया (या आप कह सकते हैं, विचारों की दुनिया जहाँ ज्ञान का निर्माण होता है) सक्षम बनने के प्रयास में अपने ऊपर सामाजिक रूप से और भी अधिक कटा हुआ पाठ्यक्रम तथा आलोचनारहित शिक्षा पद्धति लागू करके अपने को बेहतर बनाने का प्रयास करती है।*

शिक्षा में सामाजिक विज्ञानों को शामिल करने के बड़े लाभ हैं, लेकिन सामाजिक विज्ञानों को पढ़ाना सरल काम नहीं है। राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा (नेशनल करीकुलम फ्रेमवर्क – एनसीएफ) 2005 के अनुसार एक बड़ी समस्या यह है कि सामाजिक विज्ञानों के शिक्षण में उपयोगितावाद का दृष्टिकोण अपनाया गया है जो व्यक्ति को केवल विकास के एक उपकरण के भाँति देखता है। एनसीएफ इसे बदलकर एक मूल्यपरक दृष्टिकोण अपनाने की सिफारिश करता है ताकि समाज में समता, न्याय और गरिमा के मुद्दों पर जोर दिया जाए जिससे विद्यार्थियों में सामाजिक न्याय के प्रति वास्तविक चिन्ता जागृत हो। पर एनसीएफ यह नहीं बताता कि यह परिवर्तन कैसे लाया जाएगा। हमारे लिए जरूरत इस बात की है कि सामाजिक विज्ञानों सहित विज्ञान के हमारे सभी अध्ययनक्षेत्र गहराई से मानविकी के विषयों से जुड़ें और उनके बीच लुप्त हो चुका सक्रिय आदान–प्रदान फिर से स्थापित हो। मानविकी और सामाजिक विज्ञानों के और गहरे सक्रिय सम्बन्धों के द्वारा ही उदारवादी कला विषय फिर से शिक्षा में प्रासंगिक बन सकते हैं।

आश्चर्य की बात यह है कि उपयोगितावाद और समानतावाद के बीच के संघर्ष की अनुगूँज कार्यक्षेत्र में, जिसे आप चाहें तो ''असली संसार'' भी कह सकते हैं, भी दिखाई पड़ती है। हालाँकि यहाँ मामला उलटा है, और विडम्बना यह है कि उदारवादी कला विषय जिन्हें पाठ्यचर्या में उपयोगितावाद से जरूरत से ज्यादा प्रभावित माना जाता है, यहाँ ज्यादातर किसी काम के नहीं समझे जाते। इसलिए इन विषयों में सर्वोत्तम स्नातकों के लिए भी मुश्किल से कोई नौकरियाँ होती हैं, और अकादमिक क्षेत्र तथा गैर सरकारी संगठनों (एनजीओ) को छोड़कर संगठित जीवन में उनके लिए उन्नति की ओर ले जाने वाला लगभग कोई भी कार्यक्षेत्र नहीं होता। कामकाजी दुनिया अभी भी मानती है कि जिन स्नातकों को वे नौकरी पर रखते हैं वे उनके लिए कुछ अधिक उपयोगी नहीं होते

(मजे की बात यह है कि विज्ञान और तकनीकी स्नातकों के बारे में भी उसका यही खयाल होता है, लेकिन उन्हें किसी तरह संगठनों में खपा लिया जाता है)।

उदारवादी कला विषयों के बचाव में कई दलीलें अन्य विषयों की पृष्ठभूमियों वाले विद्वानों ने भी दी हैं, परन्तु जरा देखें कि ऐसे एक शुभचिन्तक लेकिन भ्रमित टिप्पणीकार, किसी छोटे–मोटे माध्यम में नहीं, बल्कि न्यूयॉर्क टाइम्स में मानविकी विषयों का पक्ष रखने का प्रयास करते हुए क्या कहते हैं: ''आपके पास विराट शक्ति होगी यदि आप दफ्तर में वह व्यक्ति हैं जो एक स्पष्ट और संक्षिप्त मेमो लिख सकता है।'' इस बात को एक तरफ छोड़कर कि कोई भी मानविकी विषयों का अध्ययन इसलिए नहीं करता कि वह अच्छा मेमो लिखने का संदेहास्पद कौशल हासिल कर सके, बड़ा मुद्दा यह है कि कामकाजी दुनिया उदारवादी कला विषयों के विशाल ज्ञानाधार को समेटकर सिर्फ कुछ ''कौशलों'' (बल्कि ''हल्के कौशलों'', जो और भी बुरा है) तक सीमित करके हमारे प्रति बहुत बड़ा अन्याय करती है। कामकाजी दुनिया ''कौशल समूहों'' और ''परिणाम देने वाली'' योग्यता की माँग तो करती है, पर यह नहीं समझती कि इन्हें बेहतर बनाने के लिए सभी को, कम नहीं, और अधिक उदारवादी शिक्षा की जरूरत है।

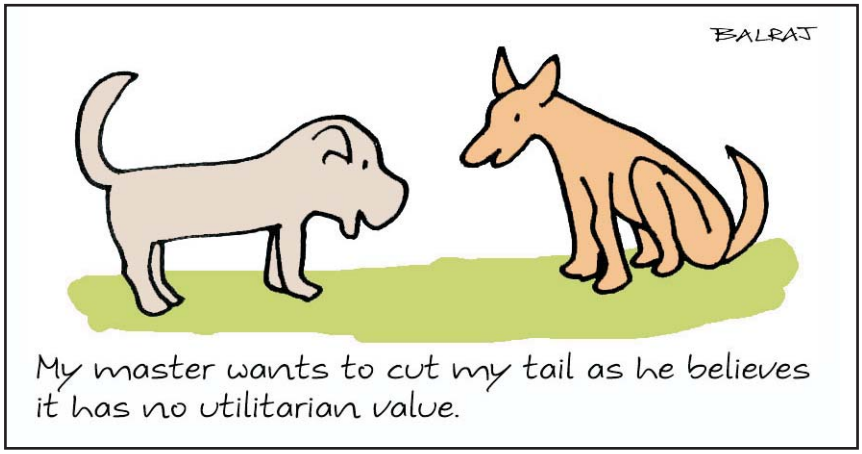

दुर्भाग्य से, कामकाजी दुनिया की आवश्यकताओं की पूर्ति करने के प्रयास में, शिक्षा की दुनिया (या आप कह सकते हैं, विचारों की दुनिया जहाँ ज्ञान का निर्माण होता है) सक्षम बनने के प्रयास में अपने ऊपर सामाजिक रूप से और भी अधिक कटा हुआ पाठ्यक्रम तथा आलोचनारहित शिक्षा पद्धति लागू करके अपने को बेहतर बनाने का प्रयास करती है। इस तरह का संसार से कटा हुआ ज्ञान चिकित्सा, इंजीनियरिंग, प्रबन्धन, विज्ञान आदि क्षेत्रों में भी उतना ही व्यापक है। ये क्षेत्र पेशेवर विशेषज्ञ बनाते हैं जो निश्चित रूप से किसी एक दिशा में ''प्रभावशाली'' होते हैं, पर जिनका ज्ञान कई अन्य दिशाओं से कटा हुआ और अप्रासंगिक होता है – अप्रासंगिक, क्योंकि वे लोगों के व्यक्तित्व की और समाज में सामाजिक की उपेक्षा करते हैं; अप्रासंगिक, क्योंकि जो कुछ उन्हें पढ़ाया गया है उसे उन्होंने बिना किसी आलोचना के स्वीकार कर लिया है; अप्रासंगिक, क्योंकि उन्होंने उस बृहद ढाँचे को नहीं समझा है जिसके भीतर यह ज्ञान निर्मित हुआ है। उन्हें, कम नहीं, अधिक उदारवादी शिक्षा की जरूरत है।

इस सबके बाद भी, संसार को समझने और उसके साथ सक्रिय सम्बन्ध बनाने का संघर्ष करने वाले इन विषयों को उनके शुभचिन्तक ज्यादा से ज्यादा सिर्फ ''कौशलों का समूह'' मानते हैं जबकि उनके आलोचक तो उन्हें ''अप्रासंगिक'' और ''अनुपयोगी'' मानते हैं। कामकाज के विशद संसार को उन प्रयासों का महत्व स्वीकार करने की जरूरत है जो उदारवादी कला विषयों ने समाज को और उसमें हमारी सही जगह – व्यक्तिगत, सामाजिक, नैतिक, और सौन्दर्यबोध की दृष्टि से – को समझने के लिए किए हैं। उन्हें समझना होगा कि समाज एक जटिल तंत्र है और उसे सिर्फ इस या उस चीज तक सीमित कर देना तात्कालिक दृष्टि से लाभकारी हो सकता है, पर अन्ततः उससे हानि ही होगी। सूचना की बाढ़ वाले इस समाज में लोगों की चीजों का मूल्यांकन करने की योग्यता, और साथ ही विभिन्न दृष्टिकोणों की पड़ताल करने और उनका प्रत्युत्तर देने की योग्यता विकसित करने की आवश्यकता अब पहले से कहीं ज़्यादा अनिवार्य हो गई है। वास्तव में, उन लोगों के लिए अधिक सरकारी सहायता जुटाने के लिए, जिन्हें उसकी सबसे ज्यादा जरूरत है तथा बेहतर कानूनों और सुशासन के लिए, कम नहीं, और ज्यादा उदारवादी शिक्षा अत्यावश्यक है।

अब समय आ गया है कि हममें से बृहत्तर उदारवादी कला विषयों के लोग अन्य अध्ययन क्षेत्रों और कार्यक्षेत्रों से गहराई से जुड़ें और उनके ज्ञान को फिर से प्रासंगिक बनाएँ। यह समय है कि हर लेखक, दार्शनिक, इतिहासकार, सामाजिक वैज्ञानिक, कवि और कलाकार आगे आए और अपनी जिम्मेदारी निभाए। यह समय है कि हम जोर देकर इस कामकाजी दुनिया, इस तथाकथित ''असली दुनिया'' को यह बताएँ कि कार्यकुशलता, मापन की शुद्धता और लाभ–क्षमता के नाम पर वे जो करते हैं वह शिक्षा की जरूरतों के लिए अप्रासंगिक है, और निश्चित ही संसार, जैसा हममें से अनेक उसे अनुभव करते और समझते हैं, के लिए भी अप्रासंगिक है।

चाहे हमें जितना भी अप्रासंगिक, भ्रमित करने वाला और रहस्यवादी

बताया जाए, पर उदारवादी कला विषयों की शिक्षा के इस संसार – इस क्रीड़ामय संसार – में ही विचार जन्मते और पोषित होते हैं, आदर्शों का संरक्षण होता है, और प्रासंगिकता और अप्रासंगिकता के सवालों पर व्यापक विमर्श के अन्तर्गत चर्चा और बहस होती है, जो कभी अमूर्त रूप से और कभी सार्वजनिक हित के सन्दर्भ में होती है।

इसी अर्थ में जो सबसे अधिक अकादमिक है वही सबसे अधिक उपयोगी भी है। अब समय है कि इस भावना के साथ ही हम अपनी किशोरावस्था के ''अप्रासंगिक'' और ''अनुपयोगी'' आदर्शों में फिर से आस्था व्यक्त करें क्योंकि शायद आज हमें उन्हीं की जरूरत है।

धनवन्ती नायक *एक लेखिका हैं जिन्होंने शिक्षा की सीढ़ी के विभिन्न स्तरों पर अर्थशास्त्र, मानवशास्त्र और दर्शनशास्त्र की शिक्षा प्राप्त की। उन्होंने हिन्दुस्तानी शास्त्रीय संगीत का भी अध्ययन किया और प्रस्तुति देने वाले कलाकारों के साथ काम किया है। विशेष रूप से उन्होंने समसामयिक नृत्य कलाकारों को सौन्दर्यबोध और सामाजिक सिद्धान्त की शिक्षा दी है। एक शोध सलाहकार की हैसियत से उन्होंने विविध प्रकार के संगठनों और क्षेत्रों में अन्तर्विषयी कार्य किया है। वर्तमान में वे मणिपाल विश्वविद्यालय के मणिपाल इन्स्टीट्यूट ऑफ कम्यूनिकेशन्स की फैकल्टी सदस्य हैं। उनसे इस dhanunayak@yahoo.com ईमेल पते पर सम्पर्क किया जा सकता है।*

27 सामाजिक विज्ञान – जीवन के लिए एक स्प्रिंगबोर्ड

ऋचा भावनम

'समाजशास्त्र' और 'मनोविज्ञान'. इन दो शब्दों के साथ मेरा नाता तब से ही आकर्षण और सम्मोहन से भरा रहा है, जब मुझे उनके बारे में बहुत धुन्धला–सा ही ज्ञान था। दरअसल, समाज के बारे में, लोगों के बारे में तथा उनके दिमागों, भावनाओं और प्रतिक्रियाओं (यह सब कुछ/समूचा ही!) के बारे में अध्ययन करने का ख्याल काफी बेतुका सा है। अपने जीवन के प्रारम्भिक 16 वर्षों तक अँग्रेजी और गणित जैसे विषय पढ़ने के बाद, ये सारे टॉपिक (विषय–प्रसंग) बिखरे हुए व अव्यवस्थित लगे, और कुल मिलाकर किसी एक निर्धारित ढाँचे के माध्यम से देखे जा सकने लायक तो बिलकुल नहीं लगे। हमारे आचरणों और हमारी भावनाओं को कुछ खास सिद्धान्तों और नियमों के द्वारा कैसे समझाया जा सकता है? सच में, नहीं समझाया जा सकता। और जैसा कि मैंने बाद में जाना कि सामाजिक विज्ञान की प्रकृति एकरूपी चट्टान जैसी नहीं होती; क्योंकि उनमें सिर्फ किसी अकेले ऐसे सिद्धान्त का उपयोग नहीं किया जाता जिससे उस कार्यक्षेत्र के सभी लोग सहमत हों और उसका अनुसरण करते हों। सभी के अपने–अपने मत, विचार, प्रश्न और उत्तर होते हैं। सम्भवतः यही वह कारण है कि समाजशास्त्र और मनोविज्ञान, दोनों में ढ़ेर सारे अलग–अलग पहलू समाहित रहते हैं और मेरे लिए यही बहुआयामी प्रकृति सामाजिक विज्ञानों की खूबसूरतियों में से एक है।

इन विषयों की एक और बहुत आकर्षक खूबी थी कि किसी न किसी तरह, इन विषयों का काफी कुछ लेना–देना मनुष्यों के रूप में 'हम' से तथा लोगों के रूप में बस 'आप' से और 'मुझसे' होता है। मुझे मानव जाति के तथा खुद के बारे में और जानने की सनक रही है; और अगर मैं थोड़े निर्णायक ढंग से सोचूँ, तो मुझे लगता है कि हम सभी को किसी न किसी तल पर यह सनक रहती है भले ही वह अलग–अलग हद तक हो। ये दो विषय उस सनक की पूर्ति करते मालूम पड़ते हैं। ऐसा लगता है कि उनमें कोई निजी तत्व है, ऐसा कुछ जो सीधे इस बात से ताल्लुक रखता है कि हम कौन हैं और क्या हैं। चाहे प्रत्यक्ष रूप से हो या परोक्ष रूप से, हम खुद को ही पढ़ रहे थे। विषयों के रूप में खुद को ही पढ़ना और अतीत की ओर देखना – यही वे बातें थीं जिन्होंने मुझे सामाजिक विज्ञान पढ़ने की ओर खींचा।

तकरीबन पिछले दो सालों से मेरे जीवन का काफी बड़ा हिस्सा समाजशास्त्र और मनोविज्ञान में ही बीता है। हालाँकि, मेरी यात्रा तो एक उत्साही 16 वर्षीय लड़की के रूप में शुरू हो गई थी जो इन दो विषयों को लेकर बेहद रोमांचित थी। मुझे कुछ खास अन्दाजा नहीं

> *सामान्यतः किसी भी मुद्दे या घटना को इनमें से सिर्फ किसी एक नजरिए से देखने पर समझा या समझाया नहीं जा सकता। क्योंकि हमेशा ही कोई दूसरा नजरिया ऐसा होगा जिसके अपने सकारात्मक पहलू होंगे और वह भी उतना ही विश्वसनीय लगेगा जितना कि पहला वाला।*

था कि इन दो विषयों की पढ़ाई में क्या–क्या शामिल होगा। मुझे लगा कि हममें से प्रत्येक को एक खास ढंग से सोचने के लिए ढाला गया था। चाहे अचेतन रूप से हो या सचेतन, मेरे अनुभव में यह ढाला जाना महत्वपूर्ण साबित हुआ है – मुख्यतः तो इन विषयों को समझने में, और फिर अपने विचारों को इस बुनियादी समझ से आगे जाने देने के लिए, और इस प्रकार विभिन्न प्रसंगों के बारे में अपने अभिमत और विचार निर्मित करने के लिए। यह प्रक्रिया एक कक्षा में शुरू हुई हालाँकि मुझे इसका स्पष्ट भान नहीं था। इस प्रकार की सोच जो कक्षा में प्रारम्भ हुई, शुरुआत में कुछ ऐसी थी मानो विभिन्न मुद्दों को अलग ढंग से देखने के लिए मैं एक झरोखे में से झाँक रही थी; गहराई से सोचना, बातों को भिन्न रोशनियों के माध्यम से देखना, चीजों को अलग चश्मों से देखना, और सबसे महत्वपूर्ण बात, यह समझना कि किसी भी बात को लेकर हमेशा ही बहुत सारे दृष्टिकोण और नजरिए होते हैं, और उन सभी के अपने मजबूत पक्ष और कमजोर पक्ष होते हैं। सामान्यतः किसी भी मुद्दे या घटना को इनमें से सिर्फ किसी एक नजरिए से देखने पर समझा या समझाया नहीं जा सकता। क्योंकि हमेशा ही कोई दूसरा नजरिया ऐसा होगा जिसके अपने सकारात्मक पहलू होंगे और वह भी उतना ही विश्वसनीय लगेगा जितना कि पहला वाला।

धीरे–धीरे, यह दृष्टिकोण मेरी जिन्दगी के अन्य हिस्सों में भी प्रवेश कर गया। मैंने अपने चारों ओर की दुनिया को इस दृष्टिकोण के माध्यम से देखना शुरू कर दिया। सड़क किनारे बसी झुग्गियाँ, गगनचुम्बी इमारतें, सब्जी का वह ठेला धकाती सब्जी वाली जिस पर उसका बच्चा भी बैठा है, तड़क–भड़क वाले मॉल; मैं इस जगत को उसके तमाम विरोधाभासों के बावजूद थोड़ा–बहुत समझने लगी थी। जल्दी ही, मैंने इस दृष्टिकोण के जरिए ऐसी बातों को देखना

शुरू किया जो मेरे दिल के ज्यादा करीब हैं – घर के कुछ पहलू जिनको मैं हमेशा बिना कोई सवाल उठाए स्वीकार करती आई थी, जैसे कि पितृसत्तात्मक ताकतें, अब मुझे उभर कर अपने सामने दिखने देने लगे थे। पुरुष–प्रधान ढाँचा ऐसा ही एक उदाहरण है। 'गृहणी' की पारम्परिक भूमिका (जो मेरी राय में बहुत मेहनत का काम है) हमेशा मेरी माँ ने ही निभाई है, और मेरे पिता, जैसी कि परम्परा है, परिवार के आर्थिक स्तम्भ– धन– सम्बन्धी मसलों के प्रभारी व्यक्ति – रहे हैं। यहाँ तक कि रिश्ते–नाते और मेरी व्यक्तिगत जिन्दगी से जुड़े अन्य मुद्दे भी तब जीवन्त हो उठे जब मैंने अपने खुद के वैचारिक ढाँचे के माध्यम से उन्हें देखना शुरू किया। इससे मुझे यह समझने में मदद मिली कि किसी भी कहानी के कई पहलू होते हैं। उदाहरण के लिए, अपने तमाम द्वन्दों और असुरक्षाओं से भरे किशोरावस्था के वर्षों के बवण्डर उस वक्त एक सही परिप्रेक्ष्य में आ जाते हैं जब आप दूसरे व्यक्ति के नजरिए से बात को समझते हैं, और अपने मन में यह विचार करते हैं कि वह भी आपके जैसा/जैसी ही है, और उसकी परिस्थिति में रख दिए जाने पर आप भी सम्भवतः वैसा ही बर्ताव करेंगे।

कक्षा के भीतर और बाहर मुझे मिले अनुभव इस प्रकार के नजरिए को मजबूत बनाने के लिए जिम्मेदार रहे हैं।

कक्षा में गुजारा गया मेरा समय बहुत मूल्यवान रहा है क्योंकि मेरे ज्ञानकोष का आधार वहीं निर्मित हुआ। वहीं पर ऐसे कई विचारों के बीज बोए गए जिनमें आगे जाकर बहुत फलने–फूलने की सम्भावना छिपी हुई थी। यही वह जगह थी जहाँ मैंने सामाजिक विज्ञानों की भूमि में अपनी जड़ें जमाईं। यह बात दिमाग में आ सकती है कि कक्षा के दौरान ऐसा क्या होता है जो विषय के साथ इस तरह के सम्बन्ध की गुंजाइश बनाता है। निश्चित ही, हम वहाँ अपने विषयों की बुनियादी बातें तो सीखते ही हैं। समाजशास्त्र के मामले में, मार्क्सवाद, नारीवाद, संरचनावाद (फन्क्शनलिज़्म), मानवीय पारस्परिक व्यवहारवाद (इन्टरैक्शनिज़्म), धर्म, अपराध, संचार माध्यम, परिवार, सभी कुछ! पढ़ाई में शामिल रहता है। मनोविज्ञान का क्षेत्र अपने अत्यंत रोचक अध्ययनों, विभिन्न प्रकार के विकारों और उनके उपचारों के साथ एक पूर्णतः अलग दुनिया है। पर, हमारी कक्षाएँ पाठ्यपुस्तकों से समाजशास्त्र व मनोविज्ञान की पढ़ाई करने के ढंग से काफी आगे चली गई हैं। हमारे वार्तालाप, चर्चाएँ और गरमागरम बहसें, इन सभी विशेषताओं से कक्षा का मिजाज बिलकुल जुदा हो जाता है। उदाहरण के लिए, समाजशास्त्र की कक्षा में हम एक बार 'सामाजिक रचनाओं' के बारे में चर्चा कर रहे थे। अगर आप इस पद से अपरिचित हों तो मैं बता दूँ कि यह पद समाज के उन पहलुओं का हवाला देता है जो जीवविज्ञान या प्रकृति की रचना होने के बजाय हमारे द्वारा गढ़े गए होते हैं। समाजशास्त्र में कुछ तर्क ऐसे हैं जिनका यह मानना है कि ये सामाजिक रचनाएँ समाज के अन्दर एक ढाँचे का निर्माण कर देती हैं और फिर यह ढाँचा हममें से प्रत्येक के सोचने तथा जीवन जीने के ढंग को प्रभावित करता है। प्रेम इसका एक उदाहरण है – क्या आप मान सकते हैं कि प्रेम बनाया हुआ या गढ़ा हुआ हो सकता है? वे कहते हैं कि प्रेम वास्तविक नहीं होता! फिर भी हम सब लोग प्रेम के अहसास को इतने सशक्त ढंग से महसूस कर पाते हैं – दिल का धक–धक करके भागना, उस एक खास व्यक्ति के बारे में आपके दिमाग का लगातार बतियाते रहना, और बेहद स्वाभाविक व वास्तविक प्रतीत होने वाला आकर्षण। यह सिद्धान्त कहता है कि एक खास तरह के सामाजिक अनुकूलन के कारण ही हम प्रेम जैसी भावनाओं को महसूस करते हैं। जब इस तरह के प्रश्न पूछे जाते हैं कि 'ऐसा क्यों है कि हममें से अधिकांश उच्च–मध्यम वर्ग के लोगों का प्रेम ऐसी ही पृष्ठभूमि वाले अन्य लोगों से हो जाता है', तो इसका उत्तर देते समय मन की स्थिति विस्मित और कभी–कभी तो भयभीत भी हो जाती है।

हमारे मनोविज्ञान की कक्षाओं में एक और बेहद दिलचस्प प्रसंग उभरा – हम लोग विभाजित मस्तिष्क के ऐसे रोगियों के बारे में एक शोधपत्र का अध्ययन कर रहे थे जिनकी कॉर्पस कैलोसम (मस्तिष्क के दो भागों को जोड़ने वाली पट्टी) की शल्यक्रिया इस तरह हुई थी कि दोनों भागों में कोई जुड़ाव नहीं रह गया था। ऐसी शल्य–प्रक्रिया उन लोगों पर की जाती है जिनकी मिरगी इतनी गम्भीर हो चुकी होती है कि वे निष्क्रिय हो जाते हैं। इस अध्ययन के नतीजों ने यह दर्शाया कि एक व्यक्ति में चेतना के दो तल मौजूद थे। मस्तिष्क के बाएँ और दाएँ भाग, दोनों अपनी–अपनी भिन्न जिन्दगियाँ जी रहे थे, और उनकी अपनी अलग–अलग स्मृतियाँ थीं और अभिव्यक्ति के अपने ढंग थे। इस बात का व्यापकीकरण करते हुए हम खुद से यह पूछ सकते हैं कि क्या हमारे भीतर भी चेतना के दो तल होते हैं? असली मैं कौन है? इस तरह के प्रश्नों से कक्षा में एक जीवन्त चर्चा छिड़ जाती थी जिससे और गहरी खोज करने का वातावरण निर्मित होता था। इस तरह की गतिशीलता, आपको अपने बारे में और अपने चारों ओर की दुनिया के बारे में सोचने पर मजबूर करती है, और हमारी रोजमर्रा के जीवन में इन विषयों की प्रासंगिकता की ओर भी इशारा करती है। आत्म–चिन्तन और समीक्षात्मक सोच इन कक्षाओं की सामान्य गतिविधियाँ, या शायद उनका मानक स्वरूप, बन जाते हैं।

इस प्रकार का वातावरण एक स्प्रिंगबोर्ड की तरह काम करता है जिससे छलांग लगाकर मैं अपनी रुचि के अन्य क्षेत्रों के भीतर भी प्रवेश कर सकती हूँ। समाजशास्त्र और मनोविज्ञान, दोनों पढ़ने का एक लाभ यह है कि मुझे बस अपनी खिड़की से बाहर देखना होता

है और संसार रूपी मेरी प्रयोगशाला बिलकुल सामने होती है – कम से कम इस सीमा तक तो वह इस रूप में काम करती है कि वह प्रेक्षण, और कभी–कभी पारस्परिक क्रियाकलाप द्वारा जानकारी हासिल करने की सुविधा देती है।

> *सामाजिक विज्ञानों से मुझमें तो निश्चित ही संवेदनशीलता आई है। जब मैं अपने आसपास देखती हूँ, तो मुझे हर तरह की पृष्ठभूमियों वाले लोग दिखाई देते हैं, और सतही ढंग से देखने पर तो उन सबमें जमीन–आसमान का अन्तर दिखाई देता है। और शायद उनके बीच बहुत अन्तर है भी। पर सामाजिक विज्ञानों ने मेरा उनको देखने का नजरिया बदल दिया है और इस तथ्य को मेरे मन में और मजबूती से स्थापित किया है कि हम सभी मनुष्य हैं।*

हम अपने स्कूल की ओर से एक अध्ययन यात्रा के लिए बंगलौर की एक झुग्गी बस्ती में गए। हमने वहाँ रह रहे घरों पर काम करने वाले श्रमिक वर्ग के लोगों से बातें कीं। मेरे लिए यह देखना बड़ा ही दिलचस्प था कि चाय की प्याली के साथ कुछ ही मिनटों में हमारे दरमियान 'हम' और 'वे' वाली दीवारें गिर गईं। उनकी जिन्दगियाँ, कहानियाँ, समस्याएँ अचानक ही हमारी जिन्दगियों से एकदम जुदा किसी दूसरी दुनिया की बातें नहीं रह गई थीं, बल्कि वे ऐसी बातें हो गई थीं जिनसे मैं खुद को जोड़ सकती थी और उनके जैसा ही महसूस कर सकती थी। फूल बेचने वाली से उसका नाम और उसके बच्चों के बारे में पूछना, या रिक्शावाले की उसके रेडियो सेट के लिए तारीफ कर देने के लिए किसी रिश्ते का होना जरूरी नही था – यह देखना अद्भुत था कि उनके साथ वार्तालाप का सम्बन्ध बनाने में हमें बिलकुल भी कठिनाई नहीं हुई।

सामाजिक विज्ञान लोगों की इस ढंग से 'खुलने' में मदद करते हैं, मुझमें तो निश्चित ही इससे संवेदनशीलता आई है। जब मैं अपने आसपास देखती हूँ, तो मुझे हर तरह की पृष्ठभूमियों वाले लोग दिखाई देते हैं, और सतही ढंग से देखने पर तो उन सबमें जमीन–आसमान का अन्तर दिखाई देता है। और शायद उनके बीच बहुत अन्तर है भी। पर सामाजिक विज्ञानों ने मेरा उनको देखने का नजरिया बदल दिया है और इस तथ्य को मेरे मन में और मजबूती से स्थापित किया है कि हम सभी मनुष्य हैं। आखिर में तो हम सब समान ही हैं। जब आप जीवन में इस प्रकार का नजरिया अपना लेते हैं तो अमीर–गरीब, हिन्दू–मुस्लिम, भारतीय–पाकिस्तानी, गोरा–काला जैसे भेद अर्थहीन लगने लगते हैं।

समाजशास्त्र और मनोविज्ञान में अपनी ए–लेवल पढ़ाई के अन्त की तरफ जाते हुए, और पिछले दो विचित्र वर्षों के बारे में चिन्तन करते हुए, मैं यह कह सकती हूँ कि ये दो विषय पढ़ना मेरे लिए बहुत आनन्ददायी अनुभव रहा है। मेरी राजमर्रा की जिन्दगी में इन विषयों का योगदान, हमारे नगरों की गहमागहमी में उनकी उपस्थिति, और इन विषयों के भीतर मौजूद जीवन ने मेरे अनुभव को वाकई रंग–बिरंगा बना दिया है। इस विषय से मुझे मिली सबसे बड़ी उपलब्धि यह है कि मैं सहज रूप से बहुत संवेदनशील हो गई हूँ, और मुझे मनुष्य के स्वभाव की बारीकियों को समझने में मदद मिली है। मुझे कॉलेज में सामाजिक विज्ञानों को पढ़ने का इन्तजार है।

ऋचा भावनम *बंगलौर के एक वैकल्पिक स्कूल, सेन्टर फॉर लर्निंग, में 12वीं कक्षा की छात्रा हैं, जहाँ वे समाजशास्त्र व मनोविज्ञान में ए–लेवल पढ़ाई कर रही हैं। उनकी अन्य रुचियाँ हैं फोटोग्राफी, मिट्टी के बरतन तैयार करना, वन्यजीवन, लिखना और भ्रमण करना। यह पहला मौका है जब उनके लेखन को किसी संचार माध्यम में जगह मिल रही है। उनसे इस richa.bhavanam@gmail.com ईमेल पते पर सम्पर्क किया जा सकता है।*

28 सामाजिक विज्ञानों ने क्यों मुझे कभी आकर्षित नही किया!

नीरजा राघवन

''इतिहास सीखने का क्या उपयोग है?'' एक 13 वर्ष की लड़की के रूप में मैंने सबकी नजरें बचाते हुए इस प्रश्न को प्रश्न बक्से में इस उम्मीद के साथ डाल दिया कि मेरी शिक्षिका का इस पर रोशनी डालने वाला उत्तर मिलेगा। उनके मुँह पर इस प्रकार का प्रश्न पूछने का दुःसाहस मुझमें नहीं था। मैं अब भी याद कर सकती हूँ कि कैसे मैंने उत्सुकता से बक्से में से उनके द्वारा अपने प्रश्न के निकाले जाने का इन्तजार किया था।

उस दिन बक्से में ढेर सारी पर्चियाँ थीं।

उन्होंने काफी समय लिया; तरसाते हुए और कई सारे अन्य प्रश्नों से होते हुए पीरियड के सबसे आखिर में वे उस प्रश्न पर पहुँचीं। मेरी निराशा की कोई सीमा नहीं रही जब उन्होंने यह कहते हुए उसे हँसी में उड़ा दिया, ''और यहाँ पर अन्तिम प्रश्न हैः इतिहास सीखने का क्या उपयोग है?'' उनके साथ सभी हँसने लगे लेकिन मेरी शिक्षिका बिना कोई उत्तर दिए जाने के लिए उठ खड़ी हुईं।

अपने सवाल से स्वयं ही जूझने के लिए मुझे अकेला छोड़ दिया गया था; इसका प्रयास मैंने स्कूल के अपने अन्तिम दिनों तक किया, लेकिन कोई सफलता नहीं मिली। मैंने 13 वर्ष की उम्र तक तो सभी दिए गए विषयों को विनीत भाव से पढ़ा लेकिन कक्षा 9 में पहुँच कर जब मुझे आगे विकल्प चुनने की सम्भावना दिखाई देने लगी तो मैंने उनकी उपयोगिता पर सवाल उठाना शुरू किया।

''जब कोई बात समाप्त हो जाती है और हम उससे निपट जाते हैं तो फिर हम उसे विस्तार सहित याद करने की परेशानी क्यों उठाएँ?'' मैं यह सोचती रहती। विज्ञान का आकर्षण इतना अधिक शक्तिशाली था कि किसी को उसकी उपयोगिता के बारे में मुझे विश्वास दिलाने की जरूरत नहीं थी। वाकई में मुझे याद नहीं पड़ता कि कभी मेरे सहपाठियों में से किसी ने भी विज्ञान के बारे में यह सवाल पूछा हो कि ''विज्ञान पढ़ने का क्या उपयोग है?'' उबाऊ? हाँ कइयों ने यह महसूस किया कि वह उबाऊ था। कठिन? निश्चित रूप से कुछ इससे सहमत थे। लेकिन 'अनुपयोगी?' किसी ने भी ऐसा नहीं कहा होगा।

शायद इसका कारण इस विषय की आपको एक सुनिश्चित दिशा में ले जाने की खूबी थी चाहे वह एक चिकित्सक का कार्यक्षेत्र हो, या इंजीनियर का, या वैज्ञानिक का, या शायद इसे पढ़ना ही सबकी राय में 'करने जैसी' चीज थी – कारण जो भी हो, किसी को मेरी कक्षा के साथियों (या मुझे) को विज्ञान पढ़ने की जरूरत के बारे में

समझाने की आवश्यकता नहीं थी। हाँ, हममें से कुछ की अपनी प्राथमिकताएँ थीं, जब हमने जीव विज्ञान को चुनना पसन्द नहीं किया (जब मुझे किसी भी हाल में चिकित्सक नहीं बनना, तो मैं मेंढ़कों को क्यों काटूँ?) लेकिन भौतिकी, रसायन शास्त्र और गणित शुरू से ही हमारे साथ चलने वाले विषय थे, इसमें कोई शक नहीं था।

भूगोल की तो और भी कम जरूरत महसूस होती थी; उससे तो ऐसे किन्हीं शक्तिशाली लोगों के नाम भी नहीं जुड़े थे जो उसका उद्धार करते। वास्तव में किसे परवाह थी कि शीतोष्णकटिबन्ध इलाकों में पर्णपाती पेड़ थे, या किसी और जगह पर सोने की खदानें थीं? नक्शों में आँखें गड़ाए रहने और उन्हें बनाने की कला में पारंगत होने से लेकर, विभिन्न जलवायु वाले इलाकों और उनमें पैदा होने वाली फसलों को याद करने तक, यह एक ऐसा अन्य विषय था जिसको चुनने वाले ज्यादा नहीं थे। मुझे सिर्फ एक ऐसी शिक्षिका याद हैं जो इसकी वकालत 'तर्कसंगत विषय' के रूप में करती थीं। लेकिन वे भी मुझे इसकी उपयोगिता का भरोसा नहीं दिला सकीं।

संक्षेप में, सामाजिक विज्ञानों को समर्पित पीरियड ही ऐसे थे जिनमें सबसे ज्यादा जम्हाइयाँ ली जाती थीं। हम मुगल रानियों की तस्वीरों पर मूँछें और विकट भौंवे बना कर और प्रभावशाली राजाओं के चेहरों पर बिन्दियाँ और काजल लगी पलकें बना कर अपनी कक्षाओं को जीवन्त बनाते थे। पुराने चित्रों की फिर से बनाई गई इन प्रतिकृतियों को डेस्क के नीचे से एक–दूसरे को देते हुए हम धीरे–धीरे हँसते थे क्योंकि इतिहास की उबाऊ कक्षाओं में हमारे मनोरजंन का सिर्फ एक यही साधन था। एकमात्र ऐतिहासिक व्यक्तित्व जो हमारी बिगाड़ने वाली कलमों से बच गए थे, वे थे अत्यन्त सुन्दर दिखने वाले लॉर्ड माउण्टबेटन; इसका कारण तो स्पष्ट ही है।

इससे मैं उस बात पर आती हूँ जिसे मैं किसी विषय के चुम्बकीय स्रोत के रूप में देखती हूँ; सीखने वाले को उसमें क्या चीज अपनी ओर खींचती है? मेरा यह अनुमान है कि जो चीज सिखाई जाती है, सीखने वाले के दृष्टिकोण से उसमें इन तीन गुणों में से कम से कम एक तो होना ही चाहिएः प्रासंगिक, उपयोगी या सुन्दर (या कम से कम आकर्षक)। उदाहरण के लिए हममें से अधिकांश को विज्ञान

क्यों आवश्यक प्रतीत होता था? एक तो वह अत्यन्त प्रासंगिक था। कोई इस तथ्य को नकार नहीं सकता था। निश्चित ही हमें ब्रह्माण्ड के नियमों के बारे में, लाए जा सकने वाले बदलावों के बारे में, और हमारे आस–पास के पेड़–पौधों और जीव–जन्तुओं के बारे में जानने की जरूरत थी। इसकी तुलना में पानीपत की लड़ाई की तारीखों या राजा अशोक के द्वारा लाए गए परिवर्तनों के बारे में सोचें..... जम्हाई! हममें से ज्यादा गुस्ताख छात्रों को यह पूछने का मन होता था कि इसके बजाय हमारी मौजूदा सरकार के द्वारा लाए जा रहे परिवर्तनों के बारे में जानना क्या हमारे लिए ज्यादा अच्छा नहीं होगा।

और हाँ, विज्ञान उपयोगी था। उसने हमें इन सभी चीजों का पता

> *गणित की नियमित संरचनाएँ, विज्ञान का सुन्दर तर्काधार, और उसकी हमारे वर्तमान जीवनों से असन्दिग्ध सम्बद्धता; मुझे इतिहास और भूगोल में इन सभी बातों का अनुपस्थित होना एकदम खटकता था।*

लगाने में मदद की, जैसे दूध खट्टा क्यों होता है, पौधे कैसे वृद्धि करते हैं, और किसी घाव की पट्टी कैसे की जाती है। उसने हमें अधिक व्यवस्थित और अधिक निष्कर्षात्मक ढंग से सोचने की प्रेरणा दी। उसने हमें मान्यताओं के पीछे के सच को ढूँढने के लिए प्रेरित किया। उसने हमारे जीवन को अधिक आरामदायक बनाने में हमारी मदद की। हमें इसकी जरूरत थी; चाहे दुर्भाग्य से हमें इस विषय को पढ़ाने के लिए कोई उबाऊ शिक्षक ही क्यों न मिला होता।

और हाँ! कभी–कभी विज्ञान सुन्दर भी होता था; हाई स्कूल के रसायन शास्त्र के मेरे प्रारम्भिक सम्मोहन से लेकर एमएससी के दिनों में हमारे शरीरों में डीएनए की जटिलताओं से पूरी तरह अभिभूत होने के अनुभव तक, मेरे लिए विज्ञान और सुन्दरता में शायद ही कभी तालमेल न रहा हो। (कुछ भाग्यशाली साथियों को यह अनुभव गणित में होता था, लेकिन उनके बारे में किसी और समय।) अक्सर किसी विषय के लिए मेरे प्रेम को निर्धारित करने में सुन्दरता एक सर्वोपरि विशेषता होती थी। मेरी नजरों में काव्य न तो उपयोगी था और न ही प्रासंगिक; लेकिन हाँ, वह अक्सर सुन्दर होता था। साहित्य निश्चित ही सुन्दरता से भरपूर था जिसे मैं नहीं नकार सकती। लेकिन भूगोल और इतिहास के वर्णन के लिए मैंने अनाकर्षक धूसर रंग का ही इस्तेमाल किया होता। (दूसरी ओर विज्ञान, साहित्य और कभी–कभी गणित में भी चमकदार बैंगनी, गुलाबी आदि रंगों की लहरें हर तरफ़ इठलाती रहती थीं।)

सामाजिक विज्ञान के इन तीन पैमानों पर खरा न उतरने के बावजूद भी, अब मुझे लगता है, कि यदि वह सिर्फ आसान होता तो भी हमने उसे चुन लिया होता। गणित के किसी सवाल को हल करने और फिर सही उत्तर प्राप्त कर लेने में आने वाले आनन्द की किसे याद नहीं है? गणित के किसी सवाल को आखिरकार हल कर पाने में मिलने वाला अनोखा संतोष ही गणित को अधिक सहनीय बनाता है। पर सामाजिक विज्ञान में आप केवल तभी सही होते थे जब आपकी याददाश्त आपको धोखा नहीं देती थी। आप इसके प्रश्नों के उत्तरों को केवल सोच कर नहीं निकाल सकते थे, कम से कम हमें तो ऐसा ही भरोसा दिलाया गया था।

मेरे लिए इस विषय का जो आखिरी आधार हो सकता था वह यहीं आकर गिर गया, क्योंकि यह मुझसे जरूरत से ज्यादा विशिष्ट स्मृति की माँग करता था। इसलिए मैं इसे छोड़ने के लिए तत्पर थी, और मैंने मौका मिलते ही इसे छोड़ दिया।

इस प्रकार इतिहास और भूगोल मेरे लिए सिर्फ तथ्यों के ऐसे समूह थे जिनको याद रखे बिना भी कोई व्यक्ति अपना जीवन काफी अच्छे से बिता सकता है। इनमें नियमित संरचनाएँ कहाँ थीं? प्रवृत्तियाँ? हमारे अपने जीवनों के साथ इनका सम्बन्ध ? इन सब चीजों का या तो अस्तित्व ही नहीं था या ये उन ढेर सारे तथ्यों के नीचे दबी हुई थीं जिन्हें हमें याद रखना पड़ता था। यह तो जब मैं अपने कॉलेज दौर में पहुँच गई, तब जाकर मुझे अहसास हुआ कि शायद अतीत के अध्ययन के कारण कोई व्यक्ति अपने वर्तमान को बेहतर ढंग से जी सकता है। यद्यपि मुझे लगातार यह महसूस होता था कि इस उबाऊ विषय को हमारे गले के नीचे उतारने या हमारे ऊपर थोपने के लिए यह एक कमजोर बहाना बनाया जाता था – क्योंकि मुझे अपने चारों ओर एक भी ऐसा व्यक्ति, समुदाय या राष्ट्र नहीं दिखाई देता था जो अपने स्वयं के इतिहास से कुछ सीख चुकने के कारण कम गलतियाँ कर रहा था (या बेहतर जीवन जी रहा था)। वह 'ज्ञान' – यदि आप उसे यह कह सकें तो – उनकी इतिहास की पाठ्यपुस्तकों के धूलभरे आवरण पृष्ठों के बीच में सुरक्षित रूप से नीचे दबा हुआ था, कोई भी उसे अपने रोजमर्रा के जीवन में लाने की कोशिश नहीं करता था। प्रसिद्ध लोगों की जीवनियाँ पढ़ने का आकर्षण, जो मेरे कॉलेज वर्षों के दौरान विकसित हुआ, जरूर मुझे अवचेतन मार्ग से उस ओर ले गया जिसे मैं 'इतिहास' कहूँगी; लेकिन यह बात बहुत भिन्न थी! क्योंकि इन अद्भुत किताबों के पन्नों में निर्जीव तारीखों और उबाऊ घटनाओं के बजाय लोग रह रहे थे। मेरी स्कूल की इतिहास की किताबों में मानवीय तत्वों का पूरी तरह से अभाव दिखाई देता था।

> *इस प्रकार इतिहास और भूगोल मेरे लिए सिर्फ तथ्यों के ऐसे समूह थे जिनको याद रखे बिना भी कोई व्यक्ति अपना जीवन काफी अच्छे से बिता सकता है। इनमें नियमित संरचनाएँ कहाँ थीं? प्रवृत्तियाँ? हमारे अपने जीवनों के साथ इनका सम्बन्ध ? इन सब चीजों का या तो अस्तित्व ही नहीं था या ये उन ढेर सारे तथ्यों के नीचे दबी हुई थीं जिन्हें हमें याद रखना पड़ता था।*

कई दशकों बाद, जब मैं हिमालय की यात्रा कर रही थी तब मैंने कई विभिन्न प्रकार की चट्टानों और पत्थरों को देखा, उनकी अलग–अलग सतहें और रंग उस क्षेत्र की संरचनाओं का जैसे मुखर होकर वर्णन कर रहे थे। किसी ने मुझे कभी यह क्यों नहीं पढ़ाया? मैंने आश्चर्य किया। उत्तरकाशी की सीढ़ीदार ढलानें, पर्वत पर रहने वाले लोगों की अनोखी पाक शैली और उनके पसन्दीदा आहार; ये जितने सार्थक थे उतने ही विस्यमकारी भी थे। इसके कारण मुझे यह जानने में दिलचस्पी हो गई थी कि ये लोग कैसे रहते थे। पोंपई की पत्थरों से पटी गलियों में चलते हुए यह सोच कर मेरे रोमांच का कोई ठिकाना नहीं था कि इन्हीं पत्थरों पर रोमन सम्राट भी चले थे। लोथल में सिन्धु घाटी की सभ्यता के खण्डहरों को देखना मेरे वयस्क जीवन का ऐसा दूसरा वक्त था जब मैंने इतिहास को रोमांचपूर्वक पढ़ने की विराट सम्भावनाएँ देखी थीं।

अफसोस! ये सब अधूरे स्वप्न थे; इतिहास और भूगोल पढ़ना अब तक के मेरे सबसे बदरंग अनुभवों में से एक रहा है। ये विषय पढ़ाने के लिए हमारे शिक्षकों ने जिस भावनात्मक तूलिका और रंगपट्टी का इस्तेमाल किया था वे सूखी और बिना रंग की थी। शायद उन सूखे रेगिस्तानों और शानशौकत वाले राजाओं ने उनके सारे रंग सोख लिए थे।

नीरजा राघवन *अज़ीम प्रेमजी फाउण्डेशन, बंगलौर में एकडेमिक और पैडागॉजी सलाहकार हैं। वे कई वर्षों तक स्वतंत्र लेखिका रही हैं। प्रतिष्ठित समाचारपत्रों और पत्रिकाओं में उनके सत्तर से अधिक लेख प्रकाशित हो चुके हैं। इसके अतिरिक्त, उन्होंने तीन पुस्तकें (क्यूरियसर एण्ड क्यूरियसर, फुल सर्किल 2004, आई वण्डर व्हाय एण्ड आई वण्डर हाऊ, चिल्ड्रन्स बुक ट्रस्ट 2005, 2006) लिखी हैं और एक पुस्तक (आल्टरनेटिव स्कूलिंग इन इण्डिया, सेज पब्लिकेशन्स 2007) की सह–लेखिका हैं। उन्होंने एक सीडी, अन्डरस्टैंडिंग रिलीजन्स (जैन विश्व भारती इंस्टीट्यूट, लडानूँ, राजस्थान 2004) का सम्पादन भी किया है। उनसे इस* neeraja@azimpremjifoundation.org *ईमेल पर सम्पर्क किया जा सकता है।*

29 सामाजिक विज्ञान के चश्मे से जो मुझे मिला

निधि तिवारी

एक दिन, जब मैं शिमोगा से गाड़ी चलाते हुए लौट रही थी तो अपने एक नजदीकी मित्र से मेरी थोड़ी बहस हो गई। फलसफे के दायरे में घुसते हुए हम लोगों में इस बात पर बहस हो रही थी कि क्या जीवन में 'धूसर' जैसा कुछ होता है। बहस तब शुरू हुई जब मैंने उसके इस कथन पर गहरी आपत्ति जताई कि 'मेरे जीवन में 'धूसर' जैसा कुछ नहीं है, मैं हमेशा काले और सफेद में जीता हूँ!' इसके आगे वह इस हद तक कह गया: ''मैं अपने बच्चों को कभी नहीं सिखाऊँगा कि जीवन में धूसर जैसा भी कुछ होता है।''

मैं आशा करती हूँ कि जब मैं 'धूसर' शब्द का उपयोग करती हूँ तो आप उसका अर्थ समझ रहे होंगे। यहाँ धूसर शब्द ऐसे विभिन्न हालातों/सम्बन्धों/रवैयों/आचरणों की ओर इशारा करता है जो हमारे सामान्यतः घोषित मूल्यों के घेरे से बाहर होते हैं। उदाहरण के लिए, यद्यपि सार्वजनिक तौर पर कोई भी यह नहीं कहता कि रिश्वत लेना सही बात है, फिर भी रिश्वतखोरी फल–फूल रही है! इस विरोधाभास को आप कैसे दूर कर सकते हैं? 'स्वल्प ऐडजस्ट माड़ी.. (कृपया थोड़ा सा समझौता कर लें)' वाला रवैया इसका एक और उदाहरण है। चाहे इसे हालातों पर डालें या परिस्थितियों पर – हमारे भीतर का धूसर समय–समय पर सामने आ जाता है – चाहे हम इसे स्वीकार करें या न करें। मैं मानती हूँ कि यह स्वीकारना कठिन काम है; इसके लिए हिम्मत चाहिए।

मुझे यह जानकर घोर आश्चर्य हुआ कि इस दुनिया में ऐसे व्यक्ति भी रहते हैं जो इस बात को पूरी तरह से नजरअन्दाज करते हैं, या ऐसा विश्वास करते हैं कि दुनिया के साथ किए जाने वाले उनके आचरण/विचार/मेलजोल में कुछ भी धूसर नहीं रहता। अगले 200 किमी तक मैं मानसिक क्षोभ में गाड़ी चलाती रही और यह अविश्वास मुझे विचलित करता रहा। कई हफ्तों बाद, आखिरकार 'यूरेका' ;मैंने पा लिया) वाला एक पल आया! क्या मेरे और मेरे मित्र के बीच हुई अनबन की असली वजह यह तथ्य हो सकता था कि वह दुनिया को देखने के लिए 'विज्ञान चश्मे' का उपयोग कर रहा था और मेरा चश्मा सामाजिक विज्ञान की पृष्ठभूमि से ओतप्रोत था? क्या आपको नहीं लगता कि विज्ञान के विषय कहीं ज्यादा निश्चित, स्पष्ट, सही–गलत, और एक विशेष सीमा तक पूर्णता, प्रमाण और समापन की माँग करने वाले क्षेत्र हैं? जबकि दूसरी तरफ सामाजिक विज्ञान मेरे हिसाब से ज्यादा लचीले, समझौतापरक, और विभिन्न दृष्टिकोणों को स्वीकार करने के लिए राजी रहने वाले विषय हैं। मुझे लगता है कि यह विशेषता इस अन्तर्जात विश्वास से उपजती है कि कुछ भी परम सत्य/असत्य नहीं होता। तो अन्तर बस आपकी आँखों पर चढ़े चश्मे का है जिससे आप चीजों को देखते हैं।

मैंने अपनी नवीनतम परिकल्पना के लिए साक्ष्यों की तलाश शुरू की

और विश्वास कीजिए; जितना मैं इस बारे में सोचती हूँ उतनी ही आश्वस्त होती जाती हूँ कि सामाजिक विज्ञान की पृष्ठभूमि वाले लोग दुनिया को ऐसे चश्मे से देखते हैं जिसमें लगभग सभी कुछ समाहित रहता है, और मुश्किल से कोई चीज बाहर रखी जाती है।

और इस चश्मे के बारे में ही मैं यहाँ लिखना चाहती हूँ कि किस तरह इस विषय ने मेरे विद्यार्थी जीवन के व्यक्तित्व निर्धारक वर्षों के दौरान मेरी शिक्षा को प्रभावित किया।

देश की राजनीति पर हमेशा उत्सुकता से नजर रखने के चलते मुझे जिस डरावनी बहस की सबसे शुरुआती यादें हैं, वह है बाबरी मस्जिद की घटना। स्थानीय दंगों के चलते स्कूल बन्द कर दिए गए थे और मस्जिद पर चढ़े हुए लोगों के द्वारा अपने खड़े होने के आधार को ही गिराने की कोशिश करने के तकलीफदेह दृश्य देखने के लिए मेरे पास ढेर सारा समय था। बहुत आसानी से प्रभावित हो जाने वाली, हालाँकि बहुत जुझारू, लड़की होने के कारण मेरी त्वरित प्रतिक्रिया किसी न किसी पक्ष की तरफदारी करने की होती थी। मैं अपने असहाय माता–पिता से बहुत मुश्किल सवालात पूछती रही। कुछ लोग यह क्यों कह रहे हैं कि वे सही हैं जबकि वे तो इमारतें गिरा रहे हैं? पुलिस ऐसे लोगों को गिरफ्तार क्यों नहीं कर रही है? भोली! लेकिन उस घटना का अर्थ समझने के प्रति मैं बेहद जिज्ञासु और उत्सुक थी; यह दिमागी उथल–पुथल काफी समय तक नहीं थमी, वह मेरे स्कूल तक, और फिर सामाजिक विज्ञान की मेरी शिक्षिका तक भी पहुँची। और उन्होंने चीजों को सही परिप्रेक्ष्य में रखने का काम बहुत ही बेहतरीन ढंग से किया।

> *मुझे यह जानकर घोर आश्चर्य हुआ कि इस दुनिया में ऐसे व्यक्ति भी रहते हैं जो इस बात को पूरी तरह से नजरअन्दाज करते हैं, या ऐसा विश्वास करते हैं कि दुनिया के साथ किए जाने वाले उनके आचरण/विचार/मेलजोल में कुछ भी धूसर नहीं रहता।*

उन्होंने ब्लैकबोर्ड के केन्द्र में एक गोला खींचकर शुरुआत की। उन्होंने मुझे बताया कि वह गोला दुनिया थी। फिर उन्होंने मुझसे कहा कि मुझे जो–जो चीजें दुनिया का हिस्सा लगती हों उन्हें मैं गोले में बना दूँ। किसी भी छोटे बच्चे की तरह, मैंने उस गोले को पानी, भूमि, पहाड़ों, लोगों, अपने परिवार, मेरे कुत्ते, और अन्य चीजों को बनाकर भर दिया। मुझे अच्छे से याद है कि मैंने उस गोले में भारत लिख दिया था। और फिर उन्होंने उस गोले की बाईं तरफ एक छोटी से आकृति बना दी और उसको 'निधि' नाम दे दिया। इसके बाद उन्होंने दाईं तरफ भी उसी ढंग की एक और आकृति बनाई तथा उसे कुछ और नाम दे दिया। उन्होंने उस गोले रूपी दुनिया में कुछ और चीजें भर दीं जो उन्हें लगा कि वह दूसरा व्यक्ति उसमें चाह सकता है। फिर उन्होंने मुझे समझाया कि मैं दुनिया का एक ही हिस्सा देख रही थी और उसे उन्होंने 'मेरी दुनिया' कहा, जबकि वह दूसरा व्यक्ति दुनिया के एक अन्य हिस्से को देख रहा था, और इस तरह हम लोग एक ही दुनिया के दो अलग–अलग आयाम देख रहे थे। वे बोलीं, कि समस्या यही थी। लोग एक ही इमारत (मस्जिद और मन्दिर) में भिन्न–भिन्न यथार्थ देख रहे थे और इसीलिए वे उसे गिराने पर आमादा थे। एक और 'यूरेका' क्षण – पहली बार, मुझे अहसास हुआ कि एक ही घटना/आचरण को लेकर कथित तर्काधारों के पीछे दो बिलकुल अलग विचार प्रक्रियाएँ हो सकती हैं।

उस वक्त यह बात मुझे बहुत घबरा देने वाली लगी थी कि ऐसा भी सम्भव है कि लोगों के दो समूह उन्हीं सत्यों के अपने–अपने अलग–अलग संस्करणों को मानते हों! बड़े होने पर, अब यह अहसास करना कि लोग अलग–अलग सन्दर्भों से सोचते व आचरण करते हैं, कहीं ज्यादा स्पष्ट और महत्वपूर्ण हो गया है।

हाल ही में मैं एक नेतृत्व कोर्स के लिए अमेरिका गई थी और वहाँ हुई एक घटना ने मुझे फिर से बीते समय में पहुँचा दिया। एक नया अनुभव मेरे सामने था। 60 दिनों तक मैंने सुनसान जंगल में कुछ अमेरिकी युवाओं के साथ सुख–सुविधाओं से रहित कठोर जिन्दगी जी। हमारे इस दल की सामाजिक गतिकी बेहद चुनौतीपूर्ण थी। एक समय तो, वे लोग मेरी आदतों और मेरी शब्दावली से भी खिन्न थे – मैं हर बात के बाद 'कृपया' और 'धन्यवाद' नहीं कहती थी, सम्मान दिखाने के मेरे ढंग में बाहरी प्रदर्शन उतना प्रमुख नहीं था। और क्या आप यकीन कर सकते हैं: हमारी संध्याकालीन सभा में इस मुद्दे पर 2 घण्टे तक बहस की गई! अहा...फिर से विभिन्न सन्दर्भों वाली बात! क्या भिन्न संस्कृति के तहत हुए अपने पालन–पोषण की वजह से मेरी यह आलोचना हो रही थी? क्या हम भारतीय लोग, खुद को शब्दों के माध्यम से इतना व्यक्त करते हैं? क्या हम अलग ढंग से संवाद करते हैं? यह महसूस करते हुए कि मेरा पूरा दल एक भिन्न सांस्कृतिक पृष्ठभूमि के प्रभाव में आचरण कर रहा था, क्या मेरे द्वारा उनके अवलोकनों पर निर्णय देना उचित है? यहाँ भी सामाजिक विज्ञान मुझे राहत देने के लिए हाजिर था। यह अहसास हो जाने के बाद मुझे अपने दल के साथियों के साथ रहते हुए किसी भी तरह की दिक्कत महसूस होना बन्द हो गई। मैंने जान लिया था कि हम लोगों के बीच दरअसल एक सांस्कृतिक खाई थी और मेरे बारे में उनकी टिप्पणियों में कुछ भी व्यक्तिगत या दुर्भावनापूर्ण नहीं था। तो यह एक और उदाहरण है कि किस तरह इस विषय को पढ़ने से मिली समझ ने मुझे ऐसी परिस्थिति के बारे में भी पूरी तरह से वस्तुनिष्ठ बना दिया जो एक नाजुक स्थिति कही जा सकती थी।

वस्तुनिष्ठता और अलग–अलग दृष्टिकोणों की बात करते हुए, मुझे स्कूल की एक जीवन्त स्मृति विशेष रूप से याद आती है। नागरिक शास्त्र की कक्षा की एक विशेषता थी कि अक्सर विद्यार्थियों द्वारा बेहद विवादात्मक दृष्टिकोण अपना लिए जाते थे – खासतौर पर तब जब संसदीय लोकतंत्र की बात होती थी। भ्रष्टाचार, चुनावों, अनैतिक राजनैतिक सौदेबाजी, आदि के बारे में कठिन सवाल उठाए जाते थे। पर हमारी शिक्षिका उन सभी बातों को बहुत खूबसूरती से सम्हालते हुए चलती थीं। अब सोचती हूँ तो समझ में आता है कि उन्होंने हमेशा मुद्दों को लेकर हमें कोई उत्तर नहीं दिए बल्कि चर्चाओं को खुला रहने दिया। हम अक्सर, यह कहते हुए उनकी निन्दा करते कि 'उन्हें कोई न कोई रुख अपनाना ही चाहिए'। क्या हमें भी यही नहीं सिखाया गया था? किसी भी मुद्दे पर एक रुख अख्तियार कर लेना, स्कूल में – और मैं कहूँगी जीवन में भी – जीवित रहने और आगे बढ़ने के लिए सबसे महत्वपूर्ण बात प्रतीत होती थी। छोटे में, अक्सर दोस्तों के बीच एक दूसरे से पूछा जाता था 'बताओ, तुम किसके दोस्त हो, हमारे या उनके?' और उत्तर उस बच्चे के सामाजिक दायरे को निर्धारित करता था। मेरी सीमित कल्पनाशक्ति हमेशा मेरे गणित के शिक्षक के इन शब्दों से त्रस्त रहती थी कि या तो आप 'सही' हल करते हैं या 'गलत'। मैं अक्सर सोचा करती कि सवालों के या बातों के दो सही उत्तर क्यों नहीं हो सकते? दुनिया हमेशा ही निश्चितता में डूबी हुई क्यों रहती थी? हमेशा ही या तो 'इधर' या 'उधर'।

शायद इसीलिए मुझे अपनी सामाजिक अध्ययन की कक्षा में सबसे ज्यादा मजा आता था, क्योंकि उसमें मुझे दो भिन्न और परस्पर विरोधी दृष्टिकोणों का, बगैर उनमें से किसी की भी तरफदारी किए, अर्थ समझने का मौका मिलता था। चीजों को लेकर मेरी दृष्टि को पूर्णरूप से नकार देने के लिए कोई साक्ष्य नहीं होता था। उदाहरण के लिए, मैं हमेशा सोचा करती थी कि जब ये राजा लोग लड़ाइयाँ करते रहते थे और अपने राज्यों का विस्तार करते थे तो आम

आदमी क्या करता रहता था। बहुत सारा वक्त तो मैं इस पशोपेश में बिताती थी कि क्या पुराने समय में हर दूसरा व्यक्ति सैनिक हुआ करता था। क्या उन दिनों में हमारे जैसे साधारण मनुष्य भी होते थे – या फिर कि लोग केवल श्रेष्ठिजन, शिल्पकार, सैनिक या फिर ब्राम्हण ही होते थे? क्या लोग केवल लड़ाइयाँ ही लड़ते थे या कि उन्हें शान्तिपूर्ण जीवन जीने का मौका भी मिलता था? राजाओं के व्यक्तित्व के 'नकारात्मक अन्धेरे' पहलू के बारे में इतना कम क्यों सुनने में आता है? अक्सर, इन बातों को मेरी कल्पनाशक्ति पर छोड़ दिया जाता था और मेरी शिक्षिका की ओर से बहुत थोड़े से संकेत या सुझाव मिलते थे। पर सुन्दर बात यह थी कि मेरी शिक्षिका मेरे द्वारा नई चीजें सीखने और उनके मुताबिक अपनी दिशा तय करने के प्रति खुला रवैया रखती थीं। 'एक सही' और 'एक गलत' के लिए मेरा मजाक नहीं बनाया गया। 'सही बातों' और 'गलत बातों' की यह स्वीकृति विविधता बेहद प्रेरणादायी थी।

> *मुझे अपनी सामाजिक अध्ययन की कक्षा में सबसे ज्यादा मजा आता था, क्योंकि उसमें मुझे दो भिन्न और परस्पर विरोधी दृष्टिकोणों का, बगैर उनमें से किसी की भी तरफदारी किए, अर्थ समझने का मौका मिलता था।*

समय बीतने के साथ, अपने रुख/या 'सही' और 'गलत' की अपनी अवधारणा को उचित ठहराने की जरूरत कम होती गई। जैसे जैसे वर्ष बीतते गए, और मैंने कठिन प्रश्नों, जैसे बाँधों का निर्माण, वनों का उन्मूलन, वन्यजीवों का शिकार, स्थानीय लोगों का पुनर्स्थापन और प्राकृतिक संरक्षण से छेड़छाड़, से जूझना शुरू किया तो मेरी सामाजिक विज्ञान की पढ़ाई से मुझे बहुत मदद मिली; इससे मैं विभिन्न दृष्टिकोणों को सराहने और उनका आदर करने में समर्थ हो पाई। मैं किसी एक रूढ़िवादी सिद्धान्त से चिपके रहने, और उसी के हिसाब से अपना जीवन जीने के लिए मजबूर नहीं थी। विभिन्न मतों से परिचित हो सकने, गलतियाँ कर सकने, जीवन के विविध पहलुओं को देख सकने, विभिन्न दृष्टिकोणों का आकलन कर सकने का आनन्द; तथा सामन्जस्य, समझौतों व समस्या–निवारण की कला सीखना, मेरे लिए इस विषय से प्राप्त सबसे बड़ी उपलब्धियाँ रही हैं।

मैं इस बात की तो गवाही देती ही हूँ कि इस विषय ने अपने आसपास के संसार के साथ मेरे ताल्लुकातों को तय करने के ढंग में सबसे महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है, पर साथ ही इसने मेरे चयनों, पारस्परिक क्रियाकलापों, सम्बन्धों को ज्ञान का आधार दिया है जिससे मैं अपने भीतर अपनी आत्मसत्ता का, मानवता का और विकल्पों का भान जीवित रख सकी हूँ। अक्सर, इस विषय की माँग रही है कि मैं अपने सुविधापूर्ण दायरे से बाहर निकलूँ; सीखूँ कि लोग अलग–अलग सन्दर्भों के प्रभाव में कार्य करते हैं और मेरे चश्मे से उनके आचरणों पर फैसला नहीं सुनाया जा सकता क्योंकि दुनिया को देखने के उनके अपने चश्मे हैं। वाकई मेरे लिए यह यात्रा एक गहरी समझ और परख देने वाली रही है।

निधि तिवारी *लगभग पिछले एक दशक से मीडिया एडवोकेसी तथा डॉक्यूमेंटेशन गतिविधियों में शामिल रही हैं। स्वतंत्र लेखिका के रूप में उन्होंने पर्यावरण, विकास और नागरिकों के मुद्दों से सम्बद्ध कई राष्ट्रीय व अन्तर्राष्ट्रीय प्रकाशनों में योगदान दिया है। वर्तमान में वे अज़ीम प्रेमजी फाउण्डेशन के एडवोकेसी एण्ड कम्यूनिकेशन समूह के साथ सलाहकार के तौर पर जुड़ी हुई हैं। अपने नगर–आधारित कार्यों के अलावा, वे स्वयं के द्वारा शुरू की गई एक पारिस्थितिक–पर्यटन पहल के माध्यम से कर्नाटक की शरावती घाटी के स्थानीय समुदायों के साथ निकटता से जुडकर कार्य करती हैं। उनसे इस nidhi@azimpremjifoundation.org ईमेल पते पर सम्पर्क किया जा सकता है।*

30 इतिहास ने हमारी दुनिया को शक्ल दी है !

गुरमीत कौर और मरिअम साहिब

जब हम बच्चे थे तो हमारे बिलकुल निकट का परिवेश ही हमारी दुनिया थी। वे इतिहास के हमारे पाठ ही थे जिनके माध्यम से हमने उस दुनिया की पेचीदगियों को जानना–समझना शुरू किया जिसे हमने कभी देखा ही नहीं था। छोटी उम्र से ही हमें हमारी अपनी संस्कृति से भिन्न सांस्कृतिक, प्राचीन मिस्रवासियों से लेकर वाईकिंग्ज़ (स्कैन्डिनेवियाई समुद्री लड़ाके) तक, के बारे में पढ़ने को मिला। गानों और वीडियोज से लेकर पाठ्यपुस्तकों व पाठों तक, सीखने के तमाम उपकरणों की एक बृहत शृंखला के माध्यम से हमारे लिए इतिहास का अध्ययन एक प्रेरक व समग्र अनुभव बन गया था।

सम्भवतः इतिहास पढ़ने के लिए हमारी चाहत हमारी सोच का इतना बुनियादी हिस्सा नहीं होती यदि अपने विद्यार्थी जीवन के दौरान हमें इतने बेहतरीन शिक्षक न मिले होते। बहुत से विद्यार्थियों के लिए इतिहास की कक्षाएँ उबाऊ, निर्जीव और एकदम थकाने वाली होती हैं। एक ऐसा घण्टा जो इतिहास के शिक्षक द्वारा दिए जाने वाले एक जैसे, दोहरावों वाले व्याख्यानों से भरा रहता है। परन्तु, स्कूल में इतिहास का हमारा अनुभव इससे एकदम अलग था; हमारे शिक्षकों ने जुनून से पढ़ाते हुए इस विषय को जीवन्त बना दिया था, और वे हम सबके भीतर भी ऐसी ही भावनाएँ भरने में कामयाब हो गए थे। और अपने शिक्षकों से लगातार शाबाशी पाते हुए हमें कक्षा में और ज्यादा से ज्यादा भागीदारी करने के लिए प्रेरणा मिलती थी।

हमारी कक्षा का वातावरण ऐसा नहीं था जहाँ हम सिर्फ नई विषय सामग्री पढ़ते थे, बल्कि वह ऐसी जगह थी जहाँ हम अपने दृष्टिकोणों पर सवाल खड़े करके, उन्हें चुनौती देकर उनका पुनर्आकलन करते थे। हमारे शिक्षकों और साथियों द्वारा मिलकर जो उन्मुक्त वातावरण बनाया गया था उससे हमें विषय–प्रसंगों पर खुलकर काम करने का आत्मविश्वास मिलता था। जिस चीज का हमें सबसे अधिक इन्तजार होता था तथा जिसमें हमें सबसे ज्यादा मजा आता था वह था कक्षा में होने वाली बहसों में बढ़–चढ़कर भाग लेना व दृढ़तापूर्वक उस बात को कहना जिस पर हमें विश्वास होता था। हमारी बातों व विचारों को टालने या खारिज करने के बजाय जिस ढंग से हमारे शिक्षक बहसों के दौरान हमारे दृष्टिकोणों को चुनौती देते थे उससे प्रेरित होकर हम अपने मतों के समर्थन में और साक्ष्यों की खोज करते थे। हम बहुत भाग्यशाली थे जो हमारी इतिहास की कक्षा में हमें ऐसे साथी मिले जिन्हें इस विषय के प्रति उतना ही जुनून था जितना कि हमें। हमें एक–दूसरे से बात करने, चर्चा करने में बहुत मजा आता था, और एक दूसरे के साथ तर्क–वितर्क करने से हमें मजबूती से अपनी बात कहना सीखने में मदद मिली। हमारी बड़ी जीवन्त यादें हैं कि किस प्रकार हम हमेशा कक्षा में उस दिन के विषय–प्रसंग को लेकर बहस करने में तल्लीन हो जाते थे बजाय कि अस्थिर चित्त से अपने पैंसिल बॉक्स के साथ कोई फिजूल हरकतें करने के – जो कि बाकी विषयों की कक्षाओं में आम बात होती थी। अपने आप को प्रभावशाली ढंग से व्यक्त करने की आकांक्षा और क्षमता ऐसी बातें हैं जो हमेशा हमारे साथ रही हैं। अब हमें अपने सामाजिक व राजनैतिक ख्यालों को स्पष्टता से सामने रख पाने का, और साक्ष्यों पर आधारित तर्क निर्मित कर पाने का पूरा आत्मविश्वास रहता है।

हो सकता है कि कई लोगों के लिए यह समझ पाना कठिन हो कि इतिहास जैसा सामाजिक विज्ञान का कोई विषय पढ़ने से दुनिया के बारे में किसी व्यक्ति का दृष्टिकोण किस प्रकार प्रभावित हो सकता है। इतिहास जैसे सामाजिक विज्ञान के अध्ययन ने हमें किसी भी संस्था के मंतव्य (एजेण्डे) पर तथा इसके चलते उनके द्वारा बाँटी जाने वाली चुनिन्दा जानकारी पर सवाल खड़े करना सिखाया है। उदाहरण के लिए, द्वितीय विश्वयुद्ध के बारे में पढ़ते वक्त, हमें यह देखने को मिला कि किस प्रकार ब्रिटिश सरकार ने लोगों का मनोबल कायम रखने के लिए अपने मत के प्रचार के लिए अभियान चलाए, जबकि खबरों और विचारों के बाकी स्रोतों पर प्रतिबन्ध लगा दिया। हम आज के दौर में, अपने सन्दर्भ में भी किसी न किसी मत–विशेष को प्रचारित करने के या उसे प्रतिबन्धित करने के उदाहरण अक्सर देखते हैं – जो कुछ भी हम देखते हैं वह सब इस तरह से तैयार किया जाता है कि हम किसी न किसी ढंग से प्रभावित हों। इस प्रकार, आज के इस दौर में संचार–माध्यमों का उपभोक्ता होने के नाते, हमारे लिए यह और भी जरूरी हो जाता है कि किसी भी स्रोत पर बिना सोचे समझे आँख मूँदकर भरोसा करने से पहले हम उसके मंतव्य को समझें। उदाहरण के लिए, आम चुनावों के दौरान वामपन्थी विचारधारा वाले व दक्षिणपन्थी विचारधारा वाले, दोनों तरह के अखबारों में छपे लेखों को पढ़ने पर हमें यह समझ में आया कि किस तरह राजनैतिक एजेंडे चुनाव का वर्णन करने के ढंग को प्रभावित करते हैं। इसे ध्यान में रखते हुए, हम इस बारे में

जानकारी पर आधारित समझदारी भरे निर्णय ले सके कि हमें किसका समर्थन करना चाहिए और क्यों।

> *इतिहास जैसे सामाजिक विज्ञान के अध्ययन ने हमें किसी भी संस्था के मंतव्य (एजेंडे) पर तथा इसके चलते उनके द्वारा बाँटी जाने वाली चुनिन्दा जानकारी पर सवाल खड़े करना सिखाया है।*

हालाँकि, शुरुआती वर्षों में हमारी इतिहास की शिक्षा का केन्द्रबिन्दु ब्रिटेन हुआ करता था, परन्तु बाद के वर्षों में हमने यूरोपेत्तर इतिहास भी पढ़ा, जैसे कि वियतनाम युद्ध, भारतीय स्वतंत्रता आन्दोलन और आधुनिक अमरीका का इतिहास। इस सबके माध्यम से हमें सत्ता की राजनीति और उसके अभिव्यक्त होने के विभिन्न प्रकारों – चाहे औपनिवेशीकरण के माध्यम से हो, या अलगाव के माध्यम से या फिर हिंसा के द्वारा – को जानने–परखने का मौका मिला। इन वैश्विक घटनाओं की पेचीदगियों के बारे में पढ़ने से हमें आज की दुनिया की राजनैतिक परिस्थितियों व संघर्षों को बेहतर ढंग से समझने में मदद मिली। एक प्रसंग जिसने हमें खास तौर पर बहुत प्रभावित किया वह था 1930 के दशक में गाँधी द्वारा नमक सत्याग्रह के लिए की गई सामूहिक दाण्डी पदयात्रा। हालाँकि गाँधी ने इस पदयात्रा का नेतृत्व किया था लेकिन वह लोगों द्वारा उसे मिले समर्थन के कारण सफल हुई। इससे हमें यह समझ में आया कि बदलाव एक महत्वपूर्ण व्यक्ति के कारण नहीं होता है, बदलाव लाखों लोगों के कारण हो पाता है। नमक सत्याग्रह में शामिल जनसैलाबों से लेकर मार्टिन लूथर किंग के वॉशिंगटन मार्च को समर्थन देने वाले लाखों लोगों तक, हमने इतिहास को सिर्फ नेताओं के बारे में होने वाले अध्ययन के बजाय लोगों के अध्ययन के रूप में तथा उन्होंने कैसा आचरण करना पसन्द किया, इसके अध्ययन के रूप में देखना शुरू किया।

हमें यह बात साफ हो गई कि इतिहास सिर्फ कक्षा के भीतर सीमित रहने वाला विषय न होकर हमारी अपनी जिन्दगियों में प्रकट रूप से मौजूद है। इसे एक ऐसे शहर में, जहाँ अध्ययन के स्रोत व साधन बहुत सरलता से उपलब्ध रहते हैं, पढ़ने से मिले लाभों ने भूले बिसरे अतीत में जान फूँक दी। समसामयिक घटनाक्रमों से, तथा सार्वजनिक पुस्तकालयों व संग्रहालयों में स्थित प्राचीन शिल्पकृतियों से परिचित होने से इतिहास का हमारा अनुभव बहुत बढ़िया हो गया था। हम अपने पूरे स्कूली दौर में ढेर सारी अध्ययन–यात्राओं पर गए। हमें अभी भी याद है जब हमने हैनरी अष्टम द्वारा सैकड़ों साल पहले इस्तेमाल की गई लिखने की मेज देखी थी। हमें ऐसा लगा था मानों हम प्रदर्शनी में उसे देख रहे थे और वह अपनी मेज पर बैठा लिख रहा था, जबकि हम दर्शनार्थी इतिहास के रेशों को मिलाकर उसकी कहानी बनाने का प्रयास कर रहे थे।

भिन्न–भिन्न अध्ययन उपकरणों के मिश्रण ने इतिहास को हमारे लिए बेहद आकर्षक और दिलचस्प बना दिया है। कक्षा के भीतर, विषय को लेकर हमारे उत्साह को और बढ़ाने में हमारे शिक्षकों की भूमिका सर्वोपरि थी जिन्होंने हमें और शोध करने की तथा और पढ़ते रहने की प्रेरणा दी, जबकि कक्षा के बाहर मौजूद स्रोतों की बहुतायत से हमें समसामयिक घटनाओं को लेकर अपना दृष्टिकोण तय करने में मदद मिली। लेकिन, हमें फिर भी यह पता है कि अभी भी इतिहास का हमारा ज्ञान हमारे चारों ओर की दुनिया के बारे में हमें सुविज्ञ दृष्टिकोण दे पाने के लिए पर्याप्त से भी बहुत कम है। अपने इतिहास–ज्ञान को लेकर यह समझ होना भी बहुत महत्वपूर्ण है, क्योंकि इसका मतलब यह हुआ कि हम हमेशा ही और ज्यादा जान पाने व सीख पाने के तरीकों को ढूँढ़ने की तलाश में रहते हैं ताकि हमें अपने चारों ओर की दुनिया की एक ज्यादा समग्र तस्वीर मिल सके। चाहे ऐतिहासिक लम्हों के दौरान जीने की बात हो या भविष्य में होने वाले बदलावों के बारे में सोचना हो, इस विषय के हमारे अनुभव ने हमारे नजरिए और सोच पर अपनी स्पष्ट छाप छोड़ी है। सोचने पर समझ में आता है कि इस पेचीदा सामाजिक विज्ञान के अध्ययन ने हमारे विचारों और हमारे आचरणों, दोनों को प्रभावित किया है और अभी भी कर रहा है।

गुरमीत कौर *ने अपनी पूरी शिक्षा के दौरान इतिहास की पढ़ाई का बहुत आनन्द लिया है, और हाल ही में उन्होंने इतिहास में अपना ए–लेवल पूरा किया है। इस लेख के लिखे जाने यानी सितम्बर 2010 तक वे लन्दन स्कूल ऑफ इकॉनोमिक्स में इतिहास पढ़ने की योजना बना रही थीं। उन्हें कविताओं में तथा साहित्य पढ़ने में बहुत मजा आता है। उनसे इस gurmeet-kaur@hotmail.co.uk ईमेल पते पर सम्पर्क किया जा सकता है।*

मरिअम साहिब *ने जीसीएसई स्तर तक इतिहास की पढ़ाई की, पर वे लगातार राजनैतिक और ऐतिहासिक चर्चा में भाग लेती रहती हैं। इस लेख के लिखे जाने यानी सितम्बर 2010 तक वे सिटी यूनिवर्सिटी में ऑप्टोमैट्री पढ़ने की योजना बना रही थीं। उन्हें खेलों में, खासतौर पर फुटबॉल खेलने में, बहुत मजा आता है। उनसे इस mariam_sahib@hotmail.com ईमेल पते पर सम्पर्क किया जा सकता है।*

31 सामाजिक विज्ञान आखिर कितने वैज्ञानिक हैं?

मानस शर्मा

सामाजिक विज्ञान बहुत ही महत्वपूर्ण और अद्भुत अध्ययन क्षेत्र हैं। सामाजिक विज्ञानों में, जो विज्ञान का ही एक भाग हैं, मानव शास्त्र से लेकर समाजशास्त्र तक, विविध प्रकार के बहुत से विषय समाहित रहते हैं। सामाजिक विज्ञानों में ऐसे ढेर सारे प्रसंग शामिल रहते हैं जो समूहों में, या फिर अकेले व्यक्ति के रूप में मनुष्य के अनुभव/आचरण को समझने के लिए बहुत महत्वपूर्ण होते हैं।

परिभाषा के मुताबिक, सामाजिक विज्ञान, विज्ञान की वह शाखा है जो प्राकृतिक दुनिया के मानवीय पहलुओं का अध्ययन करती है (विज्ञान की अन्य दो शाखाएँ हैं प्राकृतिक विज्ञान और औपचारिक विज्ञान)। विधि, अर्थशास्त्र, और मनोविज्ञान सामाजिक विज्ञानों के कुछ प्रकार हैं। सामाजिक विज्ञान प्राचीन यूनानियों के समय से ही अध्ययन का एक क्षेत्र रहे हैं और तब से लेकर आज तक उनका विकास होता रहा है। समय के साथ सामाजिक विज्ञान विकसित हुए और उन्हें अपनाने वाले लोगों की संख्या भी बहुत बढ़ी है। कुछ कॉलेजों, जैसे कि येल विश्वविद्यालय, में अन्य विषयों की अपेक्षा सामाजिक विज्ञानों पर ज्यादा ध्यान दिया जाता है। अन्य विज्ञानों के समान एकदम श्वेत या श्याम होने के बजाय सामाजिक विज्ञान गुणात्मक जानकारियों पर अधिक आधारित होते हैं, इसलिए यद्यपि वे व्याख्या व विवेचना के हिसाब से ज्यादा लचीले होते हैं, तथापि उनकी प्रकृति उतनी ही वैज्ञानिक है जितनी बाकी विज्ञानों की। दुर्भाग्य से, सामाजिक विज्ञानों को प्राकृतिक या औपचारिक विज्ञान की तरह से व्यापक तौर पर विज्ञान के रूप में मान्यता नहीं मिली है, पर वे भी उतने ही विज्ञान हैं जितने प्राकृतिक और औपचारिक विज्ञान।

विधि सामाजिक विज्ञान का एक अच्छा उदाहरण है। जितना लोग सोचते होंगे, विधि उससे कहीं ज्यादा है। अधिवक्ताओं को तमाम संघीय कानूनों का ज्ञान रखना पड़ता है, अपने गृह राज्य के सभी कानूनों की जानकारी रखनी पड़ती है, उनके संवाद कौशल बहुत अच्छे होना जरूरी होता है, और उनमें कई तरीकों से समीक्षात्मक ढंग से सोच सकने की क्षमता होना चाहिए। विधि पढ़ने मात्र के लिए आवश्यक समीक्षात्मक सोच इस विषय के विज्ञान कहला सकने के लिए पर्याप्त है। वकीलों को बहुत सारी चीजों के बारे में ढ़ेर सारी समझ होना जरूरी होता है। यद्यपि वकीलों को भौतिकी या रसायन शास्त्र या इसी तरह की कोई और चीज का ज्ञान होना आवश्यक नहीं होता, फिर भी वैज्ञानिक रूप से वे उतने ही ज्ञानी होते हैं जैसे, समझो, आइज़ैक न्यूटन या मैडम क्यूरी। उनके अपने ढंग से।

सामाजिक विज्ञान का, विधि से बेहतर उदाहरण हो सकता है, अर्थशास्त्र। एक शब्द में कहें तो अर्थशास्त्र, यानि, पूँजी। अर्थशास्त्र इन बातों का अध्ययन है कि पैसा कैसे तब्दील होता है, उसके तब्दील होने की दर क्या होती है, तथा वह और किन संभावित ढंगों से तब्दील हो सकता है और तब उसकी दर क्या होगी। हालाँकि, अर्थशास्त्र का सीधे तौर पर विज्ञान से वास्ता नहीं होता, लेकिन फिर भी वह उतना ही वैज्ञानिक है जितना कि विज्ञान के विषय। लगभग 50-60% कॉलेजों में व्यवसाय या अर्थशास्त्र पढ़ने के लिए कैलकुलस (कलन) की जरूरत पड़ती है। विज्ञान के कुछ और विषयों जैसे भौतिकी या रसायनशास्त्र में भी कैलकुलस की आवश्यकता पड़ती है। चूँकि, अर्थशास्त्र और विज्ञान, दोनों में कैलकुलस की आवश्यकता होती है, अतः इस तरह से भी अर्थशास्त्र एक विज्ञान ही साबित होता है।

सम्भवतः सामाजिक विज्ञानों में से सबसे ज्यादा वैज्ञानिक प्रकृति मनोविज्ञान की है। मनोविज्ञान मानवीय व्यवहारों का अध्ययन होता है, कि व्यवहार किस तरह बदलते हैं, मानसिक रोग क्या होते हैं, और इसमें बुनियादी रूप से लोगों के व्यवहार के तरीकों से लेकर उनके भावनात्मक पहलू तक, सब कुछ शामिल रहता है। मनोविज्ञान को पढ़ने के लिए जिन बातों की आवश्यकता होती है, उन्हें मद्देनजर रखते हुए इस विषय को उतना ही श्रेय दिया जाना चाहिए जितना किसी विज्ञान के विषय को। मनोविज्ञान के अध्ययन हेतु जीवविज्ञान, रसायनशास्त्र , साँख्यिकी तथा उच्च श्रेणी की मनोविज्ञान कक्षा की पढ़ाई जरूरी होती है। जीवविज्ञान, रसायनशास्त्र, और (कभी–कभी) साँख्यिकी की जरूरत विज्ञान के कई क्षेत्रों जैसे कि इंजीनियरिंग में भी पड़ती है। मनोविज्ञान तथा विज्ञान के लिए जरूरी साझा आवश्यकतों के चलते यह साबित हो जाता है कि मनोविज्ञान भी हर तरह से बिलकुल उतना ही विज्ञान है जितना की विज्ञान के वास्तविक क्षेत्र।

सामाजिक विज्ञान जीवन के, और हमारी आसपास की दुनिया के बेहद महत्वपूर्ण और अद्भुत अंश हैं। यद्यपि उनकी प्रकृति उतनी वैज्ञानिक नहीं है, और सम्भवतः वे जरा ज्यादा अमूर्त हैं, फिर भी सामाजिक विज्ञानों को लोगों द्वारा और ज्यादा अपनाया जाना चाहिए, क्योंकि लोगों को जानने के द्वारा ही तो आप अपनी आसपास की दुनिया को जान सकते हैं।

मानस शर्मा *का जन्म लोवैल, मैसाचुसेटस में 1994 में हुआ। वर्तमान में वे श्यूसबरी हाईस्कूल में 11वीं कक्षा में पढ़ रहे हैं और श्यूसबरी, मैसाचुसेटस में अपने माता–पिता तथा छोटे भाई के साथ रहते हैं। उनकी पसन्दीदा गतिविधियाँ हैं, मौसम के मेहरबान होने की स्थिति में दोस्तों के साथ बाहर जाकर खेलना, और अपने प्रिय हास्य कार्यक्रम ''जॉर्ज लोपेज़'' और ''द बिग बैंग थ्योरी'' देखना। उनसे इस mnsarma@hotmail.com ईमेल पते पर सम्पर्क किया जा सकता है ।*

खण्ड - फ

फिल्म समीक्षा और स्रोत किट

32 तारीखों और लड़ाइयों से परे!

उमाशंकर पेरिओडी

बच्चों के लिए इतिहास पर आधारित दीपा धनराज की एक वीडियो शृंखला, यंग हिस्टोरियन्स, की समीक्षा

आप प्राथमिक स्कूल के बच्चों को इतिहास कैसे पढ़ाएँगे? इतिहास की किसी कक्षा में बच्चों को क्या अनुभव मिलना चाहिए? बच्चों को इतिहास पढ़ाने का क्या महत्व है? इतिहास के शिक्षक को कक्षा में प्रवेश करने से पहले क्या तैयारियाँ करना चाहिए? इतिहास की किसी अच्छी कक्षा के कुछ पहलू क्या हैं? आप इतिहास की कक्षा को रुचिकर और सार्थक कैसे बना सकते हैं? अगर इतिहास तारीखों और राजाओं की लड़ाइयों के बारे में नहीं है, तो फिर इतिहास आखिर है क्या?ये वे प्रश्न हैं जो आमतौर पर हमारे शिक्षकों के सामने रहते हैं। कई लोगों ने इन प्रश्नों के जवाब ढूँढने के प्रयास किए हैं। लोगों ने इन प्रश्नों का जवाब लेखों, पुस्तकों, व्याख्यानों, कार्यशालाओं और चर्चाओं के द्वारा दिया है। दीपा धनराज ने इन प्रश्नों का बहुत ही सार्थक जवाब देने का प्रयास एक ऐसे माध्यम से किया है, जिसमें वे बहुत कुशल हैं – वीडियो फिल्म। उन्होंने **यंग हिस्टोरियन्स** नामक 9 वीडियो फिल्मों की एक शृंखला बनाई है। इसके लिए उन्होंने प्राथमिक स्कूल के छात्रों के एक समूह के साथ विभिन्न स्थानों की यात्रा की, और वहाँ एक रचनाशील शिक्षक की सहायता से उन बच्चों की इतिहास को समझने की प्रक्रिया को कैमरे में कैद किया है।

दीपा की बनाई गई वीडियो शृंखला बहुत अनोखी है। इसमें आधे–आधे घण्टे की 9 फ़िल्में हैं। वैसे हर फ़िल्म को अलग–अलग देखा जा सकता है, लेकिन बेहतर और व्यापक समझ के लिए इन्हें एक साथ भी देखा जा सकता है। मैंने इन फिल्मों को विभिन्न दर्शकों के साथ विभिन्न उद्देश्यों को लेकर कई बार देखा है। फिल्मों की भाँति ये किसी भी सामान्य व्यक्ति को शिक्षित करती हैं और उसका मनोरंजन करती हैं। बच्चों के लिए इन फिल्मों को देखना एक रोमांचकारी अनुभव है, जो आभासी ढंग से ऐतिहासिक महत्व के स्थानों पर ले जाकर उन्हें ढेर सारे आनन्द और चुनौतियों के साथ कुछ इतिहास सिखाता है। शिक्षक और शिक्षक–प्रशिक्षकों के लिए ये फिल्में विषय का ज्ञान तो देती ही हैं, साथ में इतिहास पढ़ाने की शिक्षण–कला भी दर्शाती हैं।

कोटागनहल्ली रमैय्या द्वारा लिखित पटकथा बहुत सरल प्रतीत होती है। 16 बच्चों का एक समूह एक गतिशील और रचनाशील शिक्षक के साथ सक्रियता से भाग लेकर अन्वेषण करते हुए इतिहास का अध्ययन करता है; शिक्षक इस पूरी प्रक्रिया को पेशेवरों, विशेषज्ञों, शोधार्थियों और कलाकारों की मदद से सुगम बनाता है। विषय का चयन, बच्चों की सक्रिय भागीदारी, भव्य स्थान और आवश्यक प्रतिक्रिया हासिल करने के लिए इस्तेमाल किए गए कला के विभिन्न रूप, ये सब इस शृंखला को देखने के अनुभव को सुखद और समृद्ध बनाते हैं।

हमारे परिवार का इतिहास (अवर फैमिली हिस्ट्री) (30:59 मिनट)

शृंखला की शुरुआत इस फिल्म से होती है जिसमें बच्चे अपने स्वयं के परिवार का इतिहास खोजते हैं। प्रारम्भ में, बच्चे लोक इतिहासकार – येलावारू से मिलते हैं, जिन्होंने विभिन्न परिवारों के इतिहासों को रचा और बनाए रखा है। इसमें हमें मौखिक इतिहास रचने और उसे सम्बन्धित परिवारों को गाकर सुनाने की प्रक्रिया की झलक मिलती है। बच्चे अपने परिवार के सदस्यों से मिलते हैं और उनकी मदद से वे अपने परिवार का इतिहास रचते हैं। वे परिवार के बड़े–बूढ़ों से मिली जानकारी के आधार पर वंश वृक्ष बनाते हैं। इस कार्य के लिए दलित समूह के बच्चों का चयन करना अपने–आप में एक शक्तिशाली वक्तव्य बन जाता है। परिवार के सदस्य बताते हैं कि किस तरह पुराने समय में उन्हें ऊँची जातियों के परिवारों का मैला और गन्दा पानी अपने सिर पर ढो कर ले जाना पड़ता था।

> *बच्चों के लिए इन फिल्मों को देखना एक रोमांचकारी अनुभव है, जो आभासी ढंग से ऐतिहासिक महत्व के स्थानों पर उन्हें ले जाकर ढेर सारे आनन्द और चुनौतियों के साथ कुछ इतिहास सिखाता है। शिक्षक और शिक्षक–प्रशिक्षकों के लिए ये फिल्में विषय का ज्ञान तो देती ही हैं, साथ में इतिहास पढ़ाने की शिक्षण–कला भी दर्शाती हैं।*

हमारे गाँव का इतिहास (अवर विलेज हिस्ट्री) (31:30 मिनट)

इस प्रस्तुति में बच्चे अपने गाँव जाकर बुजुर्गों से बात करके गाँव के कुछ प्रमुख पहलुओं – ऊँची जाति के लोगों का कुआँ, एक पुराना मन्दिर और अन्न भण्डार – के बारे में जानकारी इकट्ठा करते हैं। ये बुजुर्ग महाअकाल और 1942 के भारत छोड़ो आन्दोलन के बारे में अपने अनुभव सुनाते हैं। वे दूसरे विश्व युद्ध के बाद अनाज की राशन व्यवस्था की शुरुआत के बारे में भी बताते हैं। छात्रों के द्वारा

लोगों से जानकारियाँ इकट्ठी करने और फिर अपने समूह में बातचीत, तर्क, खण्डन और प्रमाणन के द्वारा उन्हें गहराने की प्रक्रिया बहुत दिलचस्प है।

पुरातत्व और मूर्तिकला (आर्कियालॉजी एण्ड स्कल्पचर) (30:40 मिनट)

इसकी शुरुआत में सहायक की भूमिका निभाते शिक्षक बच्चों के सामने कुछ घरेलू चीजें फैला देते हैं और उनसे कहते हैं कि वे उनके आधार पर घरों की प्रकृति, उनमें रहने वाले लोगों की संख्या, उनके व्यवसाय, उनकी खाने की आदतों आदि के बारे में सोचकर व्याख्या करें। इसके बाद छात्रों में बहुत ही जोशीली चर्चा शुरू हो जाती है। चर्चा, चुनौती से जूझने, और अनुमान लगाने के द्वारा वे उपलब्ध सबूतों की सहायता से कुछ निष्कर्षों पर पहुँचते हैं। बाद में एक विशेषज्ञ उत्तर पश्चिम कर्नाटक में एक स्थान से निकाले गए पत्थर के औजारों की मदद से बच्चों को हजारों वर्ष पूर्व रहने वाले लोगों के जीवन के बारे में समझाते हैं। अन्तिम हिस्से में, बच्चे ऐहोल जाते हैं और वहाँ मूर्तियों के माध्यम से इतिहास सीखते हैं।

शिलालेखों के माध्यम से इतिहास का अध्ययन (लर्निंग हिस्ट्री थ्रू इंस्क्रिप्शन्स) (29:42 मिनट)

बच्चे बदामी और पट्टडाकल्लु जाकर मन्दिरों और भग्न स्मारकों में प्राप्त शिलालेखों के माध्यम से इतिहास को खोजते हैं। एक विशेषज्ञ उन्हें कागज पर शिलालेख की नकल करके उसे पढ़ने की प्रक्रिया समझाता है। अन्त में शिक्षक मन्दिरों की बहुआयामी भूमिका के बारे में विस्तार से समझाते हैं। वे बताते हैं कि किस तरह ये मन्दिर पूजा, मनोरंजन, व्यापार, कारोबार, न्याय और शिक्षा के केन्द्र थे।

समुद्री मार्ग (सी रूटस) (29:59 मिनट)

इस फिल्म में बच्चे समुद्री रास्तों के बारे में जानकारी लेने तटीय कर्नाटक में जाते हैं। एक स्थानीय शिक्षक ग्लोब की सहायता से पुराने समय में व्यापारियों द्वारा इस्तेमाल किए जाने वाले रास्तों को ढूँढ निकालने में और फिर उन्हें नक्शे पर अंकित करने में बच्चों की मदद करते हैं। फिर वे एक नौका में यात्रा करते हैं और नाविक से गहरे समुद्र में रास्ते ढूँढने की प्रक्रिया पता करते हैं। अन्त में वे एक जहाज बनाने वाले यार्ड में जाते हैं और वहाँ काम करने वालों से बात कर जहाज बनाने की प्रक्रिया के बारे में जानकारी लेते हैं।

व्यापार और इतिहास (ट्रेड एण्ड हिस्ट्री) (31:16 मिनट)

इस क्षेत्र के एक स्थानीय विशेषज्ञ भारत के एक प्राचीन बन्दरगाह बसरूर में उस समय जोर–शोर से होने वाले व्यापार के बारे में समझने में बच्चों की मदद करते हैं। बच्चे उनकी सहायता से किसी भी बन्दरगाह के उत्थान और पतन के लिए जिम्मेदार विभिन्न प्राकृतिक और मानवनिर्मित परिस्थितियों के बारे में समझते हैं। वे स्थानीय जैन बसादी का भ्रमण करते हैं और प्रतिमाओं के माध्यम से पता लगाने की कोशिश करते हैं कि उनके दूसरे देशों, जैसे चीन, अफ्रीका और मध्य पूर्व, के साथ कैसे सम्पर्क और सम्बन्ध रहे हो सकते हैं। मूडाबिद्री के जैन बसादी में एक चीनी ड्रैगन और अफ्रीकी जिराफ की नक्काशी देख कर बच्चे बहुत उत्साहित होते हैं। सिक्के जमा करने वाला एक व्यक्ति बच्चों को सिक्कों के जरिये इतिहास बताता है।

जैन धर्म और गोमतेश्वर (जैनिज़्म एण्ड गोमतेश्वर) (29:00 मिनट)

यह फिल्म एक कथावाचक (भवानी) द्वारा बाहुबली की कहानी के वर्णन से शुरू होती है। बच्चे श्रवणबेलगोला में बाहुबली की विशालकाय पत्थर की मूर्ति देखने जाते हैं और करकला के एक मूर्तिकार से मूर्तियों को गढ़ने की बारीकियाँ और तरीके के बारे में सीखते हैं। वे मूडाबिद्री के बसादी में हजारों खम्भों को देखते हैं और एक गमका गायक द्वारा पम्पा के आदिपूर्ण के गायन से जैन धर्म की झलकियाँ पाते हैं। यह चर्चा, कि किस तरह साहित्य हमें इतिहास को निर्मित करने के लिए कुछ संकेत देता है, बहुत गहरी समझ प्रदान करती है।

जातक कथाएँ और बौद्ध धर्म (जातक टेल्स एण्ड बुद्धिज़्म) (29:40 मिनट)

इस इकाई की शुरुआत गौतम बुद्ध के जीवन की कहानी से होती है। जातक कथाओं की दो रोचक कहानियों (हंस, तथा गौतम और देवदत्त) का बहुत सुन्दर चित्रों के माध्यम से बच्चों से वर्णन किया जाता है। ह्वेनसांग के यात्रा वृतान्त का उपयोग करते हुए नालन्दा में प्राचीन समय में स्थित विश्वविद्यालय के बारे में जानकारी दी जाती है। इसे बहुत सुन्दर चित्रों से सजीव बना दिया गया है। अन्त में बच्चे अपनी यात्रा का विवरण लिखते हैं और एक अच्छे यात्रावृतान्त के उपयोग और उसके आवश्यक अंगों के बारे में बातचीत करते हैं।

वचनों से प्रगट होने वाला इतिहास (हिस्ट्री वचन्स रिवील) (27:59 मिनट)

इस अन्तिम फिल्म में 12वीं शताब्दी के भक्ति आन्दोलन के वचनकारों द्वारा रचित वचनों से इतिहास को समझने का प्रयास किया गया है। एक स्थानीय मण्डली बासवन्ना के चुने हुए वचनों को गाती है और बच्चे उनसे प्रश्न पूछकर इन वचनों की पृष्ठभूमि और सन्दर्भ को समझने का प्रयास करते हैं, ताकि वे उस परिस्थिति की कल्पना कर सकें जिसके फलस्वरूप साधारण लोग एक ऐसे

आन्दोलन में कूद पड़े जिसने सभी तरह के भेदभाव के खिलाफ लड़ाई लड़ी और एक ऐसे समाज को बनाने का प्रयास किया जो **न्यायपूर्ण, मानवीय** और **समतावादी** था।

> *विषयों का चयन बहुत सावधानी और सोच के साथ किया गया है। ऐतिहासिक महत्व के स्थानों पर जाने और विशेषज्ञों तथा क्षेत्र में सक्रिय लोगों के साथ बातचीत करने से फिल्में बहुत समृद्ध और लाभप्रद बन गई हैं।*

पूरी फिल्म शृंखला की विषयवस्तु बहुत उम्दा ढंग से तैयार की गई है। इतिहास की कक्षा में क्या पढ़ाया जाना चाहिए, इसका सार बहुत प्रभावी ढंग से सामने आता है। विषयों का चयन बहुत सावधानी और सोच के साथ किया गया है। ऐतिहासिक महत्व के स्थानों पर जाने और विशेषज्ञों तथा क्षेत्र में सक्रिय लोगों के साथ बातचीत करने से फिल्में बहुत समृद्ध और लाभप्रद बन गई हैं। निर्माण–दल ने बहुत कुशलता के साथ इस माध्यम का प्रयोग किया है। फ्रेमों, रंगों और प्रकाश, इन सबके निपुण संयोजन से कुछ दृश्य तो अच्छी पेंटिंग जैसे बन गए हैं। भ्रमण करने के लिए उन्होंने जिन स्थानों को चुना है वे बहुत समृद्ध हैं और उनमें विविधता है और इसीलिए पूरी शृंखला देखने में ऊब और थकान नहीं होती।

दीपा ने विभिन्न तरीकों और माध्यमों का बहुत प्रभावी ढंग से प्रयोग किया है, जैसे वास्तविक स्थानों का भ्रमण करना, शिक्षकों, बुजुर्गों और परिवार के सदस्यों से मिलना, शिक्षकों का खास विषयों को प्रस्तुत करना, उस क्षेत्र में काम कर रहे लोगों से चर्चा करना, विशेषज्ञों और शोधकर्ताओं से जानकारी लेना आदि। उन्होंने अपने सन्देश को प्रभावी ढंग से पहुँचाने के लिए कुछ माध्यमों, जैसे वर्णन, कहानी कहने, लोक गीत, रंगीन चित्र, एनीमेशन आदि का कल्पनाशील तरीके से प्रयोग किया है। छात्रों और शिक्षकों द्वारा पूछे गए गहरे प्रश्न हमें रुक कर सोचने पर मजबूर करते हैं। फिल्म में कई हल्के–फुल्के क्षण भी हैं, जैसे जब बच्चे बन्दरों को खेलते हुए देखते हैं। कई जगहों पर मौन के अन्तराल भी हैं, जो राहत देते हैं और हमें तब तक चर्चित मुद्दों के बारे में सोचने और पुनरीक्षण करने में मदद करते हैं। एक विषय से दूसरे विषय पर जाना काफी सहज और तर्कसंगत है।

यह फिल्म शृंखला बहुत असरदार ढंग से यह सन्देश देती है कि यह कतई जरूरी नहीं कि इतिहास का पढ़ाना बहुत बोझिल और उबाऊ हो, या फिर उन तारीखों को याद रखने तक सीमित हो, जब राजाओं ने आपस में लड़ाइयाँ की थीं। बच्चे सर्वोत्तम पाने के हकदार होते हैं और उन्हें श्रेष्ठ प्रस्तुति प्रदान करने के लिए दीपा बहुत धन्यवाद की पात्र हैं।

निर्माता और निर्देशक– दीपा धनराज

चित्रांकन – नवरोज़ कॉट्रैक्टर

पटकथा – कोटागनहल्ली रमैय्या

मार्गदर्शक अध्यापक – चेग्गा रेड्डी

प्रस्तुतकर्ता – ईडीसी और डीएसईआरटी

2005 में निर्मित और 2007 में प्रस्तुत

ये फिल्म कन्नड़ में है और इसमें अंग्रेजी के सबटाईटल्स हैं।

उमाशंकर पेरिओडी *अज़ीम प्रेमजी फाउण्डेशन में चाईल्ड–फ्रैंडली स्कूल इनीशिएटिव के प्रमुख हैं। उन्हें विकास क्षेत्र में करीब 25 वर्षों का अनुभव है। उन्होंने राष्ट्रीय साक्षरता मिशन में व्यापक योगदान देने के साथ–साथ कर्नाटक के बीआर हिल्स में आदिवासियों के शिक्षण में भी भूमिका निभाई है। वे कर्नाटक स्टेट ट्रेनर कलेक्टिव के अध्यक्ष भी हैं। उनसे इस periodi@azimpremjifoundation.org ईमेल पते पर सम्पर्क किया जा सकता है।*

33 संसाधन पिटारा

यह संसाधन पिटारा किसी भी प्रकार से अपने आप में सम्पूर्ण नहीं है। इसका संग्रह शिक्षा के क्षेत्र में कार्य कर रहे व्यक्तियों की मदद से किया गया है। इस हेतु अपना समय देने और प्रयास करने के लिए हम उन सभी को हार्दिक धन्यवाद देते हैं।

अ. वे संगठन जो सामाजिक विज्ञान में पाठ्यक्रम और सामग्री के विकास के मुद्दों पर स्कूल स्तर पर कार्य कर रहे हैं.

क्रमांक	संगठन का नाम	स्थान
1.	**एकलव्य**	भोपाल, मध्य प्रदेश
2.	**उत्तराखण्ड सेवा निधि**	अल्मोड़ा, उत्तराखण्ड
3.	**निरन्तर**	नई दिल्ली
4.	**खोज**	मुम्बई
5.	**अवेही अबाकस**	मुम्बई
6.	**स्वनिर्भर**, उत्तरी 24 परगना में स्थित एक संगठन	प. बंगाल
7.	**सहमत**, सफदर हाशमी मेमोरियल ट्रस्ट	नई दिल्ली
8.	**विद्या भवन सोसाइटी**	उदयपुर, राजस्थान
9.	**दिगन्तर**	उदयपुर, राजस्थान
10.	**प्रवाह**	दिल्ली

ब. वे स्कूल जिन्होंने सामाजिक विज्ञान के अध्यापन के लिए अनूठे तरीके प्रयोग किए हैं–

क्रमांक	स्कूल का नाम	स्थान
	द स्कूल	चेन्नई
	ऋषि वैली स्कूल (कक्षा 4 से 7 के लिए सामाजिक विज्ञान और इतिहास का पाठ्यक्रम)	मदनापल्लै
	शिशु वन	मुम्बई
	सेन्टर फॉर लर्निंग	बंगलौर, हैदराबाद
	आधारशिला	सेंधवा, मध्य प्रदेश
इनमें से अधिकांश स्कूलों की अपनी वेबसाइट है जहाँ से सम्पर्क–सूचना और सामग्री प्राप्त की जा सकती है।		

स. सामाजिक विज्ञान सामग्री के प्रकाशक

- **ग्रंथशिल्पी** – नई दिल्ली
- **एकलव्य,** भोपाल
- **भारत ज्ञान विज्ञान समिति,** दिल्ली
- **एनसीईआरटी,** नई दिल्ली
- **प्रकाशन विभाग,** नई दिल्ली

- **नेशनल बुक ट्रस्ट,** नई दिल्ली
- **चिल्ड्रन्स बुक ट्रस्ट,** नई दिल्ली
- **बुक्स ऑन सोशल साइंस एजुकेशन, सेज पब्लिकेशन्स,** नई दिल्ली
- **बुक्स पब्लिशड फॉर चिल्ड्रन बाय ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस,** नई दिल्ली
- **पीपुल्स हिस्ट्री सीरीज़, तूलिका पब्लिकेशन्स,** चेन्नई
- **कथा,** नई दिल्ली
- **तारा,** चेन्नई
- **नवायन,** नई दिल्ली

द. कुछ उपयोगी पुस्तकें

- **सामाजिक अध्ययन.** 6, 7 और 8 – एकलव्य, भोपाल द्वारा विकसित एवं प्रकाशित पाठ्यपुस्तकें (हिंदी)
- **टैक्स्टबुक ऑफ सोशल साइंस** कक्षा 6, 7 और 8 के लिए (इंग्लिश, 1994): एकलव्य, भोपाल
- **टैक्स्टबुक्स ऑफ सोशल साइंस** कक्षा 6 और 7 के लिए, लोक जुम्बिश परिषद, राजस्थान, 1999/2000 हेतु एकलव्य द्वारा विकसित
- **सामाजिक अध्ययन शिक्षण** – एक प्रयोग, एकलव्य द्वारा प्रकाशित
- **हमारी धरती, हमारा जीवन,** कक्षा 6, 7 और 8 के लिए, उत्तराखण्ड सेवा निधि, अल्मोड़ा द्वारा प्रकाशित पाठ्यपुस्तक
- **वर्कबुक्स फॉर राजस्थान टैक्सट बुक,** कक्षा 6, 7 और 8 के लिए
- **वर्कबुक्स ऑफ हरियाणा,** कक्षा 6, 7 और 8 के लिए (2008)
- **टैक्स्टबुक ऑफ छत्तीसगढ़,** कक्षा 3 से 8 के लिए: ईवीएस एंड सोशल साइंसेज़, एससीईआरटी, रायपुर
- **टैक्स्टबुक्स फॉर लद्दाख हिल कौंसिल ऑन एन्वॉयरन्मेंटल स्टडीज़ पार्ट टू,** कक्षा 4 और 5 के लिए
- **अवर ट्राइबल एन्सेस्टर्स. प्रिहिस्ट्री फॉर इंडियन स्कूल्स,** पार्ट 1 एंड 2, ऋषि वैली एजुकेशन सीरीज़
- **संगम ऐज एण्ड ऐज ऑफ द पल्लवाज़** – टीवीएस एजुकेशन सोसाइटी एंड मैक्मिलन
- **द यंग जिओग्राफर सीरीज़,** हेडन ईवान्स, व्हिटन – पैरगामॉन
- **जिओग्राफी डायरेक्ट** – कॉलिन्स एजुकैश्नल
- **खुशी–खुशी,** कक्षा 3, 4, 5 : एकलव्य, भोपाल
- **अपने आस–पास,** कक्षा 4 और 5 के लिए पाठ्यपुस्तक, दिगन्तर, जयपुर
- **कुछ करें,** विद्या भवन सोसाइटी, उदयपुर
- **टैक्स्टबुक्स ऑफ एनसीईआरटी,** कक्षा 3 से 8 के लिए: एनसीईआरटी, नई दिल्ली
- **टैक्स्टबुक्स ऑफ ईवीएस एण्ड सोशल साइंस,** कक्षा 3 से 8 के लिए, एससीईआरटी, दिल्ली

इ. कुछ स्रोत और सन्दर्भ पुस्तकें

- **इतिहास के स्रोत,** भाग– 1, शिक्षकों के लिए एक स्रोत पुस्तक, एकलव्य द्वारा प्रकाशित
- **पीपुल, प्लेसेज़ एण्ड चेंज :** एन इंट्रोडक्शन टू वर्ल्ड कल्चर्स, लेखक: बैरी और फोर्ड
- **पफ़िन हिस्ट्री ऑफ इण्डिया सीरीज़ बाइ पफ़िन बुक्स,** दिल्ली
- **रिपोर्ट ऑफ द सेमिनार ऑन एन्वॉयर्नमेंट स्टडीज़ (1995)** : विद्या भवन सोसाइटी

- **सोशल साइंस लर्निंग इन स्कूल्स** – डॉक्यूमेंटेशन ऑफ द एकलव्याज़ सोशल साइंस एक्सपरिमेंट, पूनम बत्रा द्वारा सम्पादित और सेज द्वारा प्रकाशित
- **टीचिंग सोशल साइंसेज़ इन स्कूल्स,** लेखकः अलेक्स एम जॉर्ज और अमन मदान, सेज द्वारा प्रकाशित
- **वॉक विद मी** – अ गाइड फॉर इन्सपायरिंग सिटीज़नशिप ऐक्शन – प्रवाह, नई दिल्ली
- **राइटिंग्स ऑफ टीचर्स आईडियाज़ फॉर द क्लासरूम** – ईस्ट वैस्ट बुक्स, मद्रास
- **सोशल स्टडीज़ इंस्ट्रक्शन इन द ऐलीमैंट्री स्कूल,** लेखकः रिचर्ड ई सैर्वे
- **लर्निंग फ्रॉम कॉन्फ्लिक्ट,** लेखकः प्रोफेसर कृष्ण कुमार
- **टर्निंग द पॉट टिलिंग द लैंड,** लेखकः कांचा इल्लैया – नवायन बुक्स
- **डिफ्रेंट टैल्स सीरीज़** – अन्वेषी एण्ड डी.सी. बुक्स, केरल

फ. रचना के लिए नमूने के तौर पर स्थानीय स्रोत पुस्तकें

- **अवर सिटी डेल्ही.** नारायणी गुप्ता – ऑक्सफर्ड यूनीवर्सिटी प्रेस
- **स्कूल एंड सोसाइटी एंड एरिया स्टडी ऑफ माइलापोर.** तारा पब्लिशिंग

ग. जर्नल

- **संदर्भ** (शिक्षकों के लिए)
- **विमर्श** (शिक्षकों के लिए)
- **चकमक** (बच्चों के लिए)
- **कंटम्परेरी एजुकेशन डॉयलाग**
- **इकॉनामिक एण्ड पोलिटिकल वीकली**
- **टीचर टॉक, अ जर्नल ऑफ द टीवीएस एजुकेशनल सोसाइटी**
- **जर्नल ऑफ द कृष्णमूर्ति स्कूल्स**

ह. फिल्में

- **द यंग हिस्टोरियन्स** – सीरीज़ ऑफ़ फिल्म्स, दीपा धनराज
- **भारत की खोज**, श्याम बेनेगल द्वारा निर्मित और निर्देशत टेलीसीरियल
- **भारत की छाप,** भारतीय इतिहास पर फिल्में
- **नाता** (सांप्रदायिकता पर) टीआईएसएस मुम्बई (अंजलि मोंटेरियो)
- **इण्डिया अनटच्ड** – स्टालिन (भारत में छुआछूत पर)
- **वॉर एण्ड पीस** – आनन्द पटवर्धन
- **मेकिंग ऑफ द महात्मा**. श्याम बेनेगल
- **अम्बेडकर**
- **नैनूक ऑफ द नॉर्थ** (एस्किमो लोगों के जीवन पर)

आइ. वेबसाइटस

- http://www.neok12.com/History-of-India.htm यहाँ सामाजिक विज्ञान के विषयों पर कई वीडियो हैं
- एकलव्य प्रकाशन, http://www.eklavya.in
- संगती इन्टरऐक्टिव टीचिंग लर्निंग किटस, http://avehiabacus.org/about.htmlhttp://schools.indiawaterportal.org
- मी एण्ड माय सिटी – सुनीता नाधमुनि एण्ड रमा ईराबेल्ली
- जनाग्रह सेन्टर फॉर सिटीज़नशिप एण्ड डेमोक्रेसी, www.janaagraha.org
- जल आधारित परियोजनाएँ एवं संसाधन, http://schools.indiawaterportal.org
- सांस्कृतिक विरासत सम्बन्धित स्रोत
- द इण्डियन नेशनल ट्रस्ट फॉर नेशनल एण्ड कल्चरल हैरीटेज, http://www.intach.org
- पाठ्यक्रम आधारित कहानी की पुस्तकें : आईईटीएस पब्लिकेशन्स
  http://www.ilfsets.com/solutions.asp?secid=1&menuid=3&smenuid=1&childid=1&subchildid=2&pageid=345
- इन्टरनेशनल सोशल साइंस कौंसिल की वैबसाइट http://www.worldsocialscience.org
- यूनेस्को का सामाजिक और मानव विज्ञान पेज, http://www.unesco.org/new/en/social-and-human-sciences और शिक्षण पेज http://www.unesco.org/en/education
- आईईए की सिविक एजुकेशन स्टडी लिंक, http://www.iea.nl/icces.html
- बॉंबे नैचुरल हिस्ट्री सोसाइटी, http://www.bnhs.org
- कल्पवृक्ष एन्वॉयर्नमेंट ऐक्शन ग्रुप, http://www.kalpavriksha.org
- सेंटर फॉर एन्वॉयर्नमेंट एजुकेशन, भारत, http://www.ceeindia.org/cee/index.html
- डाउन टू अर्थ पत्रिका, http://www.downtoearth.org.in
- सेन्टर फॉर साइंस एण्ड एन्वॉयर्नमेंट, भारत, http://www.cseindia.org

कुछ अन्य महत्वपूर्ण वेबसाइटस

http://www.school.discovery.com
http://www.nationalgeographic.com
http://www.incredibleindia.org
http://www.animalplanet.co.uk
http://www.greenpeace.org
http://www.britanica.com
http://www.arvindguptatoys.com

Azim Premji Foundation

A Newsletter from
Azim Premji Foundation

#134, Doddakannelli, Next to Wipro Corporate Office, Sarjapur Road, Bangalore - 560 035, India
Tel : 91 - 80 - 6614900/01/02 Fax : 91 - 80 - 66144903 E-mail : learningcurve@azimpremjifoundation.org
Website : www.azimpremjifoundation.org